

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186471

UNIVERSAL
LIBRARY

महरोजा , महाराज नारायण
पृथ्वी की आयु 1962

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 550
M 21 P

Accession No. H 3460

Author महेशना, महाराज नारायण

Title पृथ्वी की आयु 1962.

This book should be returned on or before the date last marked below.

पृथ्वी की आयु

हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला--६०

पृथ्वी की आयु

लेखक

महाराज नारायण महरोत्रा

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

हिन्दी समिति

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण, १९६२

Checked 1969

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

पृथ्वी की उत्पत्ति हुए कितने वर्ष हुए, यह एक मनोरंजक प्रश्न है। इसका उत्तर विभिन्न विद्वानों और वैज्ञानिकों ने अपनी-अपनी गणना के अनुसार अलग-अलग दिया है। धर्माध्यक्ष उशर के अनुसार यह घटना ४००४ वर्ष ई० पू० हुई। ईसाई वेदान्तियों ने इसे १० हजार वर्ष पूर्व माना है। लार्ड कैल्विन ने १० करोड़ वर्ष का हिमाव वैठाया है, जबकि भारतीय ज्योतिष के अनुसार पृथ्वी की उत्पत्ति हुए १ अरब ९७ करोड़ वर्ष हुए। आधुनिक वैज्ञानिक गवेषणाओं का परिणाम, जैसा कि विद्वान् लेखक ने दिखलाया है, भारतीय गणना के पक्ष में है। अवश्य ही विश्व या ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति इससे बहुत पहले हुई होगी। हिन्दू मतानुसार यह काल १ नील ५८ खरब वर्ष है, किन्तु पश्चिमी विद्वान् इसे लगभग ७० खरब वर्ष मानते हैं। यह अभी सन्दिग्ध है और इस सम्बन्ध में गवेषणाकार्य बराबर चल रहा है।

इस पुस्तक के लेखक श्री महाराजनारायण महरोत्रा ने अनेक वैज्ञानिक तथ्यों का संग्रह कर तथा प्रश्न पर विविध दृष्टिकोणों से विचार करते हुए, बड़े परिश्रम से इसकी रचना की है। इस विषय का आपने विस्तृत और गहन अध्ययन किया है। आपके विचार बड़े मुलझे हुए तथा गैली अत्यन्त सुबोध है। इसी से वैज्ञानिक विवेचन तथा विषय के गम्भीर होते हुए भी आप बहुत हद तक उसे रुचिकर बनाने में सफल हुए हैं। आशा है, लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य की संवृद्धि में आपका यह अंशदान हिन्दी-प्रेमियों के हित की दृष्टि से यथेष्ट महत्त्वपूर्ण साबित होगा।

लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय'

सचिव, हिन्दी समिति

विषय-सूची

अध्याय	पृष्ठ-संख्या
अपनी ओर से	१
१. भौमिक काल की समस्या	७
२. पृथ्वी के पूर्वज	१९
३. पृथ्वी	३६
४. पृथ्वी की आयु की ऐतिहासिक पीठिका	५५
५. सागर की आयु	७४
६. शैल तथा पुराजीव प्रमाण	९५
७. भू-क्रान्तियाँ	१३३
८. रेडियो सक्रियता और भौमिक काल	१४९
९. हीलियम विधि	१७६
१०. सीस विधि	२०२
११. खगोल-प्रमाण	२२१
१२. भौमिक समय-सारणी	२४३
परिशिष्ट	
(क) खनिजों का संक्षिप्त वर्णन	२४८
(ख) शिलाओं का संक्षिप्त वर्णन	२५३
(ग) हिन्दी-अंग्रेजी शब्दावली	२५५
(घ) अंग्रेजी-हिन्दी शब्दावली	२६७
(ङ) परिवर्तन-तालिकाएँ	२७८
(च) हीलियम-विधि-पूरक	२७९
ग्रन्थावली	२८१

चित्र-सूची

१. आकाश गंगा में सूर्य का स्थान	११
२. सूर्य से ग्रहों की दूरी	२३
३. शनि ग्रह	२८
४. भू-पटल का रासायनिक योग	४०
५. पृथ्वी का अन्तर्भाग	४७
६. नीहारिका में ग्रहों की रचना	४९
७. सूर्य से एक अन्य नक्षत्र की टक्कर	५०
८. नक्षत्र के निकट आने से सूर्य में उथल-पुथल	५१
९. वाइजमैकर के अनुसार ग्रहों की रचना	५२
१०. भू-पटल का उदग्र कटाव	९६
११. आग्नेय शिलाएँ	९८
१२. शिलाएँ एक दूसरे को काटती हुई	९९
१२ क. मदनमहाल से आग्नेय शिलाओं का भव्य दृश्य	९९
१२ ख. जलज शिलाएँ	"
१३. जलज शिलाओं का निर्माण	१०१
१४. एक स्थान पर प्राप्त शिला-क्रम	१०३
१५. शिलाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार के बलन	१०६
१६. शिलाओं पर भ्रंशों का प्रभाव	१०७
१७. एक-कोशीय जीव	१०९
१८. जीवों के विकास-क्रम का वंश-वृक्ष	११२
१९. एक ट्रिलोवाइट	११३
२०. मम्मी पनविच्छिन्ना	११४
२१. कवचधारी मत्स्य	११४
२२. उभयचारी जीव	११५

२३. उभयचारी से सरीसृप का विकास	११६
२४. एक सरीसृप (भीमसरट)	११७
२५. पुराजीव आधार पर शैल-क्रम-निर्माण	१२०
२६. मिरेपियम में स्थल के तल परिवर्तन के चिह्न	१३४
२६ क. होम्स द्वारा रचित चक्र-सूची	१४३
२७. सियाल और सिमा	१४४
२८. हाइड्रोजन और हीलियम परमाणु	१६०
२९. यूरेनियम १ के नाभिक में परिवर्तन	१६२
३०. यूरेनियम या १ के नाभिक में परिवर्तन	१६३
३१. यूरेनियम १ के नाभिक का विघटन	१६४
३२. लीथियम नाभिक का अभिहनन	१६७
३३. यूरेनियम तथा उसके परिवर्तित पदार्थों द्वारा बने परिवर्त्य प्रभामंडल	१९४
३४. यूरेनियम प्रभामण्डल की आदर्श रचनाएँ	१९४
३५. कार्बन-नाइट्रोजन चक्र	२२९
३६. भौमिक काल विभाजन	२४४
३७. जीव-विकास का निरूपण	२४५

अपनी ओर से

राष्ट्रभाषा हिन्दी के मन्दिर में प्रवेश करते हुए मुझे श्रीमती सुभद्रा-कुमारी चौहान की ये पंक्तियाँ याद आती हैं—

धूप, दीप, नैवेद्य नहीं है झाँकी का शृंगार नहीं ।
हाय! गले में पहनाने को फूलों का भी हार नहीं ॥
स्तुति कैसे कलं तुम्हारी है स्वर में माधुर्य नहीं ।
मन के भाव प्रकट करने को वाणी में चातुर्य नहीं ॥

फिर भी हिन्दी मन्दिर में प्रवेश करते हुए मुझे हर्ष हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी का यह उद्यान निकट भविष्य में ही वैज्ञानिक और प्राविधिक सुमनों से भरपूर हो जायगा। हिन्दी की क्षमता के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का सन्देह दूर कराने के लिए भारतवर्ष के सभी प्रदेशों के हिन्दी-सेवियों का कर्तव्य है कि वे साहित्य, कला, विज्ञान तथा प्राविधिक शिक्षा की प्रत्येक शाखा के लिए हिन्दी में उच्च श्रेणी की पुस्तकों उपलब्ध करायें। और किसी भी तर्क का उत्तर मौखिक न देकर अपनी कृतियों द्वारा ही दें। आगामी पाँच या दस वर्षों में हिन्दी का प्रांगण वैज्ञानिक प्राविधिक पुस्तकों से भरपूर हो जाना चाहिए। यह हिन्दी की दृष्टि से ही नहीं, वरन् हमारे देश में विज्ञान के विकास की दृष्टि से भी आवश्यक है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि प्रादेशिक भाषाओं में वैज्ञानिक पुस्तकों न होने के कारण विद्यार्थियों का अधिक समय विदेशी भाषा को सीखने तथा उसके माध्यम द्वारा लिखी पुस्तकों को समझने में व्यतीत हो जाता है। यदि यही पुस्तकें हमारी अपनी भाषा में लिखी होतीं तो उससे आधे समय में ही हम वह ज्ञान प्राप्त कर लेते। यही कारण है कि जो पाठ्य-

पुस्तकें विदेशों के स्कूलों या कालेजों में पढ़ायी जाती हैं हमारे यहाँ उच्चतर शिक्षा के लिए स्वीकार की जाती हैं।

प्रस्तुत पुस्तक अपने विषय पर कदाचित् हिन्दी में सर्वप्रथम है। विषय वैज्ञानिक होते हुए भी पुस्तक को रोचक बनाने का प्रयत्न किया गया है, पर अपने इस लक्ष्य में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है इसका निर्णय तो पाठक ही करेंगे। 'पृथ्वी की आयु' कोई सरस विषय तो है नहीं, यह तो पृथ्वी का विशेषकर उसके पत्थरों का, शिलाओं का अध्ययन है, उन पत्थरों के अन्तरतम में प्रवेश कर उनके जन्म की कहानी जानना भले ही रोचक हो जाये। आर्थर होम्स ने कहा भी है कि ये शिलाएँ तो पृथ्वी के इतिहास के पन्ने हैं जिनमें पृथ्वी के आरंभ से अब तक की कहानी लिखी है।

इस पुस्तक में बारह अध्याय हैं। प्रथम तीन अध्यायों में भौमिक काल की समस्या को सुलझाने के लिए आवश्यक तत्त्वों का विवेचन किया गया है। ये तीन अध्याय वास्तव में इस पुस्तक की नींव हैं। चौथे अध्याय में प्राचीन विचार-धाराओं को संगृहीत किया गया है। इसमें भारतीय दृष्टिकोण का विवेचन विस्तार से किया गया है क्योंकि भारतीय ज्योतिष के अनुसार ज्ञात आयु आधुनिक वैज्ञानिक-विधियों द्वारा ज्ञात आयु के निकट है। पाँचवें अध्याय में सागर की आयु के आधार पर तथा छठे अध्याय में शिलाओं और उनमें पाये जाने वाले प्रस्तरीभूत जीव-अवशेषों के आश्रय से यह आयु ज्ञात की गयी है। सातवें अध्याय में गिरिजन गतियों का वर्णन किया गया है। ये गतियाँ ही भौमिक क्रान्तियाँ हैं। ये क्रान्तियाँ निश्चित अवधि के उपरान्त हुई हैं, अतः इनके आधार पर भी पृथ्वी की आयु का अनुमान लगाया गया है। पृथ्वी की आयु जानने की आधुनिक विधियाँ रेडियोसक्रियता पर आश्रित हैं, अतः आठवाँ अध्याय परमाणु की कहानी से आरंभ होता है। तत्पश्चात् इसमें रेडियो-सक्रियता की खोज तथा रेडियो-सक्रिय तत्त्वों यूरेनियम, थोरियम आदि के परिवारों का वर्णन है। अगले दो अध्यायों में रेडियो-सक्रियता पर आवृत्त दो विधियों—हीलियम-विधि

तथा सीस-विधि का पृथक्-पृथक् विवेचन किया गया है। 'सीस विधि' अध्याय के अन्तर्गत अन्य विधियों, जैसे रूबिडियम-स्ट्रोंशियम विधि, रेडियो कार्बन विधि आदि का भी संक्षिप्त वर्णन किया गया है। इसके अन्तिम अनुच्छेद में उल्का-पत्थरों की आयु पर भी प्रकाश डाला गया है। ग्यारहवें अध्याय में खगोलीय प्रमाणों का संग्रह किया गया है। इसमें विश्व, सूर्य और चन्द्र की आयु के आधार पर पृथ्वी की अधिकतम और न्यूनतम आयु जानने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय के अन्त में पुराजलवायु-प्रमाण का भी विवेचन किया गया है। अन्तिम अध्याय में पूर्वगत अध्यायों का निचोड़ है।

पुस्तक को सुबोध तथा सरल बनाने के लिए चित्र तथा तालिकाएँ दी गयी हैं तथा अन्त में कई परिशिष्ट भी हैं। प्रथम परिशिष्ट में इस पुस्तक में प्रयुक्त खनिजों का तथा दूसरे परिशिष्ट में शिलाओं का संक्षिप्त वर्णन दिया गया है ताकि साधारण पढ़े-लिखे व्यक्तियों को भी पुस्तक को पूर्ण रूपेण समझने में कठिनाई न हो। तीसरे और चौथे परिशिष्ट में क्रमशः हिन्दी-अंग्रेजी, अंग्रेजी-हिन्दी शब्दावलियाँ दी गयी हैं। पांचवें परिशिष्ट में परिवर्तन तालिकाएँ दी गयी हैं ताकि मील-फर्लांग को किलोमीटर आदि में, मन-सेर को किलोग्राम आदि में, सेंटीग्रेड को फारनहाइट में परिवर्तित किया जा सके। परिशिष्ट छः में हीलियम-विधि पर कुछ नवीन सामग्री दी गयी है। अन्त में ग्रन्थावली है जिसमें इस विषय पर उपलब्ध ग्रन्थों के नाम दिये गये हैं।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे कई असुविधाओं का सामना करना पड़ा। सबसे बड़ी समस्या थी शब्दावली की, अतः इस सम्बन्ध में दो वाक्य कहने आवश्यक हैं। भौमिकी पर अभी तक कोई भी प्रामाणिक शब्दावली हमें उपलब्ध नहीं है। 'प्राकृतिक भूगोल' पर भारत सरकार की अस्थायी शब्दावली निकली है, इसी में भौमिकी के कुछ शब्द हैं। आशा है भूसर्वेक्षण विभाग के उपसंचालक डा० अनन्त गोपाल जी झिगरन के परिश्रम के फलस्वरूप शीघ्र ही भूगोल शब्दावली को अन्तिम रूप ही नहीं दिया जायेगा, वरन्

भौमिकी पर एक पूर्ण शब्दावली भी प्रकाशित होगी। भौमिकी शब्दावली की अनुपस्थिति में इस पुस्तक के हिन्दी पर्याय डा० रघुवीर के 'बृहत् आंग्ल हिन्दी कोष', डा० ब्रजमोहन के 'गणितीय कोष' तथा भारत सरकार द्वारा प्रकाशित अन्य शब्दावलियों से लिये गये हैं, साथ ही कुछ नये शब्दों का निर्माण भी किया गया है। हो सकता है, इस पुस्तक में प्रयुक्त हिन्दी पर्याय कुछ पाठकों को न रुचें, तो वे अपने मुझाव लेखक को भेजने का कष्ट करें। इसके लिए मैं उनका आभारी हूँगा। पर शब्दों के चयन में इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है कि वह अर्थपूर्ण हो और साथ ही सरल हो। सुविधा-सिद्धान्त हमारा लक्ष्य है, पर सरलता के लिए सत्य और प्राचीनता का बलिदान भी हमें नहीं रुचता। पाठकों से मेरा एक ही आग्रह है कि वे नये शब्दों को प्रेम की दृष्टि से देखें। अंग्रेजी का एक लेख पढ़ते समय हमें ऐसे बीसियों शब्द मिलते हैं जिनका अर्थ हम नहीं जानते, तुरन्त अंग्रेजी का कोष खोलकर हम उनका अर्थ मालूम कर लेते हैं। पर यदि किसी हिन्दी पुस्तक में दो-चार भी अपरिचित शब्द आ गये तो हमारे मन में प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। वस यही क्षण विचार का है। यहीं पर हमारा आपसे अनुरोध है कि धैर्य से काम लें, कोष से उन शब्दों का अर्थ जानकर उन्हें अपना बना लें। खेद होता है जब देखते हैं कि शिक्षित वर्ग के लोग भी हिन्दी कोष को ढंग से देखना नहीं जानते। अंग्रेजी के 'ए' से 'जैड' तक के अक्षर या वर्ण हमारी जिह्वा पर रहते हैं, पर हिन्दी के 'अ' से 'अः' तथा 'क' से 'ह' तक पूरे अक्षर या वर्ण हममें से कितनों को आते हैं। यह दुर्भाग्य की बात है। श्री मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियाँ कितनी सारगर्भित हैं।

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।

वह नर नहीं, है पशु निरा और मृतक समान है॥

दूसरी कठिनाई है इस विषय पर ग्रन्थों की कमी। अंग्रेजी भाषा में भी पृथ्वी की आयु पर अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। सन् १९२६ में

अमेरिका में डा० जौसेफ आमेस के प्रयास से भौमिक काल नापने के लिए एक समिति नियुक्त की गयी थी। इसके सदस्य थे—अर्नेस्ट डब्लू० ब्राउन, आर्थर होम्स, ए० एफ० कोवारिक, ए० सी० लाने, चार्ल्स शुर्कर्ट और एडोल्फ नौफ। इन लोगों के परिश्रम के फलस्वरूप उपलब्ध परिणाम 'नेशनल रिसर्च काउंसिल' द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वी की आयु' ग्रन्थ में संकलित किये गये। अतः इस पुस्तक को लिखने में मुझे उस ग्रन्थ का आश्रय लेना पड़ा। इसके अतिरिक्त आर्थर होम्स की 'दि एज आफ दि अर्थ' तथा बहुत सी पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं से भी सहायता मिली। इनकी सूची पुस्तक के अन्त में दी गयी है। वास्तव में यह पुस्तक इस विषय पर उपलब्ध साहित्य के अध्ययन का परिणाम है। पुस्तक में अंकों और संख्याओं की इतनी भरमार है कि संभव है सतर्कता बर्तने के उपरान्त भी कुछ त्रुटियाँ रह गयी हों। इन त्रुटियों की ओर ध्यान दिलाने के लिए मैं पाठकों का आभार मानूँगा।

अन्त में मैं उन सब महानुभावों के प्रति जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहायता पहुँचायी है, आभार प्रदर्शित करता हूँ। यह पुस्तक पूज्य डा० ब्रजमोहन जी के आशीर्वाद का फल है। हिन्दी के क्षेत्र में मुझे प्रवेश दिलाने का श्रेय उन्हीं को है। भौमिकी-विभाग के अध्यक्ष डा० राजनाथ जी ने मेरे हिन्दी लेखों को पढ़कर मुझे सदा प्रोत्साहित किया है। पं० बलदेव जी उपाध्याय, डा० वामुदेव शरण जी अग्रवाल तथा पं० शिवशंकर नागर जी ने मुझे पृथ्वी की आयु का भारतीय दृष्टिकोण जानने में सहायता पहुँचायी है। नागपुर के श्री एम० पी० देशपांडे ने इस विषय पर अपने एक लेख की पाण्डुलिपि भेजकर मुझे कृतार्थ किया है। श्री शिवनारायण प्रसाद जी वेरी तथा डा० मुरेद्र कुमार अग्रवाल ने मेरे इस कार्य में दिलचस्पी लेकर मुझे बढ़ावा दिया है। डा० नवरत्न कपूर ने शब्दावलियाँ तथा पाण्डुलिपि तैयार करने में मेरी बहुत सहायता की है। इन सभी सज्जनों का मैं हृदय से आभारी हूँ।

‘नेशनल एकेडेमी आफ साइंसेज’ वाशिंगटन ने मुझे अपनी पत्रिका से एक चित्र और कुछ तालिकाएँ उद्धृत करने की अनुमति प्रदान की है। टॉमस नैलसन एण्ड सन्स लिमिटेड एडिनबर्ग द्वारा प्रकाशित ‘पृथ्वी की आयु’ से एक चित्र तथा कुछ तालिकाएँ ली गयी हैं। इन सभी के प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ। वे पाठकगण भी, जो मेरी त्रुटियाँ बताकर मुझे अपने सुझाव देंगे, सदैव मेरे धन्यवाद के पात्र रहेंगे।

—महाराज नारायण मेहरोत्रा

अध्याय १

भौमिक काल की समस्या

—‘काल अगम्य रहस्य है’

—मेटरलिंग (दि सुप्रीम ला, पृष्ठ १५२)

पृथ्वी के आरंभ से अब तक की उसकी कहानी बड़ी रोचक है। इसका कुछ अंश कल्पित है, कतिपय भाग प्रामाणिक है और अधिकांश धुंधला है। वैज्ञानिक अपने प्रयासों के फलस्वरूप इस धुंध को धीरे-धीरे दूर करने में लगे हुए हैं। पर निकट भविष्य में सृष्टि का स्पष्ट चित्र हम अंकित कर सकेंगे, इसमें सन्देह है। प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, किन्तु उस समय हम थे ही कहाँ जब सृष्टि का उद्भव हुआ। हमारा सम्पूर्ण ज्ञान दार्शनिकों की कल्पनाओं, ज्योतिष, गणित एवं भौतिकी के सिद्धान्तों पर आधारित है। इस परिवर्तनशील जगत् में जो कल सच था, वह आज संदेहात्मक है और जो आज सच है वह कल निर्मूल हो सकता है। अतः किसी भी वाद या विचारधारा पर सत्यता की मोहर लगाना कठिन है। प्रतिदिन नये वादों तथा नूतन सिद्धान्तों का जन्म हो रहा है और पुराने वादों एवं सिद्धान्तों का हनन। गणित और भौतिकी—इन दो नेत्रों से—हम गगन के अँधियारे को दूर करके विश्व का रहस्य जानने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं।

विश्व का न आदि है न अन्त। दृश्यमान जगत् इस विश्व का अंशमात्र है। विश्व असीम है और हमारी बुद्धि सीमित है। सीमित बुद्धि को असीम का ज्ञान हो भी, तो कैसे हो। किन्तु वैज्ञानिक भी चुप बैठने वाले नहीं—

सत्य की खोज में वे सतत दत्तचित्त हैं। वे क्रमशः परिचित से अपरिचित, स्थूल से सूक्ष्म, सरल से मिश्र और प्रत्यक्ष से परोक्ष की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

सृष्टि के सम्बन्ध में हमें अनेक समस्याएँ हल करनी हैं। इन सब में काल की समस्या गूढ़ातिगूढ़ है। काल का रहस्य जानने के लिए दार्शनिक तथा वैज्ञानिक अनिश्चित समय से ऊहापोह करने में लगे हुए हैं, किन्तु काल की अनन्तता के आगे सभी को हार माननी पड़ी है। मेटरलिक का उपर्युक्त सूक्ति वाक्य—‘काल अगम्य रहस्य है’—इसका परिचायक है। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने भी काल-रहस्य के विषय में एक अत्यन्त रोचक भारतीय दृष्टान्त प्रस्तुत किया है, यथा—“एक बार गार्गी ने विश्व के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य से इसी प्रकार के प्रश्न पूछे। इस पर ऋषि ने उसे चेतावनी देते हुए कहा—‘गार्गी! अति प्रश्न मत पूछो। कहीं तुम्हारी बुद्धि का आधार यह मस्तिष्क ही न विकृत हो जाय’ यह मानव मस्तिष्क भी विल्सन पर्वत (कैलीफोर्निया) की चोटी के सौ इंची दूरबीक्षण यंत्र की भाँति एक यंत्र ही तो है। अनन्त प्रकाश के कुछ आवरणों को पार करके बीस लाख नीहारिकाओं के दर्शन कर लेने के बाद उस सौ इंची यंत्र की शक्ति थक जाती है।”

सन्त विनोबा भावे ने लिखा है—“वह है काल। यदि हम पिछले काल पर दृष्टि दौड़ायें तो इतिहास की मर्यादा में बहुत हुआ तो दस हजार साल तक पीछे जा सकेंगे, आगे का काल तो ध्यान में ही नहीं आता। इतिहासकाल दस हजार वर्षों का और स्वयं हमारा जीवन-काल तो मुश्किल से सौ साल का है। वास्तव में काल का विस्तार अनादि और अनन्त है। कितना

१. वेदविद्या—वासुदेवशरण अग्रवाल (रामप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा) १९५९, पृ० १४५।

२. गीता प्रवचन—विनोबा, १९५६, पृ० १६२।

काल बीता है, इसका कोई हद-हिसाब नहीं, आगे कितना काल है, इसकी कोई कल्पना नहीं होती। जैसे विश्व की तुलना में हमारा 'जग' तुच्छ है, वैसे ही इतिहास के ये दस हजार साल अनन्तकाल की तुलना में कुछ भी नहीं हैं। भूतकाल अनादि है व भविष्यत्काल अनन्त है। यह छोटा-सा वर्तमान काल बात करते-करते भूतकाल में चला जाता है। वर्तमानकाल सचमुच कहाँ है, यह बताने जाते हैं तब तक वह भूतकाल में विलीन हो जाता है। ऐसा यह अत्यन्त चपल वर्तमानकाल मात्र हमारा है। मैं अभी बोल रहा हूँ, पर मुँह से शब्द निकला कि वह भूतकाल में विलीन हुआ। इस तरह यह महान् काल-नदी एक-सी बह रही है। न उगके उद्गम का पता है न अन्त का। बीच का थोड़ा-सा प्रवाहमात्र हमें दिखाई देता है।”

काल रूपी इस विशाल नदी में डुबकी लगाकर हमें यह पता लगाना है कि हमारी पृथ्वी का जन्म कब हुआ? यह पृथ्वी अखिल ब्रह्मांड का ही एक अंश है—यद्यपि ब्रह्मांड की विशालता की तुलना में इस पृथ्वी की कोई गणना नहीं। अतएव पहले हमें अखिल ब्रह्मांड का ज्ञान प्राप्त करना होगा, विश्व का रहस्य जानना होगा, तभी हम पृथ्वी के जन्म की कहानी से परिचित हो सकेंगे।

विश्व का रहस्य

किसी स्वच्छ अँधेरी रात्रि में आकाश पर दृष्टि डालिए। गगन का सम्पूर्ण वातावरण आपका मन मोह लेगा। गगनांगण की वह रंगावली, वह छोटे-छोटे मुन्दर फूल, वे लुक-लुक करने वाली तारकाएँ, दक्षिण से उत्तर दिशा को जाती हुई श्वेत गंगा—सभी आपको अपनी ओर आकृष्ट कर लेंगे। किन्तु क्या आप उनके वास्तविक रूप को जानते हैं? ये टिमटिमाती तारकाएँ अति महान् हैं। इन छोटी-छोटी तारकाओं में असंख्य पृथ्वियाँ समा जायँगी, असंख्य सूर्यों का प्रकाश उनके समक्ष मन्द पड़ जायगा।

पर साधारण दृष्टि से दिखाई पड़ने वाले तारे क्या अनन्त हैं? हमें एक बार में एक हजार से अधिक तारे दिखाई नहीं पड़ते। ताल (आतशी

शीशा) की सहायता से हम पाँच सहस्र तारों को देख सकते हैं। यदि दूरदर्शक का सहारा लें तो लाखों तारे हमारी दृष्टि सीमा के भीतर आ जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के केलीफोर्निया राज्य की माउंट पेलोमर वेधशाला के दो सौ इंची दूरदर्शक द्वारा हम अरबों तारों का चित्र अंकित कर सकते हैं। यदि और बड़े दूरदर्शक का निर्माण हो जाय तो कदाचित् परार्ध (महाशंख) तारों से हमारा परिचय हो जायगा। इस प्रकार यह समझ में आना कठिन हो जायगा कि इनका अन्त है कहाँ।

आकाश के विषय में हममें से बहुतेरों की कल्पना दिखाई देने वाले बादलों तक ही सीमित है। किन्तु हमें इन बादलों के पार भी विशाल विश्व की कल्पना करनी है। कुछ खगोलज्ञ विश्व को अनन्त मानते हैं, पर कुछ वैज्ञानिकों की कल्पना में विश्व सीमित है। उनका कथन है कि यदि विश्व अनन्त होता तो उसमें तारे भी अनन्त होते और आकाश उनके प्रकाश से सदा चमचमाता रहता। खगोलज्ञ हविल ने परिकलन करके आकाश का आयतन—

३८४, ०००, ०००, ०००, ०००, ०००, ०००, ०००, ०००, ०००, ०००, ०००, ०००, ०००, ०००, ०००, ०००, घनमील बताया है।^१

सापेक्षवाद के सिद्धान्त के अनुसार आकाश वक्र^२ है। इसीलिए ग्रहों का मार्ग भी वक्र है, तत्फलस्वरूप सूर्यग्रहण के समय प्रकाश की किरणें वक्र हो जाती हैं। आधुनिक गवेषणाओं के परिणामवश यह ज्ञात हुआ है कि विश्व का प्रसार हो रहा है। अनुमान लगाया गया है कि एक अरब चालीस करोड़ वर्षों में विश्व का व्यास दुगुना हो जायगा।

आगामी परिच्छेदों में हम अन्तरिक्ष के मुख्य अवयवों के विवरण

1. An Outline of the Universe—J. G. Crowther 1938
p. 20.

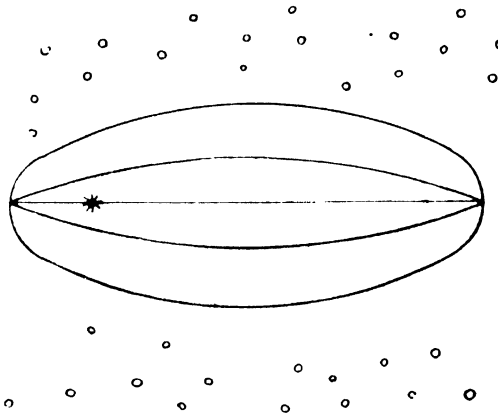
2. Curved

द्वारा पृथ्वी की उत्पत्ति, रचना तथा आयु का परिज्ञान कराने का प्रयास करेंगे।

आकाश-गंगा^१

गगन की सबसे लुभावनी वस्तु है “आकाश-गंगा”। ऐसा प्रतीत होता है मानों गगन में दूध की एक नदी बह रही हो। इस दुधैले मार्ग को साहित्य में मन्दाकिनी, देवगंगा, आकाशनदी, आकाश-जनेऊ आदि नामों से अभिहित किया जाता है। इसे ही अंग्रेजी में ‘मिल्की वे’ कहते हैं।

आकाश-गंगा अति विशाल है। इसका व्यास लगभग ६ शंख मील (अर्थात् ६ के आगे १७ शून्य रखे जायें) है। यह तारों, गैसों तथा धूल के



चित्र १—आकाश गंगा में पूर्य का स्थान

बादलों से बनी हुई है। इसके किसी-किसी भाग में बादल अधिक घने हैं और कहीं-कहीं अपेक्षाकृत पतले। घने बादलों ने अपने पीछे के बहुत-से तारों को हमारी दृष्टि से छिपा लिया है, इसी कारण बहुत-से चमकदार तारे हमें मन्द दिखलाई पड़ते हैं। आकाश-गंगा के क्षेत्र के चारों ओर बहुत-सा रिक्त स्थान है। इस रिक्त स्थान में आकाश-गंगा से दूर अन्य तत् समान आकाश

गंगाओं का बोध दूरदर्शक की सहायता से हुआ है। इन अन्य आकाश-गंगाओं को हम 'द्वीप-विश्व' के नाम से संबोधित करते हैं।

कदाचित् आपको यह जानकर आश्चर्य हो कि यह गंगा आकाश में एक लट्टू की नाई अपने चारों ओर २०० मील प्रति सेकण्ड के वेग से घूम रही है। हमारा सूरज और पृथ्वी इसी आकाश-गंगा के अंग हैं। सूर्य आकाश-गंगा के केन्द्र पर नहीं है, वरन् केन्द्र से किनारे की ओर दो-तिहाई हटा हुआ है। पृथ्वी आकाश-गंगा के केन्द्र से लगभग दो शंख मील दूर है।

नीहारिकाएँ^१

आकाश-गंगा के क्षेत्र में तथा उसके आस-पास कुहरे के समान फैले हुए धुंधले टुकड़े दिखलाई पड़ते हैं। इन्हीं को हम नीहारिकाएँ कहते हैं। इनकी चमक तारों के सदृश होती है, किन्तु ये तारों के समान गोल न होकर आकाश के क्षेत्र में कुछ दूर तक फैली दिखलाई पड़ती हैं।

साधारणतः हमें केवल दो ही नीहारिकाएँ आकाश में दृष्टिगत होती हैं—'देवयानी'^२ और 'त्रिभुज'^३। परन्तु दूरदर्शक की सहायता से दस करोड़ से अधिक नीहारिकाएँ ज्ञात हुई हैं।^४ इनमें से बहुत-सी नीहारिकाएँ आकाश-गंगा के क्षेत्र से दूर हैं।

नीहारिकाएँ छोटे-बड़े सभी आकारों में देखी गयी हैं। कुछ नीहारिकाएँ ग्रहों के समान वृत्ताकार हैं। इन्हें हम ग्रहीय नीहारिकाएँ कहते हैं। इन नीहारिकाओं का औसत व्यास सात खरब मील है। ग्रहीय नीहारिकाओं के बीच में एक चमकीला तारा होता है। तारे के चारों ओर एक पूरा चक्कर लगाने में इसे लगभग पाँच हजार वर्ष लगते हैं। कुछ नीहारिकाएँ

1. Island Universe

2. Nebulae

3. Andromeda

4. Triangulum

५. नीहारिकाएँ—डा० गोरख प्रसाद १९५५, पृ० ३।

तो इतनी विशाल हैं कि उनकी तुलना हमारी आकाश-गंगा से की जा सकती है।

अधिकतर नीहारिकाएँ झुण्डों में दिखाई देती हैं, इन्हें नीहारिका पुंज कहते हैं। नीहारिका-पुंजों में दो से लेकर पाँच सौ तक नीहारिकाएँ देखी गयी हैं। आधुनिक वेधों से पता चला है कि नीहारिकाएँ आकाश में तीव्र गति से दौड़ती जा रही हैं। ज्यों-ज्यों वे दूर भागती जा रही हैं, उनकी गति बढ़ती जा रही है। नीहारिकाओं की गति हमसे उनकी दूरी के अनुपात पर निर्भर है। एक नीहारिका, जिसका प्रकाश एक करोड़ वर्ष में हमारे पास पहुँचता है, ९०० मील प्रति सेकण्ड की गति से हमसे दूर भाग रही है और जिस नीहारिका का प्रकाश हम तक पाँच करोड़ वर्षों में पहुँचता है, वह हमसे ४५०० मील प्रति सेकण्ड की गति से दूर भाग रही है। इसी आधार पर यह प्रतिपादित किया गया है कि एक अरब चालीस करोड़ वर्षों में विश्व का व्यास दुगुना हो जायगा।

तारे^१

आकाशीय वस्तुओं में तारों से हमारा परिचय अधिक निकट का रहा है। बाल्यावस्था में तारों को देख कर बच्चों के मन में अनेक प्रकार की जिज्ञासाएँ उठती हैं, जिनका समाधान घर के बूढ़े दादा-दादी कहानियों के माध्यम से कर देते हैं। किन्तु हम आपको एक वैज्ञानिक के रूप में तारों के देश की यात्रा करायेगे। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, हमें एक दृष्टि में एक हजार से अधिक तारे नहीं दिखाई पड़ते। पर दूरदर्शक की सहायता से हम अरबों-खरबों तारों को देख सकते हैं। आकाश पर यदि थोड़ी देर के लिए हम अपनी दृष्टि ठहराएँ तो ज्ञात होगा कि ये तारे भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। इनमें कुछ-एक छोटे हैं, कुछ-एक अपेक्षाकृत बड़े। सभी के रंगों

और प्रकाशीय शक्ति में भी परस्पर अन्तर है। कतिपय तारे समुदाय में रहना पसन्द करते हैं और कुछ आकाश में स्वच्छन्द विचरण करते हैं। लेकिन आकाश में अनन्त स्थान होने के कारण इनके आपस में टकराने की सम्भावना कम है।

आकाश में तारों का छोटा या बड़ा दिखाई पड़ना केवल उनके आकार पर ही नहीं, प्रत्युत उनकी हमसे दूरी पर भी निर्भर है। तारा हमसे जितनी अधिक दूर होगा, उतना ही अधिक छोटा दिखाई पड़ेगा।

तारों की दूरियाँ

तारों में से सूर्य ही हमारे सन्निकट तम है। तब भी यह हमसे ९ करोड़ ३० लाख मील दूर है। इस दूरी की कल्पना आप सरलता से न कर सकेंगे। डा० गोरखप्रसाद द्वारा वर्णित युक्तियों से हम इसकी दूरी का आभास करायेंगे।^१ उनका कथन है कि यदि हम रेलगाड़ी पर बैठकर सूर्य तक पहुँचना चाहें तो ६० मील प्रति घण्टे के हिसाब से चलने वाली गाड़ी को सूर्य तक पहुँचने में १७५ वर्ष लगेंगे, जबकि रास्ते में गाड़ी को कहीं रुकना नहीं होगा। डेढ़ पाई (एक नया पैसा) प्रति मील के हिसाब से तीसरे दर्जे के आने-जाने का किराया सवा सात लाख रुपया होगा। इस यात्रा के लिए यदि स्टेशन मास्टर नोट लेना न स्वीकार करे तो हमको साढ़े ग्यारह मन सोना किराये में देना होगा।

दूसरा रोचक उदाहरण ग्रेगरी की पुस्तक से उद्धृत है। जब हमारी उँगली जल जाती है तब उसकी खबर हमारे दिमाग को पहुँचने में बहुत थोड़ा समय लगता है। अब एक ऐसे मनुष्य की कल्पना कीजिए जो अपने हाथों को बड़ा कर सूर्य को छू सके तो उसकी उँगली जल जाने की सूचना उसके मस्तिष्क को १६५ वर्ष में पहुँचेगी।

आशा है, इन युक्तियों के आधार पर आप सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी का अनुमान लगा सके होंगे। किन्तु यह केवल हमारे निकटतम तारे की दूरी है, अन्य तारे तो हम से और भी अधिक दूर हैं। यहाँ तक कि मीलों के साधारण पैमानों में उनकी दूरी बताना अत्यन्त कठिन है। अतः इन दूरियों को बताने के लिए हम एक नये माप का उपयोग करते हैं, इसे कहते हैं—“प्रकाश वर्ष”।^१

“प्रकाश वर्ष” से हमारा तात्पर्य उस दूरी से है जिसे प्रकाश एक वर्ष में तय करता है। प्रकाश की गति १,८६,००० मील प्रति सेकण्ड है। इस प्रकार प्रकाश एक वर्ष में $१८६००० \times ६० \times ६० \times २४ \times ३६५$ मील तय करता है।

सूर्य का निकटतम तारा है ‘निकट मित्र’।^२ सूर्य के प्रकाश को उस तक पहुँचने के लिए ४ $\frac{१}{२}$ वर्ष लग जाते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि निकट मित्र (प्रोक्सिमा सेंटारी) सूर्य से ४ $\frac{१}{२}$ प्रकाश वर्ष दूर है, अर्थात् $४\frac{१}{२} \times (१८६००० \times ६० \times ६० \times २४ \times ३६५)$ मील (लगभग २६० शंख मील)।

तारों की परस्पर दूरी का प्रमाण न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त से भी प्राप्त होता है। यदि तारे सूर्य के निकट होते तो गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से सूर्य में गिर जाते अथवा उसके चारों ओर चक्कर लगाते रहते। परन्तु इसके विपरीत अधिकांश तारे आकाश में स्वच्छन्द परिभ्रमण करते हैं। अतः आकाश में एक तारा दूसरे तारे से बहुत दूरी पर है।

तारों के रंग, तापमान और गति

वर्णक्रम^३ की सहायता से तारों के भिन्न-भिन्न रंगों का पता चला है। तारों का रंग उनके तापमान पर निर्भर है। तापमान जितना कम होगा,

1. Light year

2. Proxima Centauri

3. Spectrum

तारा हमें उतना ही अधिक लाल दिखाई देगा। तापमान-वृद्धि के साथ तारों का रंग क्रमशः पीला, श्वेत और नीला होता जाता है। अत्यधिक तप्त तारे हमें नीले ही दिखाई पड़ते हैं। ठीक इसके विपरीत हम रंग देखकर तारों की सतह के तापमान का अनुमान लगा सकते हैं। रंग और तापमान का सम्बन्ध नीचे दिया गया है —

रंग	तापमान
लाल	२००० से ३००० अंश ^१ सेंटीग्रेड,
नारंगी	लगभग ४००० अंश सेंटीग्रेड,
पीला	५००० से ६००० अंश सेंटीग्रेड,
सफ़ेद	८००० से १०००० अंश सेंटीग्रेड,
नीला-श्वेत	१५००० अंश सेंटीग्रेड से अधिक।

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि तारों की सतह की अपेक्षा तारों के केन्द्र में तापमान कई गुना अधिक होता है। तारों का तापमान और घनत्व दोनों ही केन्द्र से बाहर की ओर कम होते जाते हैं।

प्राचीन काल में मनुष्य अनेक तारों की गति न जान सके थे, इसीलिए वे उन्हें 'स्थिर तारों' के नाम से पुकारते थे। यद्यपि यह नाम अब भी प्रचलित है तथापि खगोलज्ञों ने दूरदर्शक यन्त्र द्वारा इस निर्विवाद सत्य का पता लगा लिया है कि समस्त तारे गतिशील हैं। विभिन्न तारों की गति में अन्तर है। हमारा निकटतम तारा सूर्य अपने परिवार सहित आकाश में ४३००० मील प्रति घंटे की चाल से घूम रहा है।

तारों का जीवन-क्रम

मनुष्य के समान तारों का भी विकास होता है। बाल्यावस्था में तारों के रंग-रंग में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं होता। तारा जलता रहता

है और अपनी हाइड्रोजन को व्यय करता रहता है। बड़े तारे छोटे तारों की अपेक्षा तीव्र गति से चलते हैं। इस काल में तारे अपनी १५ प्रतिशत हाइड्रोजन व्यय कर देते हैं।

जब तारा बाल्यावस्था को छोड़कर युवावस्था में प्रवेश करता है, तब उसका आकार बढ़ने लगता है तथा हाइड्रोजन का व्यय भी अधिक होने लगता है। तारों का आकार पचास से सौ गुना तक बढ़ जाता है। इस अवस्था में तारों की हाइड्रोजन का लगभग ६० प्रतिशत भाग खर्च हो जाता है।

अब तारे में वृद्धावस्था के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। वह सिकुड़ने लगता है। उसमें अस्थिरता आ जाती है। वह घटने-बढ़ने लगता है और बहुधा एक नूतन तारे के रूप में फूट पड़ता है।

अन्तरिक्ष की धूल और बादल

अन्तरिक्ष में व्याप्त धूल और गैस के बादल हमें तभी दृष्टिगोचर होते हैं जब कि वे अपने निकटवर्ती तारों के प्रकाश से स्वयं प्रकाशित होने लगते हैं, अथवा जब कभी वे तारों के आगे आकर उनके प्रकाश को रोक लेते हैं अथवा मन्द कर देते हैं।

यह धूल मुख्यतः अधातुओं, जैसे बालू आदि तथा जल के परमाणुओं से बनी हुई है। वर्णपट की सहायता से अन्तर-तारका— गैस के योग का भी पता चला है। इसमें कैल्शियम, पोटेशियम, सोडियम, टाइटेनियम, लौह, आक्सिजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बन आदि प्रधान हैं। वैज्ञानिकों की धारणा है कि भूतल पर जो तत्त्व हमें ज्ञात हैं वे अन्तरिक्ष में किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं, भले ही अपने सीमित यन्त्रों द्वारा अभी तक हमें उनका बोध न हुआ हो।

1. Interstellar

बादलों का घनत्व बहुत ही कम है। इनमें प्रति घन इंच में केवल १६ अणु हैं। एक साधारण अणु का व्यास एक इंच का दस करोड़वां भाग तथा उसका द्रव्यमान^१ लगभग एक तोले का दो महाशंखवां भाग होता है। अणु के इस व्यास और द्रव्यमान को ध्यान में रख कर इन बादलों के अल्प घनत्व की कल्पना कर लीजिए। हमारी सृष्टि का आधार बादल ही हैं। अतः इनकी महती विशेषता है।

अध्याय २

पृथ्वी के पूर्वज

चित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आ प्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।

—ऋग्वेद, मंडल १, सूक्त ११५, मंत्र १ ।

ताप-पुंज तारा, सूर्य, अन्य तारों की अपेक्षा हमारी आश्रयदात्री पृथ्वी के अधिक समीप है। केवल इस कारण नहीं, वरन् अपनी अन्य विशेषताओं के कारण भी सूर्य हम मानवों के लिए महत्त्वशाली है। इसके बिना हम जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकते। यह स्वयं जलकर हमें जीवनशक्ति प्रदान करता है। यदि सूर्य से आने वाले ताप की मात्रा में कुछ परिवर्तन हो जाय तो हमारी पृथ्वी पर जीवों का अस्तित्व ही न रह पायेगा। इस ताप की वृद्धि से पृथ्वी झुलस जायगी और हम जलकर राख हो जायेंगे। यदि इस ताप में कमी आ जाय तो हम ठण्ड से सिकुड़ कर मर जायेंगे। इसी महत्ता के कारण हमारे धर्म ग्रन्थों में सूर्य को देवता अर्थात् “सूर्यदेव” की संज्ञा से विभूषित किया गया है।

सहस्रों वर्ष पूर्व मिस्र वालों ने सूर्य की कल्पना एक अनोखे रूप में की थी। उनके अनुसार स्वर्ग की राजहंसिनी सोने का एक अण्डा देती है। उस अण्डे से निकलने वाला बच्चा ही हमारा सूर्य है।^१ नित्यप्रति प्रातःकाल

१. मृत अण्ड से उत्पन्न मार्तण्ड (पुराणों का मत) ।

इस सोने के अंडे से सूर्य का जन्म होता है, जो रात्रि के अन्धकार में विलीन हो जाता है। अगले दिन फिर वही राजहंसिनी सोने का एक और अण्डा देती है—और इस प्रकार नित्य एक नये सूर्य का उदय होता है।^१

सूर्य का व्यास लगभग ८ लाख ६४ हजार मील है। तिस पर भी अन्य तारों से अंशकृत अधिक छोटा होने के कारण इसे 'बौना तारा' कहते हैं। बौना कहलाने वाला यह तारा हमारी पृथ्वी के व्यास से १०९ गुना बड़ा है।

सूर्य गैस का एक बहुत बड़ा गोला है। वैज्ञानिकों ने रश्मिचित्रों^२ की सहायता से इसका योग ज्ञात किया है। यह साधारण अनुभव की बात है कि विभिन्न मौलिक तत्त्व जलने पर भिन्न-भिन्न रंग दिखलाते हैं, जैसे कैल्सियम की लपट लाल, बेरियम की हरी, सोडियम की पीली तथा ताँबे की आसमानी दिखाई पड़ती है। दशहरा, दीपावली, ईद इत्यादि त्यौहारों पर प्रयोग में आने वाली आतिशबाज़ियाँ जो सुन्दर लाल प्रकाश देती हुई जलती हैं, स्ट्रॉन्शियम तत्त्व के लवणों की बनी होती हैं। इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने सूर्य से आने वाली किरणों के रश्मि चित्र तैयार किये एवं इन्हीं रश्मिचित्रों के माध्यम से सूर्य में विद्यमान तत्त्वों का पता लगाया। उनका कहना है कि सूर्य में लगभग वे सभी तत्त्व अवस्थित हैं जो हमारी पृथ्वी पर बहुलता में उपलब्ध हैं।

यह गैस का गोला निरन्तर अपने अक्ष पर घूम रहा है। इसे एक पूरा चक्कर लगाने में लगभग २७ दिन लगते हैं। इस गैस के गोले की सतह का तापमान ६००० अंश सेन्टीग्रेड है। इस तापमान पर हमारी पृथ्वी की समस्त भौतिक वस्तुओं का स्वरूप नष्ट हो जायेगा और वे वाष्प में परिणत हो जायेंगी। ज्यों-ज्यों उसकी सतह से केन्द्र की ओर जाते हैं तापमान

१. पृथ्वी बनी—देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय, पृ० १०।

2. Spectrum

बढ़ता ही जाता है। अनुमान है कि सूर्य के केन्द्र का तापमान लगभग ४ करोड़ अंश सेंटीग्रेड होगा। इस भाग में दबाव भी अत्यधिक है।

हमारी पृथ्वी की तरह सूर्य में भी आकर्षण शक्ति है, किन्तु इसका परिमाण पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से २८ गुना अधिक है। चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति पृथ्वी की तुलना में $1/6$ है। अतः यदि हम एक मन (लगभग ३७ किलोग्राम) भार की कोई वस्तु लें तो वह सूर्य पर २८ मन होगी, पर चन्द्रमा पर केवल पौने सात सेर रह जायगी। यदि ग्रहों और नक्षत्रों की यात्रा आरम्भ हुई तो बड़ी समस्याएँ पैदा होंगी। पृथ्वी का निवासी सूर्यलोक में बसने वालों (यद्यपि सूर्यलोक में जीवन की सम्भावना नहीं है) से ही व्यापार करना चाहेगा, चन्द्रलोक के निवासियों से नहीं। सूर्यलोक में यदि २८ मन (१०४५ किलोग्राम) दूध की मांग है तो वाराणसी का व्यापारी १ मन (३७ किलोग्राम) दूध भेजकर काम चला लेगा, लेकिन चन्द्रलोक की एक मन दूध की आवश्यकता-पूर्त्यर्थ उसे यहाँ से ६ मन (२२४-किलोग्राम) दूध भेजना पड़ेगा। यह है आकर्षण शक्ति का महत्त्व।

सूर्य की घनता पृथ्वी की घनता से केवल एक चौथाई है तथा इसका भार पृथ्वी की अपेक्षा सवा तीन लाख गुना अधिक है। शेपिले के अनुसार प्रतिक्षण अरबों उल्काएँ सूर्य में गिरती रहती हैं। इससे सूर्य का भार २००० टन प्रति सेकेंड बढ़ रहा है, पर विकिरण क्रिया द्वारा सूर्य का बहुत-सा पदार्थ नष्ट होता रहता है। विकिरण द्वारा नष्ट हुए पदार्थ की मात्रा उल्काओं द्वारा बढ़े हुए भार की मात्रा से कहीं अधिक है। विद्वानों का अनुमान है कि सूर्य का भार २५०,०००,००० टन प्रति मिनट कम हो रहा है। यदि यह ठीक भी मान लिया जाय तो भी सूर्य के भार में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होने में खरबों वर्ष लगेंगे।

1. Meteors, Shooting stars

सूर्य पर कभी-कभी काले धब्बे दिखाई पड़ते हैं। ये धब्बे क्रमशः बढ़ते रहते हैं। हर ग्यारहवें वर्ष इनकी संख्या अधिक हो जाती है। जर्मन ज्योतिषी श्वावे ने पता लगाया कि ये धब्बे ११ वर्ष के चक्र में घटा-बढ़ा करते हैं। इसे ही 'सूर्य कलंक चक्र' कहते हैं।

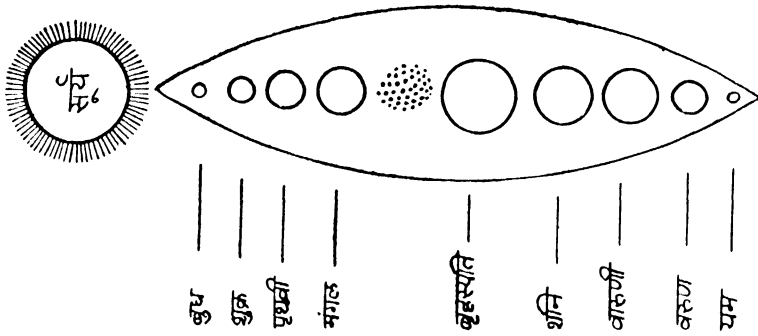
साधारणतः ये धब्बे हमें गोल दिखाई देते हैं। कुछ धब्बे झुण्ड के रूप में दृष्टिगत होते हैं। कभी-कभी ये हजारों मील लम्बे-चौड़े होते हैं। ये धब्बे पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हुए प्रतीत होते हैं। इन्हीं के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि सूर्य अपने अक्ष पर घूमता है। इन धब्बों का प्रभाव वर्षा पर बहुत पड़ता है।

बहुधा यह प्रश्न उठता है कि सूर्य को ताप और प्रकाश कहाँ से उपलब्ध होते हैं? क्या सूर्य एक दिन ठण्डा हो जायेगा? ऐसी दशा में पृथ्वी का क्या होगा? इस विषय में वैज्ञानिक क्षेत्रों में दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं। अधिकांश विद्वानों के मतानुसार सूर्य हाइड्रोजन खाकर जीवित रहता है। जैसे मनुष्य को भोजन से ताप और शक्ति प्राप्त होती है वैसे ही सूर्य को हाइड्रोजन परमाणुओं से ताप और शक्ति मिलती है। उसमें हाइड्रोजन के परमाणु टूटकर हीलियम में परिवर्तित होते रहते हैं। इस विघटन से जो शक्ति प्राप्त होती है वही ताप और प्रकाश के रूप में सूर्य के चारों ओर निकलती है।

कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि पहले सूर्य बहुत बड़ा था। अब वह शनैः-शनैः ठण्डा हो रहा है। ठण्डा होने के साथ ही उसके आयतन में भी कमी हो रही है। अतः उसके परमाणु एक दूसरे के अधिक निकट आते जा रहे हैं। इस भाँति परमाणुओं में संघर्ष हो जाता है और शक्ति की उत्पत्ति होती है। यही शक्ति सूर्य के ताप और प्रकाश की जननी है।

1. Sun spot cycle

इस तथ्य का उल्लेख हो चुका है कि प्रतिक्षण अरबों उल्काएँ सूर्य में गिरती रहती हैं। अतः विकिरण द्वारा नष्ट हुए पदार्थ की मात्रा को दृष्टि में रखते हुए भी सूर्य के भार में महत्वपूर्ण कमी होने में दीर्घकाल लगेगा। इसी प्रकार सूर्य के तापमान कम होने में भी बहुत समय लगेगा। लेकिन सूर्य का तापमान कम होते ही उसकी शक्ति क्षीण हो जायेगी एवं उसका रंग भी लाल हो जायेगा और अन्ततः वह प्रकाशहीन तारे का रूप धारण कर लेगा। किन्तु इस स्थिति से पूर्व ही पृथ्वी पर जीव का अवशेष मिट जायेगा। 'सूर्य आत्मा जगतः तस्थुषश्च' ऋग्वेद के उक्त वाक्य से प्रकट है कि पृथ्वी का सारा जीवन सूर्य के साथ आबद्ध है।



चित्र २--सूर्य से ग्रहों की दूरी

सौर-परिवार

मानवीय कुटुम्बों के समान सूर्य का भी अपना परिवार है। इस परिवार के सदस्य हैं ग्रह, लघुग्रह, धूमकेतु तथा उल्काएँ। ग्रहों के नाम हैं बुध,^१ शुक्र,^२ पृथ्वी,^३ मंगल,^४ बृहस्पति,^५ शनि,^६ वारुणी,^७ वरुण^८ और यम^९। ग्रहों के

1. Mercury

2. Venus

3. Earth

4. Mars

5. Jupiter

6. Saturn

7. Uranus

8. Neptune

9. Pluto

नाम सूर्य से क्रमशः दूरी के आधार पर दिये गये हैं। इनमें बुध सूर्य के सबसे अधिक निकट है और यम सबसे अधिक दूर।

सूर्य से ग्रहों की दूरी नीचे लिखी संख्याओं के अनुपात में है—

४, ७, १०, १६, २८, ५२, १००, १९६, ३८८

यह अनुपात निम्नलिखित संख्याओं को तीन से गुणा करने तथा चार जोड़ने पर प्राप्त किया जा सकता है।

०, १, २, ४, ८, १६, ३२, ६४, १२८

यह सम्बन्ध बोडे ने १७७२ में ज्ञात किया था।

ऊपर लिखित सभी ग्रह—क्या बड़े और क्या छोटे—एक ही दिशा में सूर्य की परिक्रमा करते हैं। सभी ग्रहों की कक्षाएँ लगभग वृत्ताकार हैं। ये कक्षाएँ सूर्य के चारों ओर एक दूसरे पर कुछ झुकी हुई हैं। सूर्य से दूरी के साथ ही पड़ोसी कक्षाओं के बीच की दूरी भी बढ़ती जाती है। यह नियमितता इस बात की द्योतक है कि ये सभी ग्रह एक ही कुटुम्ब के सदस्य हैं, एक ही पदार्थ से एक ही समय पर इन सब की रचना हुई है।

ग्रहों के भौतिक गुण तथा सौर परिवार में उनके स्थान का घनिष्ठ सम्बन्ध है। बुध, शुक्र, पृथ्वी और मंगल सूर्य के निकट हैं। ये ग्रह अपेक्षाकृत छोटे हैं, पर इनका घनत्व पानी के घनत्व का चार या पांच गुना है। दूरस्थ ग्रह वृहस्पति, शनि, वारुणि, वरुण अपेक्षाकृत बड़े हैं। इनका घनत्व लगभग जल के घनत्व के बराबर ही है। नवीनतम ग्रह यम के संबन्ध में हमारा ज्ञान अभी अति सीमित है।

सभी ग्रहों का सम्मिलित द्रव्यमान^१ भी सूर्य की संहति^२ का केवल ७४५वाँ भाग है अर्थात् सौर मण्डल का ९९.८७ प्रतिशत द्रव्यमान केवल सूर्य में ही निहित है।

ग्रहों का संक्षिप्त वर्णन करने से पूर्व यह और बता देना आवश्यक है

कि सूर्य के निकट के चार ग्रह बुध शुक्र, पृथ्वी मंगल, 'पार्थिव ग्रहों'^१ के नाम से तथा शेष पांच ग्रह 'बड़े ग्रहों'^२ की अभिधा से संबोधित किए जाते हैं।

बुध

प्रस्तुत ग्रह सूर्य के सबसे निकट है। अतः इसे सूर्य से अन्य ग्रहों की अपेक्षा अधिक प्रकाश और गर्मी प्राप्त होती है। इसी कारण अधिक चमकीला होने पर भी यह हमें साधारणतः दिखाई नहीं पड़ता। सूर्योदय से कुछ समय पूर्व तथा सूर्यास्त से कुछ समय अनन्तर हम इसे आकाश में देख सकते हैं।

इस ग्रह का व्यास लगभग ३००० मील है। इसका घनत्व पानी के घनत्व का लगभग चार गुना है। इसकी सतह का तापमान लगभग ३५० अंश सेंटीग्रेड है। संभवतः वर्णित ग्रह का अपना कोई वायुमण्डल नहीं है। यह ग्रह इतना छोटा है कि यदि गैस और वाष्प का कुछ अंश इस पर था भी तो वह आकाश में विलीन हो चुका होगा।

इस ग्रह से प्रकाश का बहुत कम भाग परावर्तित होता है। तभी अनुमान लगाया गया है कि इसकी सतह सपाट नहीं है। अन्य ग्रहों के सदृश इसमें भी पहाड़ आदि हैं।

बुध ग्रह ८८ दिन में अपनी कक्षा^३ का एक पूरा चक्कर लगा लेता है। अभी तक इसके किसी भी उपग्रह का पता नहीं चला।

शुक्र

आकाश में दृष्टिगोचर होने वाले सभी ग्रहों से यह सुन्दर है। सूर्य

1. Terrestrial planets

2. Major Planets

३. कक्षा—वह मार्ग है जिस पर एक ग्रह अन्य ग्रह या खगोल पिण्ड की परिक्रमा करता है।

उदय से चार घण्टे पूर्व और सूर्य डूबने के चार घण्टे पश्चात् तक हम इसके दर्शन कर सकते हैं। ध्यान से देखने पर हम दोपहर पर्यन्त इस ग्रह को देख सकते हैं।

शुक्र का व्यास ७६०० मील है, घनत्व पानी के घनत्व से पाँच गुना है। इसकी सतह चिकनी है। इसका अपना वायुमण्डल भी है। वर्णक्रम^१ के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि इसका उच्च वायुमण्डल आक्सीजन-रहित है। इसी आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि इसके वायुमण्डल की निचली तहों में भी आक्सीजन विद्यमान नहीं होगी। इसी कारण इस ग्रह पर जीवन की सम्भावना नहीं है।

शुक्र अपनी कक्षा पर २२५ दिन में एक पूरा चक्कर लगा लेता है। इसका भी कोई उपग्रह नहीं है।

मंगल

यह ग्रह आकाश में अंगारे के समान चमकता हुआ दृष्टिगत होता है। इसका व्यास ४१२५ मील है। इसकी सतह साधारणतः समतल है। इसका अपना वायुमण्डल है, जिसमें आक्सीजन भी विद्यमान है। आक्सीजन शक्ति की प्रेरक है, इसी से मंगल ग्रह पर जीव की उपस्थिति संभावित है।

पृथ्वी के वायुमण्डल की तुलना में मंगल का वायुमण्डल कम घना है। इसमें यदा-कदा बादल भी दिखाई पड़ते हैं तथा जलवाष्प की भी अवस्थिति है। पृथ्वी की अपेक्षा इसकी आकर्षण शक्ति एक तिहाई है। अपनी धुरी पर एक पूरा चक्कर लगाने में इसे २४ घंटे ३७ मिनट लगते हैं, किन्तु अपनी कक्षा के इर्द-गिर्द घूमने में इसे लगभग ६८६ दिन (१.८८ वर्ष) लग जाते हैं।

1. Spectrum

दूर दर्शक से देखने पर इस ग्रह में अन्य कई बातों का भान होता है। इनमें सबसे महत्वशाली हैं—‘रेखाएँ’, जिनका अर्थ लोगों ने नहरों के रूप में लगाया है। वैज्ञानिकों के विचार में पृथ्वी की भाँति मंगल ग्रह पर गर्मी और जाड़े की ऋतुएँ भी होती हैं। उपर्युक्त बातों के द्वारा ही मंगल ग्रह में जीव के अस्तित्व की कल्पना की जाती है। किन्तु दीर्घकाल से यह वाद-विवाद का विषय बना हुआ है, बहुत से खगोलशास्त्री इस मान्यता से सहमत नहीं हैं।

मंगल ग्रह के दो छोटे उपग्रह भी हैं—फोबोस^१ और डाइमोस।^२ इनका व्यास क्रमशः ४० मील और १० मील है।

बृहस्पति

सौर परिवार का यह सबसे बड़ा ग्रह है—इतना बड़ा कि यदि अन्य सभी ग्रहों की नाप तौल सम्मिलित कर ली जाय तो उससे भी यह बड़ा पड़ता है। इसका मध्यरेखीय व ध्रुवीय व्यास क्रमशः ८८८०० तथा ८२८९० मील है। इससे स्पष्ट है कि बृहस्पति हमारी पृथ्वी की तरह ध्रुवों पर चपटा है। इसका घनत्व (१.३४) सूर्य के घनत्व (१.४१) के लगभग समान ही है। अन्य ग्रहों की अपेक्षा यह अपनी धुरी पर तेजी से घूमता है। लगभग १० घण्टे में यह अपने अक्ष पर पूरा चक्कर लगा लेता है। पर अपनी कक्षा पर एक चक्कर लगाने में बृहस्पति को लगभग ४३२८ दिन (११.८६ वर्ष) लगते हैं।

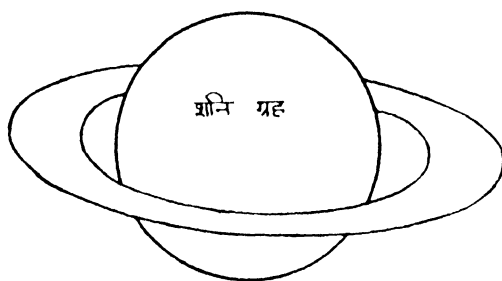
प्राचीन काल में यह धारणा थी कि बृहस्पति सूर्य के समान आग का एक गोला है। आधुनिक खोजों से ज्ञात हुआ है कि बृहस्पति के बाहरी भाग का तापमान बहुत कम है। बृहस्पति की सतह पर दिखाई पड़ने वाले बादल धुँएँ के बादल नहीं हैं। ये कार्बन-डाइ-आक्साइड तथा अन्य गैसों से निर्मित हैं।

यह संभव है कि बृहस्पति का आन्तरिक भाग गर्म हो। जैफरी के अनुसार इस ग्रह का भीतरी भाग लोह आदि धातुओं का बना हुआ है। यह भाग चारों दिशाओं में वर्ष की चादरों से ढका हुआ है। इसके ऊपर ठण्डी गैसों का विस्तृत वायुमण्डल है।

बृहस्पति के ११ उपग्रह हैं। इनमें से चार उपग्रह यथा, इओ,^१ यूरोपा,^२ गेनीमीड^३ एवं कैलिस्टो^४ प्रधान हैं। इनका व्यास क्रमशः २११०, १८६५, ३२७३ और ३१४२ मील है। बृहस्पति से इनकी दूरी भी एक लाख मील से अधिक ही है।

शनि

सौर परिवार का यह सर्वाधिक आकर्षक ग्रह है। दूरदर्शक से देखने पर इस ग्रह के चारों ओर एक वलय दिखाई पड़ता है। यह इस ग्रह की निजी



चित्र ३--शनि

विशेषता है। ऐसा वलय अन्य किसी भी ग्रह अथवा आकाशीय पिण्ड के साथ नहीं देखा गया।

इस ग्रह का मध्यरेखीय व्यास ७५१०० मील तथा ध्रुवीय व्यास ६७२०० मील है। अतः यह ग्रह भी ध्रुवों पर चपटा है। पृथ्वी अपने ध्रुवों पर लगभग

1. Io	2. Europa	3. Ganymede	4. Callisto

१२ मील, बृहस्पति लगभग ३००० मील और शनि लगभग ४००० मील दबा हुआ है।

ग्रहों में यह सबसे हलका है। इसका घनत्व पानी के घनत्व का $7/10$ है। इसकी सतह समतल है। सतह का तापमान लगभग 130 अंश सेंटीग्रेड है। जैफरी के अनुसार शनि का 'आन्तरक' भी धातुओं का बना हुआ है। इसका ऊपरी भाग बर्फ से ढका हुआ है। ऊपर वायुमण्डल है, जिसमें कार्बनडाइ-आक्साइड आदि के ठोस कण बादलों के रूप में विद्यमान हैं।

शनि अपने अक्ष पर 10 घण्टे 14 मिनट में एक चक्कर लगाता है। परन्तु अपनी कक्षा का एक पूरा चक्कर लगाने में इसे लगभग $19\frac{1}{2}$ वर्ष लगते हैं।

इस ग्रह के 9 उपग्रह ज्ञात हैं। ये सभी उपग्रह अपने जनक-ग्रह शनि से एक लाख मील से भी अधिक दूरी पर हैं।

वारुणी

वारुणी एक बड़ा ग्रह है। इसकी खोज का श्रेय विलियम हरशेल को है। इसका व्यास पृथ्वी के व्यास का लगभग चौगुना (30900 मील) है। अतः इसका आयतन पृथ्वी के आयतन का 64 गुना है। इसका घनत्व (1.36) पानी के घनत्व (1) से अधिक है।

इस ग्रह की सतह ठण्डी है। वहाँ का तापमान लगभग -140 अंश सेंटीग्रेड है। इस ग्रह पर गहरा वायुमण्डल भी है। यह अपनी धुरी पर लगभग पौने ग्यारह घण्टे में एक चक्कर लगाता है, पर सूर्य से अधिक दूरी होने के कारण अपनी कक्षा पर सूर्य के चारों ओर एक चक्कर लगाने में इसे लगभग 12 वर्ष लग जाते हैं।

वारुणी के पाँच उपग्रह भी हैं। अधिकतर उपग्रह अपने जनक-ग्रहों के चारों तरफ उसी दिशा में चक्कर लगाते हैं, जिस दिशा में उनके जनक-ग्रह अपने जन्मदाता सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। किन्तु कुछ उपग्रह विपरीत दिशा में भ्रमण करते हैं। उपग्रहों की इस विपरीत गति को प्रतिदिग्-गति^१ कहते हैं। वारुणी के पाँचों उपग्रहों में से चार प्रतिदिग् गति से चलते हैं। बृहस्पति के तीन उपग्रह तथा शनि का एक उपग्रह प्रतिदिग् गति दिखलाते हैं।

वरुण^२

वरुण ग्रह के खोज की कहानी अति रोचक है। बहुत-से ग्रह और आकाशीय पिण्ड खगोलज्ञों को दूरदर्शक की सहायता से आकाश का वेध करते समय स्वतः ही दिखलाई पड़ गये थे। लेकिन वरुण ग्रह के विषय में दूसरी ही बात है। खगोल सम्बन्धी अनुसन्धान में कुछ त्रुटियों का निराकरण करने के लिए आकाश में विशेष स्थान पर एक ग्रह की स्थिति पहले ही बता दी गयी। बाद में जब दूरदर्शक से देखा गया तो यह पूर्वा-नुमान^३ सच निकला और उसी विशिष्ट स्थल पर 'वरुण' ग्रह दिखाई पड़ा।

वारुणी ग्रह की खोज के उपरान्त वैज्ञानिकों को बोध हुआ कि यह ग्रह आकर्षण-सिद्धान्त के अनुसार ठीक नहीं चलता है, जब कि अन्य ग्रहों की कक्षा आकर्षण-सिद्धान्त के अनुसार ठीक है। इस त्रुटि का कारण जानने के निमित्त खोज आरम्भ हुई। फ्रांसीसी विद्वान् लेवेरियर ने परिकलन^४ करके आकाश में एक नवीन ग्रह की संभावना प्रकट की। इस नये ग्रह के आकर्षण के फलस्वरूप ही वारुणी का मार्ग त्रुटिपूर्ण दिखाई पड़ता था।

1. Retrograde motioan

2. Neptune

3. Forecast

4. Calculation

वरुण ग्रह पृथ्वी से बहुत बड़ा है। इसका व्यास ३३००० मील है। पृथ्वी की अपेक्षा यह सूर्य से ३० गुना अधिक दूर है। यह १५ घण्टे ४० मिनट में अपनी धुरी पर एक चक्कर लगाता है, पर सूर्य की परिक्रमा करने में इसे लगभग १६५ वर्ष लग जाते हैं। इसका घनत्व १.३६ है तथा इसकी सतह का तापमान—२०० अंश सेंटीग्रेड के लगभग है।

वर्णक्रम के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि इस ग्रह की आन्तरिक रचना वारुणी के समान होगी। इस ग्रह के दो उपग्रह ज्ञात हैं—ट्रिटन^१ और नेराइड।^१ इनमें से ट्रिटन प्रतिदिग्-गति से चलता है।

यम

सर्वप्रथम सन् १९१४ में अमेरिका के खगोलज्ञ परसिवल लोवेल ने इस ग्रह के सम्बन्ध में पूर्वानुमान किया था। किन्तु प्रस्तुत ग्रह १६ वर्ष उपरान्त २१ जनवरी सन् १९३० को दूरदर्शक द्वारा प्रथम बार दिखाई पड़ा।

‘यम’ पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से ४० गुना अधिक दूरी पर है। वह ग्रह अत्यन्त मन्द गति से चलता है। सूर्य की परिक्रमा करने में इसे २४८ वर्ष लग जाते हैं। इस ग्रह के विषय में हमारा ज्ञान अभी अत्यन्त सीमित है। खगोलज्ञ इसके अध्ययन में रत हैं। आशा है निकट भविष्य में ही हमें इसकी कक्षा, व्यास इत्यादि के बारे में ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

उल्काएँ और उल्का-पत्थर^३

आकाश में टूटते हुए तारों को प्रायः सभी ने देखा है। इन्हें ही उल्का कहते हैं। टूटते समय इनसे क्षणिक चमक उत्पन्न होती है। टूटने के साथ ही कई बार गरज भी सुनाई पड़ती है।

आकार के आधार पर उल्काओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहली श्रेणी में छोटे आकार की उल्काएँ परिगणित होती हैं। ये उल्काएँ पृथ्वी पर पहुँचने से पूर्व ही जलकर वाष्पमय हो जाती हैं।

दूसरी कोटि की उल्काएँ अपेक्षाकृत बड़ी होती हैं। ये अत्यधिक चमकीली होती हैं। इसलिए इन्हें 'आग के गोले' भी कहा जाता है। इनके टूटने पर भयंकर नाद होता है। टूटते ही ये अपने आकाशीय मार्ग में भस्म हो जाती हैं।

तीसरे वर्ग में उल्का-पत्थर को स्थान दिया जाता है। जलने पर इन उल्काओं का कुछ भाग पृथ्वी तक पहुँच जाता है। उल्का-पत्थरों के परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि प्रायः सभी उल्काएँ निकिल और लौह आदि के सम्मिश्रण से बनी हैं। कुछ उल्काएँ तो पूर्णतः लौह और निकिल से प्रणीत हैं। इन्हें लौह उल्का-पत्थर कहते हैं। कुछ उल्काओं में आक्सीजन और सिलिकन तत्त्व प्रधान रहते हैं और कुछ में लौह, निकिल, आक्सीजन, सिलिकन इत्यादि का प्राचुर्य रहता है।

फैरिंगटन ने रासायनिक विश्लेषण की कसौटी पर उल्का-पत्थरों का निम्नांकित औसत योग बताया है—

लौह	७२.०६%
आक्सीजन	१०.१%
निकिल	६.५%
सिलिकन	५.२%
मैगनीशियम	३.८%
अन्य	०.५%

९८.१६

पृथ्वी के विभिन्न भागों से सैकड़ों उल्का-पत्थर प्राप्त हुए हैं। इनका भार दो-चार पौंड से लेकर ६० टन तक है। विश्व का सबसे बड़ा उल्का

पत्थर ६० टन भार का है। यह दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका के गुटफौनटाइन स्थान के समीप प्राप्त हुआ था।

उल्का-पात का प्रभाव कभी-कभी बड़ा भयंकर होता है। ३० जून, सन् १९०८ को उल्का-पात के प्रभाव से उत्तरी साइबेरिया में सैकड़ों वर्गमील क्षेत्र नष्ट-भ्रष्ट हो गया। धरती में बड़े-बड़े गड्ढे पड़ गये। जंगल तृण रहित हो गये। किन्तु आबादी दूर-दूर छिटकी होने के कारण मृत्यु-संख्या अल्प रही।

कभी-कभी आकाश में उल्काओं की बौछार-सी दिभार्ई पड़ती है। सैकड़ों की संख्या में उल्काएँ आकाश में गिरती हुई दिखाई पड़ती हैं। तब आकाश चमचमाने लगता है और उसकी शोभा दर्शनीय हो जाती है।

उल्का-पत्थर आग्नेय शिलाओं से बहुत कुछ मिलते-जुलते होते हैं। इसी कारण प्राचीन काल में यह धारणा थी कि उल्काएँ पृथ्वी पर की गैसों के जलने से उत्पन्न होती हैं और उल्का-पत्थर पृथ्वी पर के ही पत्थर हैं। किन्तु जब कई स्थानों पर लोगों ने स्वयं आकाश से पत्थरों को गिरते देखा तब उन्हें यह विश्वास हुआ कि उल्का और उल्का-पत्थर आकाशीय वस्तुएँ हैं पार्थिव वस्तु नहीं। अध्ययन के फलस्वरूप इन पत्थरों पर वायुमण्डल के मार्ग से होकर आने के चिह्न भी मिले हैं।

पर क्या उल्काएँ हमारी पृथ्वी आदि के समान सौर परिवार की सदस्या हैं? अथवा यह अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले स्वतन्त्र पिण्ड हैं। योग, संरचना आदि के आधार पर विज्ञान-विज्ञ उल्काओं को सौर-परिवार का ही एक अंग मानते हैं। उनके विचार में उल्काएँ किसी घटना के फलस्वरूप बृहद् आकाशीय पिण्ड के छोटे-छोटे टुकड़ों में टूट जाने से बनी हैं। यद्यपि यह विचार सर्वमान्य है, फिर भी संभव है कि कुछ उल्काएँ सौर-परिवार के परे आकाश में जन्मी हों। उल्का-पत्थरों का गहन अध्ययन ही हमें इसका ठीक उत्तर दे सकेगा।

उल्काओं की आयु का ज्ञान हमें पृथ्वी की आयु जानने में सहायक होगा। उल्का-पत्थरों की आयु जानने की विधियों पर हम आगे लिखेंगे।

पुच्छल-तारे या धूमकेतु^१

भारतीय ज्योतिष-विज्ञान में पुच्छलतारों के विषय में अनुसन्धान हुआ है। अथर्वसंहिता में उल्काओं और धूमकेतुओं का उल्लेख है। हमारे यहाँ धूमकेतु का दर्शन अनिष्ट का द्योतक माना गया है। महाभारत के समय भी आकाश में धूमकेतु दिखाई पड़ा था। आचार्य वराहमिहिर के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बृहत्संहिता' में इनका वर्णन पढ़ने को मिलता है।

धूमकेतुओं का नामकरण भी भारतीय और पाश्चात्य दोनों पद्धतियों में किया गया है। पाश्चात्य पद्धति के अनुसार पुच्छलतारों का नाम उनके अन्वेषकों के नाम पर है, यथा—हेली-धूमकेतु, बुक्स-धूमकेतु आदि। भारतीय पद्धति में इन्हें रविपुत्र, चन्द्रपुत्र, बुधपुत्र, गुरुपुत्र आदि कहा गया है। कुछ पुच्छलतारों का नाम रवि-सम्भव, बुध-सम्भव, शुक्र-सम्भव प्रभृति हैं। ऋषियों के नाम पर भी कुछ पुच्छल-तारों का नामकरण हुआ है, जैसे स्वार्थकेतु, रश्मिकेतु, अग्निकेतु आदि। भारतीय ज्योतिषियों ने पुच्छल-तारों के वर्ण, रूप और आकार आदि का वर्णन किया है। उन्होंने इन पुच्छलतारों के उदय और अस्त होने के समय का भी उल्लेख किया है।

पुच्छल-तारे या धूमकेतु भी आकाशीय अवयव हैं। हमें यदा-कदा आकाश में इनका दर्शन हो जाता है। इनका नाभिक चमकीला होता है और इसके पीछे एक पूँछ होती है। 'नाभिक' शिलाओं, धातुओं, ठोस गैसों तथा हिमकणों से बना हुआ होता है तथा 'दुम' गैस एवं धूल से निर्मित रहती है। धूमकेतु की पूँछ तभी दिखाई पड़ती है जब कि वह सूर्य के निकट होता है तथा यह धूमकेतु के पीछे धुँएँ के समान चलती दिखाई पड़ती है। ज्यों-ज्यों धूमकेतु सूर्य के निकट आता है, उसकी पूँछ लम्बी दिखाई देती है।

1. Comets

धूमकेतु का नाभिक साधारणतः १०-१२ मील से अधिक लम्बा नहीं होता, किन्तु उसकी पूँछ करोड़ों मील लम्बी होती है। ग्रहों के समान धूमकेतु भी सूर्य की परिक्रमा करते दिखाई पड़ते हैं। इनकी कक्षा साधारणतया दीर्घ वृत्ताकार होती है। धूमकेतुओं को अपनी कक्षा पर एक चक्कर लगाने में चार-पाँच वर्ष से लेकर कई सहस्र वर्ष तक लग जाते हैं। कुछ धूमकेतुओं के लौटने का तो कोई निश्चय ही नहीं है। एकबार दृष्टिगोचर होने के उपरान्त वे पुनः नहीं दिखाई पड़ते। न जाने शून्य में कहाँ ओझल हो जाते हैं। सम्भव है कई सहस्र वर्ष के बाद वह वापस लौटें, किन्तु इसका हिसाब लगाना कठिन है।

हैली-पुच्छलतारा ७५ वर्ष में एक चक्कर लगाता है। यह धूमकेतु पहले-पहल सन् १४५६ में देखा गया था। तत्पश्चात् सन् १५३१, १६०७, १६८२ में भी दिखाई पड़ा। पिछली बार यह सन् १९१० में देखा गया। पुनः यह धूमकेतु सन् १९८६-८७ में देखा जा सकता है। ग्रहों की आकर्षण शक्ति के हेरफेर के कारण कभी-कभी पुच्छल-तारे के पुनः दृष्टिगत होने में कुछ महीनों का अन्तर पड़ जाता है।

कुछ धूमकेतु ऐसे भी हैं, जो सौर-मण्डल के किसी ग्रह से ही वापस लौट आते हैं। ज्ञात हुआ है कि १८ धूमकेतु बृहस्पति का चक्कर लगाकर लौट आते हैं। आठ धूमकेतु ऐसे हैं जो वारुणी का चक्कर लगाकर वापस आ जाते हैं। किन्तु अभी तक ज्योतिष-विज्ञान धूमकेतुओं के उदय और अस्त होने के समय का निर्धारण ठीक प्रकार से नहीं कर पाया है।

अध्याय ३

पृथ्वी

विज्ञान ने मनुष्य को अपरिमित शक्ति प्रदान की, प्रकृति को उसकी चेरी बनाया, और ऐश्वर्य तथा वैभव उसके चरणों में उड़ेल दिया। काल तथा स्थान की बाधाएँ मिट गयीं।

—अज्ञात

पृथ्वी का गहरा जानने के लिए हमने अन्तरिक्ष की सैर की। आकाश में गहरे पैठ कर विश्व का भेद समझने का प्रयास किया। पृथ्वी के पूर्वजों के सम्बन्ध में ज्ञानार्जन किया एवं सौर परिवार की वशावली तैयार की। यह हमारा दैनिक अनुभव ही नहीं, प्रत्युत् एक महान् सत्य भी है कि जन-जीवन के विकास में वातावरण और वंशानुक्रम का अक्षुण्ण प्रभाव पड़ता है। अतः पृथ्वी के स्वरूप की जानकारी के लिए हमें पिछले दोनों अध्यायों, विशेषतः सौर परिवार के अन्य सदस्यों का ज्ञान अत्यावश्यक होगा।

हमारी पृथ्वी भी सौर परिवार की एक सदस्या है। इसका ध्रुवीय व्यास^१ ७८९९ मील तथा वैषुवत व्यास^२ ७९२६ मील है। अतः पृथ्वी गेंद की तरह गोल न होकर ध्रुवों पर नारंगी की भाँति कुछ चपटी हो गयी है। वेनगार्ड^३ द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर वैज्ञानिक इस धारणा

1. Polar Diameter

2. Equatorial Diameter

३. 'वेनगार्ड'—एक छोटा गोलाकार उपग्रह है जिसे अमेरिका ने दो वर्षपूर्व १७ मार्च १९५८ को पृथ्वी की परिक्रमा करने के लिए अन्तरिक्ष

पृथ्वी के सम्पूर्ण धरातल का क्षेत्रफल १,९६,९५,००,०० वर्गमील है।

—साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', नयी दिल्ली, १५ मई १९६०; पृ० ४।

२. सौर परिवार, डा० गोरखप्रसाद, १९३१, पृ० ४५७।

इसका दो-तिहाई भाग लगभग १३,९,४,४०,००० वर्गमील जल से ढका हुआ है। शेष लगभग ५,७५,१०,००० वर्गमील स्थल है। इस सबके ऊपर वायुमण्डल है।

वायुमण्डल^१

वायुमण्डल पृथ्वी की ओढ़नी के सदृश है। यह कई गैसों के सम्मिश्रण से बना है। इनमें नाइट्रोजन, आक्सीजन, कार्बन-डाइ-आक्साइड तथा हाइड्रोजन मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त इसमें बहुत-से धूलिकण, मिट्टी, रेत, जलवाष्प इत्यादि भी वर्तमान रहते हैं।

पृथ्वी के समीप वायुमण्डल अधिक घना है। ज्यों-ज्यों हम ऊपर चढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों वायु हलकी होती जाती है और उसका दबाव हलका हो जाता है। यही कारण है कि पर्वतारोहियों को ऊपर चढ़ते समय साँस लेने में कठिनाई होती है। अधिक ऊँचाई पर इसमें हीलियम आदि हलकी गैसों का ही बाहुल्य है।

वायुभार के साथ-साथ वायुमण्डल के ऊपरी भाग में तापमान भी कम हो जाता है। लगभग प्रति सौ गज ऊपर जाने पर १ अंश फारनहाइट तापमान कम हो जाता है। लगभग दस मील की ऊँचाई के ऊपर (वायु-मंडल) स्थिर है वहाँ तापमान भी स्थिर है।

पृथ्वी के ऊपर व्याप्त वायुमण्डल का महत्त्व इसलिए भी और अधिक है, कि इसके समतुल्य अन्य ग्रह और उपग्रह वायुमण्डल-विहीन हैं।

जलमण्डल^२

यदि वायुमण्डल ने पृथ्वी को एक ओढ़नी की तरह ढक रखा है, तो जलमण्डल ने भी स्थलमण्डल को चारों ओर से घेरा हुआ है। जलमण्डल

का घेरा कहीं-कहीं सकरा हो गया है और कहीं-कहीं बहुत चौड़ा। जलमण्डल की सर्वाधिक गहराई का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि संसार का सबसे ऊँचा पर्वत शिखर एवरेस्ट (गौरीशंकर) भी इसमें डूब जायगा फिर भी वह जल के स्तर से एक मील नीचा रहेगा।

जलमण्डल में विद्यमान जल की मात्रा का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि यदि धरातल के ऊँचे-नीचे भागों को तोड़-फोड़कर समतल कर दिया जाय तो सम्पूर्ण धरातल पर लगभग पौने दो मील गहरा जल का आवरण हो जायगा।

जलमण्डल के मुख्य अवयव हैं—सागर और महासागर। इनका जल खारा है। सर्वप्रथम समुद्र का जल खारा नहीं था। नदियाँ अपने साथ बहुत-से क्षार पदार्थ बहाकर लायीं, उससे सागर का जल खारा हो गया। खारापन मुख्यतः सोडियम क्लोराइड^१ तथा मैग्नीशियम क्लोराइड^२ के कारण है। भार के हिसाब से सागर जल का संघटन नीचे दिया गया है—

आक्सिजन	८५.८%
हाइड्रोजन	१०.७%
क्लोरीन	२.१%
सोडियम	१.१%
मैग्नीशियम	०.१४%
अन्य	०.१६%
	१००.००

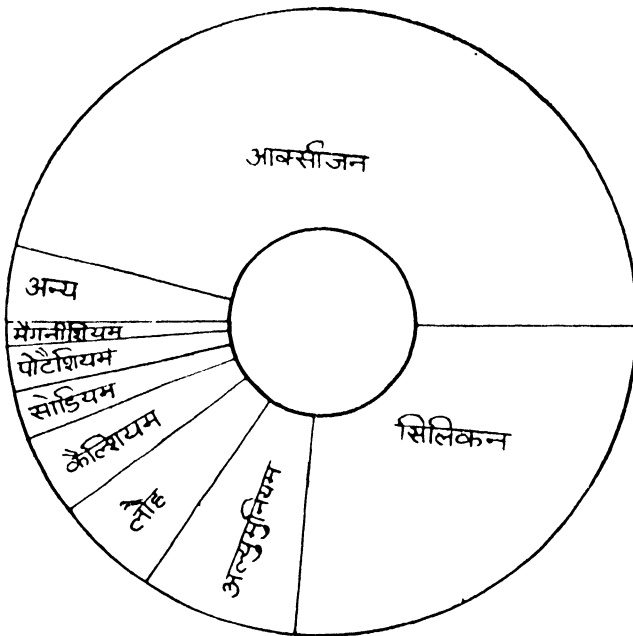
इन क्षारों की मात्रा का ज्ञान हमें समुद्र की आयु ज्ञात करने में बड़ा

1. Sodium Chloride (Na Cl)
2. Magnesium Chloride (MgCl₂)

सहायक सिद्ध होगा। समुद्र की आयु के आधार पर हम पृथ्वी की आयु जान सकेंगे।

भूपटल^१

वायुमण्डल और जलमण्डल का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने के बाद हम पृथ्वी के उस भाग पर आते हैं, जिससे हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध है। पृथ्वी की जिस ऊपरी सतह पर हम मकान बनाकर रहते हैं, जिस पर हम जमीन जोतकर खाद्य पदार्थ उपजाते हैं, वह भूपटल का ही एक भाग है।



चित्र ४--भूपटल का रासायनिक योग

संक्षेप में मिट्टी व शिलाओं से बने पृथ्वी के बाहरी पतले आवरण को ही भूपटल कहते हैं। इसे ही 'पृथ्वी की पपड़ी' के नाम से संबोधित किया

1. Lithosphere (Crust of the Earth)

जाता है। पृथ्वी की पपड़ी समतल न होकर ऊँची-नीची है। इसकी गहराई कहीं भी पचास मील से अधिक नहीं है। पपड़ी का संघटन जानने के लिए सन् १९२४ में एफ० डब्ल्यू० क्लार्क और एच० एस० वाशिंगटन नामक दो अमेरिकन भौमिकीज्ञों ने पृथ्वी के विभिन्न भागों से तथा पपड़ी की भिन्न-भिन्न गहराइयों से (लगभग १० मील तक गहराई में) बहुत-से प्रतिदर्श^१ एकत्र किये और उनका रासायनिक विश्लेषण किया। ५१५९ विश्लेषणों के आधार पर उन्होंने पृथ्वी की पपड़ी का जो संघटन बताया है वह अधोलिखित सारणी में दिया गया है। यह सत्य है कि निम्नलिखित आंकड़े पपड़ी का बिल्कुल ठीक-ठीक संघटन नहीं देते, तब भी अथक परिश्रम के फलस्वरूप उपलब्ध यह परिणाम हमें पपड़ी में विद्यमान तत्वों की आनुपातिक मात्रा का ज्ञान कराने के लिए यथेष्ट है—

(तत्त्व में)

(आक्साइड में)^२

आक्सिजन	४६.७१	सिलिका	५९.०७
सिलिकन	२७.६९	एल्यूमिना	१५.२२
एल्यूमिनियम	८.०७	लोहिक आक्साइड	३.१०
लोहा	५.०५	लोहस आक्साइड	३.७१
कैल्सियम	३.६५	मैगनीशिया	३.४५
		कैल्सियम आक्साइड	५.१०
सोडियम	२.७५	सोडियम आक्साइड	३.७१
पोटाशियम	२.५८	पोटाशियम आक्साइड	३.११

1. Samples

२. आक्साइड के योग सूत्र में (क्रमशः) SiO_2 , Al_2O_3 , Fe_2O_3 , FeO , MgO , CaO , Na_2O , K_2O , H_2O , CO_2 , TiO_2 , P_2O_5 , MnO , ZrO_2 , BaO , SrO .

(तत्त्व में)

(आक्साइड में)

मैगनीशियम	२.०८	हाईड्रोजन आक्साइड	१.३०
टाइटेनियम	०.६२	कार्बन डाई आक्साइड	०.३५
हाइड्रोजन	०.१४	टाइटेनियम आक्साइड	१.०३
फास्फोरस	०.१३	फास्फोरस आक्साइड	०.३०
कार्बन	०.०९४	मैगनीज आक्साइड	०.११
मैगनीज	०.०९०	ज़रकन आक्साइड	०.०४
गन्धक	०.०५२	वेरियम आक्साइड	०.०५
वेरियम	०.०५०	स्ट्रोंशियम आक्साइड	०.०२
विरल तत्त्व	०.२४४	शेष	०.३३
१००.०००		१००.००	

उपरिलिखित सारणी के अध्ययन से स्पष्ट है कि पृथ्वी की पपड़ी में ९८ तत्त्वों में से मुख्यतः ९ ही पाये जाते हैं। इनमें भी आक्सिजन, सिलिकन और ऐल्यूमिनियम के नाम तो विशेष रूपेण उल्लेख्य हैं।

पृथ्वी के इस उपरी भाग में हमें कहीं शिलाएँ दृष्टिगोचर होती हैं, और कहीं मिट्टी या रेत। मिट्टी का आवरण भी किसी स्थान पर दो चार इंच मोटा है तो कहीं-कहीं सहस्रों फुट शिलाएँ, बालू मिट्टी। इन सभी का आधार एक ही है। शिलाएँ तत्वों के समुदाय से बनी हैं। इन्हीं शिलाओं का चूरा होने से पहले बालू-कण बनते हैं, तदुपरान्त मिट्टी।

पपड़ी की शिलाएँ भी विविध प्रकार की होती हैं। ये तीन वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं। आग्नेय शिलाएँ^१, तलछटी या अवसादी^२ शिलाएँ और कायान्तर्जित शिलाएँ^३। भारीपन के आधार पर भी हम पपड़ी की

शिलाओं का वर्गीकरण कर सकते हैं। पहली श्रेणी में हलकी, कम भार वाली शिलाएँ आती हैं, जैसे ग्रेनाइट आदि। इनके रंग भी हलके होते हैं। इनमें सिलिका^१ और एल्युमिना^२ की प्रधानता रहती है। इन सब शिलाओं को सिएल^३ नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। 'सिएल' शब्द अँग्रेजी के सिलिका और एल्युमिना शब्दों के प्रथमाक्षर जोड़कर बनाया गया है। इन शिलाओं का घनत्व २.७ के लगभग है।

दूसरी श्रेणी में भारी शिलाएँ आती हैं, यथा बेसाल्ट आदि। इनके रंग गहरे होते हैं; सिलिका इनमें भी प्रमुख परिमाण में रहता है, पर प्रथम श्रेणी की शिलाओं की अपेक्षा कम। इन शिलाओं में दूसरा प्रधान पदार्थ है मैग्नीशिया^४। दूसरी श्रेणी की शिलाओं को 'सिमै'^५ के नाम से पुकारा जाता है। 'सिएल' शब्द की भाँति 'सिमै' शब्द भी सिलिका और मैग्नीशिया शब्दों के प्रथमाक्षर जोड़कर बनाया गया है। इन शिलाओं का घनत्व २.९ से ३.४ तक होता है।

शिलाओं का विस्तृत वर्णन अगले अध्याय में प्रस्तुत किया जायगा।

पृथ्वी का अन्तर्भाग^६

पृथ्वी में पपड़ी के नीचे क्या है? यह दीर्घकाल तक वाद-विवाद का प्रश्न बना रहा, क्योंकि यह भाग सर्वदा मनुष्य की पहुँच के बाहर रहा है। पृथ्वी का अर्धव्यास है लगभग ४००० मील और अधिक से अधिक गहराई। जहाँ तक मनुष्य की पहुँच हो सकी है—केवल तीन मील है। यह विलकुल इसी प्रकार है जैसे हाथी के शरीर में पिन चुभा कर उसके भीतर का हाल मालूम करना। किन्तु वैज्ञानिक भी निश्चेष्ट रहने वाले नहीं।

1. Silican dioxide (SiO_2)	2. Aluminium oxide (Al_2O_3)
3. Sial	4. Magnesium oxide (MgO)
5. Sima	6. Interior of the Earth

उन्होंने पृथ्वी के दूतों से ही परीक्ष रूप से अन्तर्भाग का हाल जानने का प्रयास किया और उन्हें सफलता प्राप्त हुई।

यह सर्वमान्य है कि पृथ्वी का आन्तरिक भाग सतह से लगभग १८०० मील गहराई पर है। आन्तरिक का व्यास पृथ्वी के सम्पूर्ण व्यास के आधे से अधिक है तथा इसका द्रव्यमान^१ पृथ्वी के द्रव्यमान का लगभग एक-तिहाई है।

भूकम्प की लहरों, ज्वालामुखियों, खदानों तथा संछिद्रों^२ के अध्ययनोपरान्त पृथ्वी के अन्तर्भाग के सम्बन्ध में दो मुख्य बातों का बोध होता है —

१. पृथ्वी के अन्दर गहराई के साथ तापमान की वृद्धि।

२. पृथ्वी के भीतर गहराई के साथ-साथ घनत्व की बढ़ोतरी

ज्यों-ज्यों हम धरती के नीचे जाते हैं, तापमान बढ़ता ही जाता है। औसतन प्रति ३० या ३५ मीटर पर तापमान १ अंश सेंटीग्रेड बढ़ जाता है। तापमान की इस प्रकार की वृद्धि को तापमान-प्रवणता^३ कहते हैं। विभिन्न स्थानों पर विभिन्न तापमान-प्रवणताएं पायी जाती हैं। अमेरिका में प्रति ४२ मीटर पर एक अंश तथा यूरोप में ३० मीटर पर एक अंश। तापमान-प्रवणता की भिन्नता शिलाओं के संघटन, रेडियो-जनक पदार्थों के संग्रह एवं समीपस्थ गर्म पानी के झरनों आदि पर निर्भर होती है।

यदि ५० मीटर पर भी १ अंश सेंटीग्रेड तापमान-वृद्धि का हिसाब लगाया जाय तो पृथ्वी के केन्द्रीय भाग का तापमान १३०० अंश सेंटीग्रेड से अधिक होगा। इससे उच्च तापमान पर हमारी कोई भी भौतिक वस्तु अपने रूप में नहीं रहेगी।

जल ऊंचाई से निचाई की ओर बहता है। इसी प्रकार ताप उच्च तापीय प्रदेशों से कम ताप वाले प्रदेशों की ओर बहता है। अतः तापमान

के आधार पर हम एक ऐसी पृथ्वी की कल्पना कर रहे हैं, जिसका केन्द्रीय भाग अति तप्त है। ताप केन्द्रीय भाग से बाहर की ओर क्रमशः कम होता जा रहा है। पृथ्वी की सतह का ताप विकिरण क्रिया द्वारा कम होता जा रहा है। यह कहा जा सकता है कि पृथ्वी धीरे-धीरे ठण्डी हो रही है, पर पूर्णरूपेण ऐसा है नहीं। रेडियो-सक्रिय पदार्थों के विघटन से पृथ्वी को निरन्तर ताप प्राप्त हो रहा है। नवीनतम गवेषणाओं से यह भी ज्ञात हुआ है कि गुरुत्वाकर्षण के प्रभावस्वरूप पृथ्वी के भीतर जो स्तरीकरण हो रहा है उससे भी पृथ्वी को तापीय ऊर्जा प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त सूर्य की किरणों से भी पृथ्वी को ताप प्राप्त होता है।

पृथ्वी के पृथक्-पृथक् भागों में घनत्व की भी भिन्नता है। पपड़ी की शिलाओं का घनत्व २.७ से २.९ तक है। सम्पूर्ण पृथ्वी का घनत्व ५.५ से कहीं अधिक है (लगभग १०-१२)। पृथ्वी का घनत्व जानने में हमें भूकम्प की लहरों से बड़ी सहायता मिली है।

पृथ्वी के अन्तर्भाग की दशा कैसी है? अन्तर्भाग ठोस है, द्रव है या वायव्य (गैसीय) है। इस विषय पर वैज्ञानिकों में आपस में बड़ा मतभेद रहा है। लार्ड कैल्विन ने दो अण्डे लेकर—जिनमें से एक उबला हुआ था और दूसरा बिना उबला—यह दिखाया कि केवल उबला हुआ अण्डा ही घूम सकता है। क्योंकि उसका भीतरी भाग ठोस है। पृथ्वी भी मुच्चारूप से अपनी धुरी पर घूमती है। यह तभी सम्भव है जबकि उसके भीतर का भाग ठोस हो।

इसके विपरीत दूसरे वैज्ञानिकों ने पृथ्वी के अन्तर्भाग को द्रव माना है। उन्होंने इसके पक्ष में ज्वालामुखी से निकले तरल लावा को प्रमाणस्वरूप उपस्थित किया है।

पृथ्वी के अन्तर्भाग की स्थिति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें

पृथ्वी के अन्तर्भाग में विद्यमान उच्च दबाव तथा तापमान के प्रभाव को ध्यान में रखना चाहिए। किसी भी ठोस वस्तु पर जब दबाव अधिक बढ़ जाता है तो उसमें उपस्थित परमाणु एक-दूसरे के अधिक निकट आ जाते हैं। पर तापमान में वृद्धि होने पर यही परमाणु अस्थिर हो जाते हैं, तितर-बितर होने लगते हैं। इस प्रकार उच्च दबाव और तापमान एक-दूसरे के विरुद्ध प्रभाव दिखाते हैं। उच्च तापमान पर ठोस वस्तुएँ पिघलने लगती हैं और द्रव रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। विविध वस्तुओं के द्रवणांक^१ भिन्न-भिन्न होते हैं। वस्तुओं पर दबाव अधिक बढ़ जाने पर उनके द्रवणांक में भी वृद्धि हो जाती है।

पपड़ी के नीचे गहराई में अत्यधिक दबाव विद्यमान है। इस उच्च दबाव के प्रभाव से स्थलीय पदार्थ^२ उच्च तापमान पर होने पर भी ठोस वस्तुओं की नाई व्यवहार करते हैं। यदि किसी कारणवश दबाव में कमी हो जाय तो ये वस्तुएँ तरल रूप में परिवर्तित हो जायँगी, तथा किसी भी दरार^३ आदि के द्वारा बाहर आकर धरातल पर बहने लगेंगी। इसी प्रकार ज्वालामुखी का लावा सतह पर आकर बहने लगता है। अतः ज्वालामुखी उद्भेदन में सतह पर तरल लावा का बहना यह प्रमाणित नहीं करता कि पृथ्वी का अन्तर्भाग तरल है।

अभी कुछ वर्ष पूर्व तक भूभौतिकी और भूरसायन के विशेषज्ञों की यह धरणा थी कि पृथ्वी का आन्तरक निकिल और लोहे का बना हुआ है। आधुनिकतम गवेषणाओं के फलस्वरूप रूसी वैज्ञानिकों का विचार है^४ कि आन्तरक भी शैल पदार्थों से विरचित है। किन्तु यह शैल पदार्थ आन्तरक में

1. Melting point

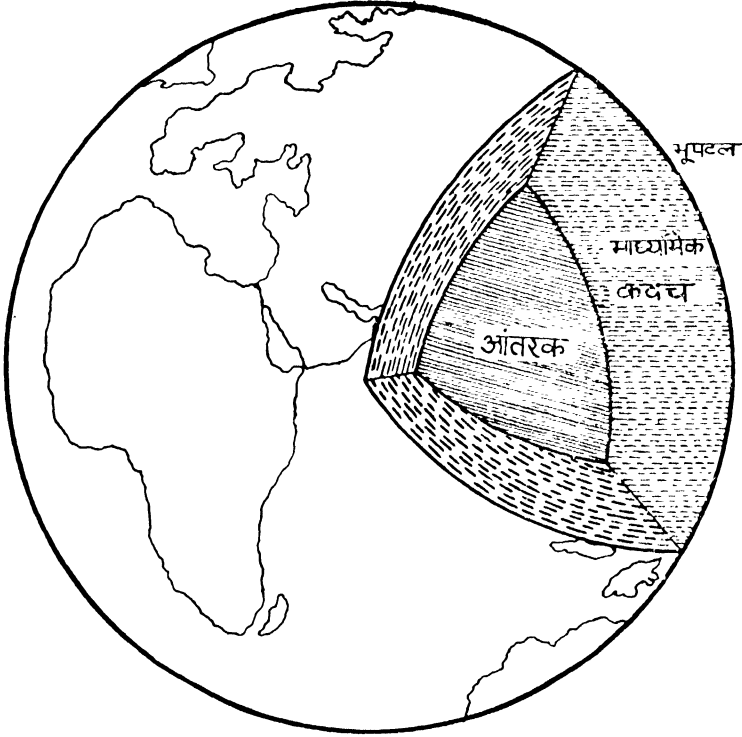
2. Terrestrial Matter

3. Fissure

4. The Origin of the Earth and other planets Boris

Levin 1958 pp. 78.

१४,००,००० वायुमण्डल दबाव पर हैं। इसी कारण आन्तरिक का घनत्व अधिक है।



चित्र ५—पृथ्वी का अन्तर्भाग

पृथ्वी की उत्पत्ति

पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में श्रुति में लिखा है—“आकाशाद् वायु-
र्वायोरग्निरग्नेरापः, अद्भ्यः पृथ्वी चोत्पद्यते”—इससे ज्ञात होता है कि
एक समय आकाश व वाष्प समस्त जगमण्डल में व्याप्त था। बाद में प्रत्येक
वाष्पकण के परस्पर आकर्षण और संघात से अणु-परमाणु की उत्पत्ति हुई।

जैन दर्शन का कथन है—

अण्वादीनां संघाताद् द्रव्यणुकादय उत्पद्यन्ते।

तत्र स्वावस्थिताकृष्टशक्ति रेवाद्यसंयोगे कारणभाष्यमापद्यते ॥

अणुओं के परस्पर संघात से द्वि-अणु, त्रसरेणु आदि उत्पन्न होकर आकाश मार्ग में फैल जाते हैं। धीरे-धीरे जगद्व्यापकत्व और घनत्व प्राप्त होता है।

ईसाई मत के अनुसार—

“आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथ्वी को सिरजा, पृथ्वी बेडौल और सूती थी और सहिराव पर अधियारा था और ईश्वर का आत्मा जल के ऊपर डोलता था।”

कुरान में यह मत प्रतिपादित है—

“अल्लाह ने आभमानों और पृथ्वी को ६ दिनों में उत्पन्न किया।”

ये विभिन्न धर्मावलम्बियों के पृथ्वी के जन्म के सम्बन्ध में विचार हैं। इनके विस्तार में जाना अप्रासंगिक-सा है, हम पृथ्वी के जन्म का केवल वैज्ञानिक विवेचना करेंगे।

पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों के उद्गम के वैज्ञानिक अध्ययन का सूत्रपात १८वीं शताब्दी ईसवी में प्रारम्भ हुआ। वैज्ञानिकों ने प्रत्येक परिवृत्ति का विवेचन प्रारम्भ किया। अब वह समय चला गया था कि प्रत्येक घटना को ‘ईश्वर की अद्भुत लीला’ कहकर ही छोड़ दिया जाता, अब तो उस विधाता की प्रत्येक कृति के कारण और प्रभाव की पर्यालोचना भी होने लगी थी।

खगोल विद्या के विकास में प्राचीन विचारधाराओं को गहरा आघात पहुँचा। उसका श्रेय जर्मन दार्शनिक कान्ट को है, जिन्होंने सन् १७५५ में एक छोटी-सी पुस्तिका में लिखा था—‘मुझे पदार्थ दो, मैं मृष्टि की रचना कर दूँगा।’ उस पुस्तक में आपने पृथ्वी की उत्पत्ति तथा अन्य आकाशीय पिण्डों के उद्भव के विषय में लिखा था। किन्तु आपकी प्रस्तुत कृति की

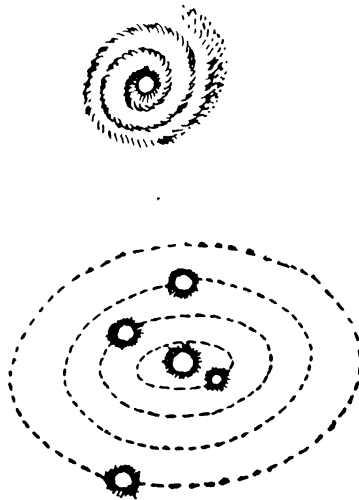
1. Phenomenon

2. Immanuel Kant

3. Matter

ओर वैज्ञानिकों का ध्यान लगभग ४० वर्ष बाद आकृष्ट हुआ, जबकि प्रसिद्ध फ्रांसिसी खगोलज्ञ और गणितज्ञ 'लाप्लास' ने सूर्य और ग्रहों की उत्पत्ति पर अपने प्रगतिशील विचार प्रकट किये।

कान्ट और लाप्लास दोनों ही सौरमण्डल की उत्पत्ति एक बृहत् नीहारिका से मानते हैं। यह नीहारिका गैस तथा अति सूक्ष्म कणों से बनी है। सूर्य नीहारिका के मध्य में स्थित गैस का एक बहुत बड़ा गोला था। केन्द्राकर्षण शक्ति के कारण यह नीहारिका सूर्य के चारों ओर घूमती थी। नीहारिका स्थित छोटे-छोटे कणों में संघर्ष होने लगा—जिसके फलस्वरूप इन कणों ने सिमट-सिमटकर छोटी-छोटी नीहारिकाएँ बना लीं। इन्हीं नीहारिकाओं से ग्रह और उपग्रह बने।



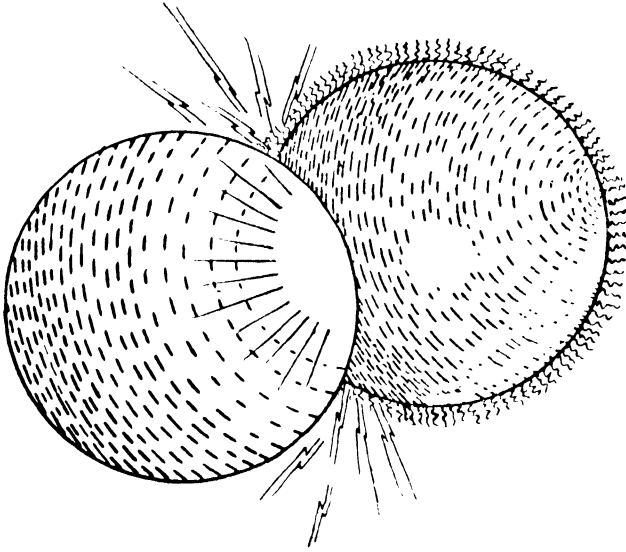
चित्र ६—नीहारिका से ग्रहों की उत्पत्ति

कुछ विद्वानों के विचार में नक्षत्रों, ग्रहों तथा उपग्रहों की रचना उल्काओं एवं उल्काकणों के सम्मिलन से हुई है। इस विचारधारा के प्रवर्तकों में बेलजियम-निवासी लिगण्डे^१ का नाम प्रमुख है।

1. Laplace

2. Ligondes

फ्रांस के प्रकृतिवादी वफ़न की यह धारणा थी कि पृथ्वी की उत्पत्ति सूर्य की किसी बड़े नक्षत्र को टक्कर लग जाने के कारण हुई। एक समय सूर्य तीव्र संवेग से जाते हुए एक विशाल नक्षत्र से टकरा गया। इस भिड़न्त के फलस्वरूप बहुत-सा तारका-पदार्थ दोनों नक्षत्रों से बाहर जा पड़ा और यह

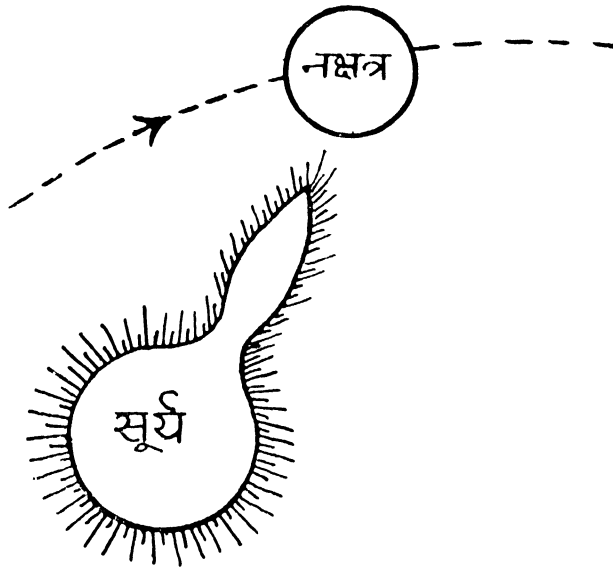


चित्र ७--सूर्य और नक्षत्र की टक्कर

सारा पुंज तीव्र गति से घूमने लगा। बड़े नक्षत्र के दूर निकल जाने के बाद बहुत-सा तारका-पदार्थ गुरुत्वाकर्षण-शक्ति के कारण सूर्य के पास एकत्र होकर उसके चारों ओर चक्कर लगाने लगा। इसी तारका-पदार्थ से पृथ्वी आदि ग्रहों की उत्पत्ति हुई।

विशाल ब्रह्माण्ड में दो नक्षत्रों की टक्कर की कल्पना असम्भव-सी जान पड़ती है। सम्भवतः किसी समय कोई नक्षत्र सूर्य के अधिक निकट से चला गया हो, जैसा कि अमेरिकन विद्वान् चैम्बरलेन और माउल्टन का भी विश्वास है। एक दूसरे नक्षत्र के समीप आने के कारण सूर्य के भीतर बड़ी उथल-पुथल मची। सूर्य में बड़ी उत्ताल तरंगें उठीं। तत्फलस्वरूप बहुत-सा पदार्थ आकाश में जा गिरा। यह बिल्कुल इसी प्रकार है, जैसे

चन्द्र के निकट आने से समुद्र में ज्वार आ जाता है। सूर्य से पृथक् हुआ यह पदार्थ पहले आग के गोले की भाँति गर्म था। धीरे-धीरे यह ठण्डा होने लगा और इसके पृथक् होने से पृथ्वी आदि ग्रहों का निर्माण हुआ।

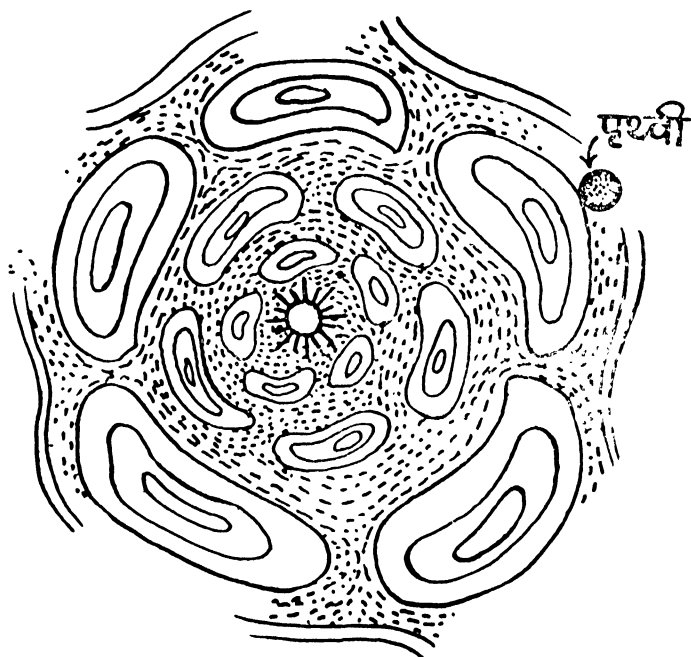


चित्र ८--नक्षत्र के निकट आने से सूर्य में उथल पुथल

नयी विचारधारा

द्वितीय महायुद्ध के समय जब सारे संसार की आँखें युद्ध की ओर लगी हुई थीं, एक जर्मन वैज्ञानिक के मस्तिष्क में 'पृथ्वी की उत्पत्ति' के विषय में एक नवीन विचारधारा जन्म ले रही थी। इस वैज्ञानिक का नाम है फौन वाइजसैकर। उसके विचार में सूर्य अन्तर्तरिका-पदार्थ के संहनन से बना। जब यह प्रक्रिया चल रही थी तो बहुत-सा अन्तर्तरिका-पदार्थ वेष्टन के रूप में सूर्य के चारों ओर घूमने लगा। यह वेष्टन हाइड्रोजन, हीलियम, इत्यादि गैसों तथा लौह और सिलिका के संयौगिकों के सूक्ष्म कणों तथा महीन धूल के योग से बना था। सूर्य के चारों ओर चक्कर काटते हुए ये कण एक-दूसरे से परस्पर टकराने लगे। टक्कर लगने के कारण ये कण सुगठित होते गये।

धीरे-धीरे इनका आकार बढ़ता गया और अन्त में इन्होंने ग्रहों का रूप धारण कर लिया ।



चित्र ९--संयौगिक कणों द्वारा ग्रहों की उत्पत्ति

वाइज़सैकर के समकालीन रूसी वैज्ञानिक ओटो स्मिथ ने भी सन् १९४३-४४ में ही पृथ्वी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इससे मिलता-जुलता मत जगत् के सम्मुख रखा ।

ओटो स्मिथ के वाद (मत) के अनुसार नीहारिकाओं से ही तारक-मण्डलियों का निर्माण हो रहा है । सूर्य जब अन्तर्तारिका-पदार्थ में से होकर गया तो उसके साथ-साथ कुछ सूक्ष्म कण, धूल तथा गैस के बादल भी चले गये । आकर्षण के कारण ये बादल सूर्य के चारों ओर चक्कर काटते रहे । गैसों के कण-समूह, जिनसे बादल बना था आपस में टकराने लगे । टक्कर लगने से कुछ तो बिखर गये, किन्तु अधिकतर मिल कर एकाकार हो गये । जब भिन्न-भिन्न प्रकार के कण आपस में टकराते थे तो वे जल्दी ही मिलकर

एक हो जाते थे। बड़े आकार के कण छोटे कणों की अपनी ओर खींचते थे—इससे बड़े आकार के कण और भी बड़े हो जाते थे—बढ़ने का यह क्रम चालू रहा और अन्त को बढ़कर ये ग्रह बन गये।

इस मत के आधार पर ओटो स्मिथ ने सौर परिवार के विभिन्न ग्रहों के संघटन का भी वर्णन किया है। सूर्य के निकटवर्ती ग्रह, यथा—बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल आकार में अपेक्षाकृत छोटे हैं, किन्तु हैं अत्यन्त घने। इसके विपरीत सूर्य से दूरस्थ ग्रह, जैसे—बृहस्पति, शनि, वारुणी और वरुण बड़े ग्रह हैं, पर इनका घनत्व कम है। उनके विचार में ऐसा होने का यह कारण है कि बादल का जो भाग सूर्य के अधिक निकट था, अपेक्षाकृत अधिक तप्त हो गया। इस भाग में विद्यमान कण वाष्प में परिवर्तित हो गये। ये वाष्पकण हलके होने के कारण—बादल का जो भाग सूर्य से दूर था—उसमें जाकर मिल गये। यह दूर वाला भाग अपेक्षाकृत ठण्डा था, अतः वाष्प कण यहाँ आकर जम गये। इसी कारण सूर्य से दूर वाले ग्रह कम घने हैं। अधिकतर कणों के सूर्य से दूर चले जाने के परिणामस्वरूप सूर्य के निकट बहुत कम कण बचे रहे। ये बचे हुए कण मुख्यतः चट्टान और धातु के कण थे। इसीलिए सूर्य के निकट के ग्रह चट्टान और धातुकणों से बने हैं तथा इनका घनत्व भी अधिक है।

आज विद्वान् विभिन्न विचारधाराओं में उलझे हुए हैं। वे किसी निश्चित सिद्धान्त पर नहीं पहुँच पाये हैं। केवल इतना ही निर्विवाद है कि पृथ्वी सूर्य का एक ग्रह है और जन्म के बाद से ही उसकी परिक्रमा कर रही है। जन्म के समय कदाचित् यह सूर्य की भाँति गर्म थी। इसे ठण्डा होने में सहस्रों वर्ष का समय लगा। विकिरण के कारण ऊपरी भाग शीघ्र ही ठण्डा हो गया और ठण्डा होकर जमने लगा, जबकि केन्द्रीय भाग अग्निमय ही था। जिस प्रकार दूध को गर्म करके छोड़ने पर उसके ऊपर मलाई की पपड़ी जम जाती है और नीचे रहता है दूध, वह भी मलाई की पपड़ी की अपेक्षा अधिक गर्म। उसी प्रकार पृथ्वी के ऊपर भी पपड़ी जम गयी। यह पपड़ी—जिसे भूपटल कहते हैं—अपने नीचे के भाग की अपेक्षा ठोस व ठण्डी है।

दूध की पपड़ी समतल नहीं होती, उसी प्रकार पृथ्वी की पपड़ी भी समतल नहीं थी, प्रत्युत बहुत ऊँची-नीची थी। पृथ्वी की गर्मी जब विकिरण से वायुमण्डल में पहुँची तो वृष्टि में सहायक हुई। उस काल की घोर वृष्टि का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सैकड़ों वर्ष तक दिन-रात पानी पड़ता रहा। यह वृष्टि-जल पृथ्वी के गड्ढों में एकत्र हो गया। इन्हीं गड्ढों ने बाद में समुद्र का रूप धारण किया। इस प्रकार पृथ्वी पर जल-मण्डल की रचना हुई।

अध्याय ४

पृथ्वी की आयु की ऐतिहासिक पीठिका

‘धर्म चाहता है कि उसके पिछले विचारकों के सिद्धान्त की पुष्टि हो। विज्ञान चाहता है कि उसके पिछले वैज्ञानिकों के सिद्धान्तों का खण्डन हो। और, पुष्टि और खण्डन दोनों का अर्थ होता है मनुष्य को अधिकाधिक सुख और शांति प्रदान करना।’

—जार्ज हैरिस (ज्ञानोदय-विज्ञान अंक १९५९, पृष्ठ २५)

प्राचीन धर्मग्रन्थों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि उस काल में मनुष्य किसी घटना या परिवृत्ति को समझने के लिए देवी-देवताओं का आश्रय लेते थे। उस युग में यह मान्यता थी कि प्रकृति में होने वाली घटनाएँ देवी शक्तियों के वरदान या शाप के फलस्वरूप होती हैं। हमारे यहाँ इन्द्र, वरुण, अग्नि क्रमशः वर्षा, सागर और अग्नि के देवता माने गये हैं। इन्द्र का मूसलाधार जल बरसाना तथा प्रजा के रक्षार्थ कृष्ण भगवान् का गोवर्धन पर्वत उठाना प्रत्येक भारतवासी को ज्ञात है। गंगा नदी के जन्म के सम्बन्ध में राजा भगीरथ की कथा पूरे देश में प्रचलित है। सभी देशों के प्राचीन ग्रन्थ इसी प्रकार की पारलौकिक गाथाओं से भरपूर हैं।

यूनान^१ में आकाश के देवता ‘यूरेनस’^२ और पृथ्वी की देवी ‘गी’^३ को संसार के जनक और जननी माना गया है। चन्द्र और सूर्य इन्हीं के पौत्र कहे जाते हैं। इन्हें ‘सैलेन’ और ‘हीलियोस’^४ नाम से संबोधित किया गया

है। 'पोसिडो' सागर का देवता है और भूकम्प का कारण भी माना गया है। इस प्रकार धर्मग्रन्थों में जो कुछ भी थोड़ा-बहुत वर्णन पृथ्वी आदि के सम्बन्ध में मिलता है—कथा-कहानी से संबद्ध है।

पृथ्वी की आयु ज्ञात करने का प्रथम प्रयास ग्रीक दार्शनिक 'हिरोडोटस'^१ (४८४ से ४२४ ई० पू०) ने किया। उन्हें सागर में जमा होने वाले स्तरों में पृथ्वी की आयु नापने का एक तरीका दिखलाई पड़ा। उन्होंने एक स्थान पर कहा है कि यदि नील नदी की दिशा परिवर्तित कर दी जाय और वह अरब की खाड़ी में गिरने लगे, तो लगभग २००० वर्षों में नील नदी की लाई हुई मिट्टी से अरब की खाड़ी पट जायगी। 'हिरोडोटस' की प्रस्तुत उक्ति पृथ्वी की आयु जानने की एक वैज्ञानिक विधि से पूर्णतः मेल खाती है। इस विधि का विवेचन एक पृथक् अध्याय में किया गया है।

'हिरोडोटस' से लगभग सौ वर्ष पूर्व विख्यात गणितज्ञ 'पिथागोरस'^२ ने पृथ्वी के उत्थान व अवतलन की ओर हमारा ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने बतलाया कि पृथ्वी के कुछ भाग, जहाँ आज स्थल है वहाँ पहले समुद्र था और जहाँ पहले समुद्र था वहाँ आज स्थल है। जगत् प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू^३ की विचारधारा भी इससे मिलती-जुलती है। पर्वतों पर पाये जाने वाले प्रस्तरीभूत अवशेषों-पुराजीवों^४ का अध्ययन कर उन्होंने कहा था कि जहाँ पर पुराजीव पाये जाते हैं वहाँ पहले समुद्र था और यह भी सम्भव है कि जहाँ आज समुद्र है वहाँ कुछ समय बाद शुष्क पृथ्वी हो जाय।

ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग ईरान के कवि उमर खय्याम^५ ने 'समुद्र के उतार' पर एक पुस्तक लिखी। आपकी विचारधारा एशिया के भीतरी

1. Poseidon

2. Herodotus

3. Pythagorus

4. Elevation and subsidence

5. Aristotle

6. Fossils

7. Omer Khayyam

भागों में विद्यमान नमक के झरनों आदि पर आधृत थी। कहते हैं कि इस विचारधारा को कुरान-विरोधी मानकर उन्हें दण्ड देने का निश्चय किया गया। किन्तु वह अपनी इच्छा से समरकन्द छोड़कर बाहर चले गये।

१७वीं शताब्दी में प्रधान धर्माध्यक्ष उशर^१ ने हिब्रू काल-प्रकरण-तालिकाओं^२ के आधार पर पृथ्वी की आयु ४००४ ई० पू० बतलायी। उनके अनुयायियों की इससे सन्तोष न हुआ। उन्होंने कुछ दिनों बाद पृथ्वी के जन्म का एक निश्चित समय बतला दिया। वह यह कि पृथ्वी का जन्म ४००४ ई० पू० को २३ अक्टूबर को प्रातः ९ बजे हुआ।

ईसाई वेदान्तियों ने 'ओल्ड टैस्टामेंट'^३ के आधार पर पृथ्वी की आयु लगभग १०००० वर्ष पूर्व बतलायी है। ये उक्तियाँ कितनी निराधार हैं इसका स्पष्टीकरण अगले अध्यायों में होगा। पर यह हमारे लिए बड़े गौरव और विस्मय की बात है कि भारतीय दर्शन तथा धार्मिक ग्रन्थों में दी गयी काल-गणनाएँ आधुनिक गणनाओं से मेल खाती हैं। अतः हम दूसरे मतों के विस्तार में न जाकर, इसी का विशद विवेचन करेंगे।

भारतीय दृष्टिकोण

उपनिषदों में कहा गया है — मनुष्य की आत्मा अनन्तकाल से एक रूप को त्याग कर दूसरे रूप में चली जाती है। यही प्रक्रिया अनन्तकाल से चली आ रही है और अनन्तकाल तक इसी क्रम से चलती रहेगी। इसका भाव यही है कि भौमिक काल अनन्त है।

गुरु नानक देव जी ने 'जपुजी साहिब' में तथा 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में

1. Ussher
2. Chronological tables
3. Old Testament

यही उल्लेख किया है।^१ 'जपुजी साहिब' की २१वीं 'पउड़ी'^२ में कहा गया है —

कवणु सुवेला वखतु कवणु कवण थिति कवणु वारु ।

कवणि सि रत माह कवण जितु होया आकास ॥५॥

बेल न पाईआ पंडती जि होवै लेख पुराण ।

वखतु न पाइओ कादीया जि लीखनि लेख कुराण ॥६॥

थिति बारु न जोगी जाणै रत माह न कोई ।

जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई ॥७॥

अर्थात्—किस शुभ वेला में, किस दिन, किस क्षण, किस मास तथा किस ऋतु में पृथ्वी रची गयी (इस विषय में) न तो पुराणों के प्रणेता पण्डित ही जानते हैं, न कुरान के रचयिता मौलवियों को ही इसका बोध है। यदि उन्हें इस बात का ज्ञान होता तो उन्होंने अपनी धार्मिक पुस्तकों में इसका उल्लेख किया होता। न कोई योगी और न अन्य कोई इसको जानता है। इस संसार का रचयिता परमेश्वर—जिसने यह सृष्टि रची है—एक मात्र वही इसके विषय में जानता है।

'गुरु ग्रन्थ साहिब' में काल की अनन्तता के बारे में लिखा है—

अरबद नरबद धूंधूकारा, धरणि न गगना हुकमु अपारा ।

ना दिनु न चन्दु न सूरजु सुन्न समाधि लगाइदा ॥१॥

1. The Age of the Earth (The Importance of the study of Geology) Bawa Kartar Singh Abstract of the address delivered on 18th Aug, 1948 to the students of Mining & Metallurgy B. H. U., published in B. H. U. Journal, Vol I, No. 1, 1952; pp. 33 & 34.

2. Hymn

खाणी न बाणी पऊण न पाणी उपति खपति न आवण जाणी ।
 खंड पताल खपत नहिं सागर नदी न नीरु बहाइदा ॥२॥
 वेद कतेव न सिमृति सासत पाठ पुराण ऊदै नहीं आसत ।
 कहता वक्ता आपि अगोचरु आपे अलखु लखाइदा ॥३॥
 जा तिसु भाणा ना जगतु ऊपाइआ वाझु कला आडाणु रहाइआ ।
 ब्रह्मा बिसुन महेसु ऊपाए माइआ मोहु वधाइदा ॥४॥

अर्थात्—अनन्त काल तक अँधियारा छाया हुआ था। उस समय न आकाश था न पृथ्वी, न सूर्य था न चन्द्र, न दिन था न प्रकाश, न वायु था न जल, न जन्म था न मृत्यु, न जीव था न वाणी। न पृथ्वी का विभाजन हुआ था न सप्तप्रदेश थे, न सागर था न नदियाँ थीं। बस था केवल असीम शब्द और वह (परमात्मा) समाधिस्थ था।

उस समय न सूर्योदय था न सूर्यास्त, न वेद थे न पुराण। उसके अति-रिक्त कुछ था ही नहीं। वह स्वयं वक्ता था, वही श्रोता था। उसने ही स्वयं को—अज्ञात को जाना था। जब उसकी इच्छा हुई तब उसने सृष्टि रची और उसने बिना किसी आधार के इसको स्थित किया। उसने ही माया, मोह के साथ-साथ ब्रह्मा, विष्णु और महेश को उत्पन्न किया।

श्रीमद्भगवद्गीता भी हमें यही पाठ पढ़ाती है। किन्तु हमारे धर्मग्रन्थों ने काल को अनन्त सम्बोधित करके ही छुट्टी नहीं ली है। ज्योतिषियों ने काल-गणना की है और सुन्दर काल-व्यवस्था स्थापित की है, जिससे केवल हमारी पृथ्वी के जन्म का विषय ही नहीं, वरन् ब्रह्माण्ड के आरम्भकाल का वर्णन भी मिलता है। इस दृष्टि से 'सूर्य सिद्धान्त', मनु महाराज की 'मनु-स्मृति', वराहमिहिर की 'पंच सिद्धान्तिका' एवं आधुनिकतम ग्रन्थ 'दिग्देश-काल स्वरूप मीमांसा' का चतुर्थ खण्ड (जो "राजस्थान वैदिक तत्त्वशोध संस्थान", जयपुर द्वारा २०१५ वि० में प्रकाशित हुई है) विशेषरूपेण उल्लेख्य हैं।

सृष्टि, प्रलय आदि के काल के सम्बन्ध में मनुस्मृतिकार ने लिखा है^१—

निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिशत्तु ताः कला ।
 त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः ॥
 अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ।
 रात्रिस्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥
 पित्र्ये रात्र्यहनी मास प्रविभागस्तु पक्षयोः ।
 कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥
 देवे रात्र्यहनी वर्षः प्रविभागस्तयोः पुनः ।
 अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्यादक्षिणायनम् ॥

अर्थात्—आप से आप आँखों के खुलने-मंदने को निमेष अर्थात् पलक कहते हैं। उन अठारह पलकों की एक काष्ठा, तीस काष्ठाओं की एक कला, तीस कलाओं का एक मुहूर्त और तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र होता है। (अहः + रात्र—दिन + रात) अहः (दिन) की परिभाषा है—सूर्य प्रकाशानुगत भोग काल एवं रात्रि की परिभाषा है प्रकाश से वंचित तमोमयकाल। ये हैं मनुष्य के दिन और रात। मनुष्य के तीस दिन रात मिलाकर एक मास बनता है। मनुष्यों का एक मास पितरों का एक दिन-रात है। (उसके दोनों पक्षों में काम करने के लिए कृष्ण-पक्ष दिन है, सोने के लिए शुक्लपक्ष रात्रि है।) अर्थात् चौबीस घण्टों का एक दिन-रात मानव का और ७२० घण्टों का एक दिन-रात पितरों का। मानवीय एक वर्ष देवताओं का एक दिन-रात (अहोरात्र) है। इसे ही दिव्य अहोरात्र कहते हैं। इसका भी यह विभाग है कि मनुष्य का उत्तरायण देवताओं का दिन है और दक्षिणायन देवताओं की रात।

हमारे यहाँ चार युग माने गये हैं—सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि । मनुस्मृति में इस विषय में लिखा हुआ है —^१

चत्वार्य्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतम् युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥
इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु ।
एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥
तदेतत्परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम् ।
एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥
यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम् ।
तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥

सत्ययुग का परिमाण चार हजार वर्षों का है। उसके उतने ही वर्षों के सैकड़े सन्ध्या और सन्ध्यांश होता है। युग का पहला भाग सन्ध्या और दूसरा भाग सन्ध्यांश होता है। इस प्रकार सन्ध्या और सन्ध्यांश सहित सत्ययुग (४००० + ४०० + ४००) ४८०० वर्षों का है। त्रेता, द्वापर और कलि इन तीनों युगों का परिमाण क्रमशः एक सहस्र घटाने से आता है। इसी प्रकार इनके सन्ध्या और सन्ध्यांश में क्रमशः एक शत घटाया जाता है। अतः तीन हजार वर्ष का त्रेतायुग और तीन सौ वर्ष सन्ध्या और तीन सौ वर्ष सन्ध्यांश के; इस प्रकार दो हजार वर्ष का द्वापर युग और दो सौ वर्ष सन्ध्या और दो सौ वर्ष सन्ध्यांश के और एक हजार वर्ष का कलियुग और एक सौ वर्ष सन्ध्या और एक सौ वर्ष सन्ध्यांश के हुए। इस प्रकार सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग की सम्पूर्ण अवधि यथाक्रम ४८००, ३६००, २४००, १२०० वर्ष हुई। मनुष्यों के चार युगों का उक्त परिमाण 'चतुर्युगी' कहलाता है। इसी का बारह गुणा देवताओं का एक युग होता है।

देवताओं के एक युग को इकहत्तर (७१) से गुणा करने से एक मन्वन्तर होता है, जिसमें एक मनु को सृष्टि रचने का अधिकार रहता है —

दैविकानां युगानां तु सहस्रपरिसंख्यया।^१

ब्राह्म मेकमहर्ज्यं तावती रात्रिरेव च ॥

*

*

*

तस्य सोऽर्हनिशस्यान्ते प्रसुप्तः प्रति बुद्धयते।

प्रतिबुद्धश्च सृजति मनः सदसदात्मकम् ॥

देवताओं के एक हजार युगों का ब्रह्मा का एक दिन होता है और उतनी ही रात्रि होती है। यही ब्रह्मा जब रात्रि के अन्त में जागता है सत् असत् रूप मन को उत्पन्न करता है अर्थात् भूलोक आदि त्रैलोक्य की सृष्टि में मन को लगाता है।

भागवत में इस काल का और भी सूक्ष्म विवेचन किया गया है —

“सूक्ष्मतम अंश जिसका और विभाग नहीं हो सकता, परमाणु है। दो परमाणु मिलकर एक ‘अणु’ होता है और तीन अणुओं के मिलने से एक त्रसरेणु होता है जो झरोखे में से होकर आयी हुई सूर्य की किरणों के प्रकाश में उड़ता देखा जाता है। ऐसे तीन त्रसरेणु को पार करने में सूर्य को जितना समय लगता है उसे ‘त्रुटि’ कहते हैं। इससे सौ गुना काल ‘वेध’ कहलाता है और तीन ‘वेध’ का एक ‘लव’ होता है। तीन ‘लव’ को एक ‘निमेष’ और तीन ‘निमेष’ को एक ‘क्षण’ कहते हैं। पाँच क्षण की एक काष्ठा होती है और पन्द्रह ‘काष्ठा’ का एक ‘लघु’। पन्द्रह ‘लघु’ की एक ‘नाडिका’^३

१. मनुस्मृति—प्रथम अध्याय, श्लोक ७२-७४।

२. भागवतांक (कल्याण) प्रथमखंड, अगस्त १९४१, पृ० २७६-२७७, ५४७, ५४८, ५५४, ५७४, ५७५।

३. नाडिका का मान यह है—छः पल ताँबे का एक ऐसा बर्तन बनाया

(दण्ड) कही जाती है। दो 'नाडिका' का एक 'मुहूर्त' होता है और दिन के घटने-बढ़ने के अनुसार (दिन एवं रात्रि की दोनों सन्धियों के दो मुहूर्तों को छोड़कर) छः या सात 'नाडिका' का एक 'प्रहर' होता है, यह 'याम' कहलाता है, जो मनुष्य के दिन या रात का चौथा भाग होता है। चार-चार 'प्रहर' के मनुष्य के दिन और रात होते हैं और पन्द्रह दिन-रात का एक 'पक्ष' होता है जो शुक्ल और कृष्ण भेद से दो प्रकार का माना गया है। इन दोनों पक्षों को मिलाकर एक 'मास' होता है, जो पितरों का एक दिन-रात है। दो मास का एक 'ऋतु' और छः मास का एक 'अयन' होता है। अयन—'दक्षिणायन' और 'उत्तरायण' भेद से दो प्रकार का है। ये दोनों अयन मिलकर देवताओं के एक दिन-रात होते हैं तथा मनुष्य लोक में ये 'वर्ष' या बारह मास कहे जाते हैं।

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि ये चारों युग अपनी सन्ध्या और सन्ध्यांशों सहित देवताओं के बारह सहस्र वर्ष तक रहते हैं। सत्य आदि इन चारों युगों में क्रमशः चार, तीन, दो, और एक सहस्र दिव्य वर्ष होते हैं। युग के आदि में सन्ध्या होती है और अन्त में सन्ध्यांश। इनके बीच का जो काल होता है उसी को कालवेत्ता युग कहते हैं। प्रत्येक युग में जितने सहस्र वर्ष होते हैं उससे दुगने सौ वर्ष उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांशों में होते हैं। अर्थात् सत्य युग में ४००० दिव्य वर्ष युग के और ४०० × २ = ८०० दिव्य वर्ष सन्ध्या एवं सन्ध्यांश के इस प्रकार ४८०० वर्ष होते हैं। इसी प्रकार त्रेता में ३६००, द्वापर में २४०० और कलि में १२०० दिव्य वर्ष होते हैं।

जाय जिसमें एक प्रस्थ जल आ सके और चार माशे सोने की चार अंगुल लम्बी सलाई बनवा कर उसके द्वारा उस बर्तन के पेंदे में छेद कर के उसे उस जल में छोड़ दिया जाय। पेंदे के छेद से जितने समय में एक प्रस्थ जल उस बर्तन में भर जाय और वह बर्तन जल में डूब जाय, उतने समय को एक 'नाडिका' या 'दण्ड' कहते हैं।

मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं का एक दिन-रात होता है, अतः देवताओं का एक वर्ष मनुष्य के ३६० वर्ष के बराबर हुआ। इस प्रकार मानवीय मान से कलियुग में $1200 \times 360 = 4,32,000$ वर्ष हुए तथा इससे दुगुने द्वापर में, तिगुने त्रेता में और चौगुने सत्ययुग में होते हैं। इन चारों युगों को चतुर्युगी कहते हैं।

एक सहस्र चतुर्युगी का ब्रह्मा का एक दिन होता है और इतनी ही बड़ी रात्रि होती है, जिसमें जगत्कर्ता ब्रह्मा जी शयन करते हैं। उस रात्रि का अन्त होने पर उस लोक का कल्प आरम्भ होता है। जब तक ब्रह्मा जी का दिन रहता है उसका क्रम चलता है। उस एक कला में चौदह मनु हो जाते हैं। प्रत्येक मनु इकट्ठर चतुर्युगी में कुछ अधिक काल ($31\frac{1}{2}$ चतुर्युगी) तक अपना अधिकार भोगता है। यह मन्वन्तर ब्रह्मा जी के एक दिन की सृष्टि है, जिसमें तीनों लोकों की रचना होती है। उसमें अपने-अपने कर्मानुसार पशु-पक्षी, मनुष्य-पितर और देवताओं की उत्पत्ति होती है।

काल-क्रम से जब ब्रह्मा जी का दिन बीत जाता है, तब सूर्य, चन्द्रमा से रहित प्रलय-रात्रि आती है। उस समय सातों समुद्र प्रलयकाल के प्रचण्ड पवन से उमड़कर अपनी उछलती हुई उत्ताल तरंगों से त्रिलोकी को डुबो देते हैं, तब उस जल के भीतर भगवान् शेष-शायी योगनिद्रा से नेत्र मूंदकर शयन करते हैं। इस प्रकार काल की गति से एकाएक सहस्र चतुर्युग के रूप में प्रतीत होने वाले दिन-रात के हेर-फेर से ब्रह्मा जी की सौ वर्ष की परमायु भी बीती हुई-सी दिखाई देती है।

इस कल्प में छः मन्वन्तर बीत चुके हैं। इनमें से पहले मनु थे, 'स्वायम्भुव' दूसरे 'स्वारोचिष', तीसरे 'उत्तम', चौथे 'तामस', पांचवें और छठे मनु का नाम क्रमशः 'रैवत' और 'चाक्षुष' था। विवस्वान् के पुत्र यशस्वी श्राद्धदेव ही सातवें मनु हैं। आजकल सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है।

इतना ही नहीं, भारतीय ग्रन्थों में आगे होने वाले मनुष्यों के विषय में भी बताया गया है। लिखा है कि आठवें मन्वन्तर में सार्वणि मनु होंगे। वरुण के पुत्र दक्ष सार्वणि नवें मनु होंगे। दसवें मनु होंगे उपश्लोक के पुत्र

ब्रह्म सार्वर्णि। ग्यारवें मनु होंगे अत्यन्त संयमी धर्म सार्वर्णि। बारहवें मनु होंगे रुद्र सार्वर्णि। तेरहवें मनु होंगे परम जितेन्द्रिय देव सार्वर्णि। चौदहवें मनु इन्द्र सार्वर्णि होंगे।

ये चौदह मन्वन्तर भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों ही कालों में चलते रहते हैं। इन्हीं के द्वारा एक सहस्र चतुर्युगी वाले कल्प के समय की गणना की जाती है। पौराणिक विद्वानों ने प्रत्येक अवान्तर कल्प में चौदह मन्वन्तर बताये हैं।

‘दिग्देश-काल स्वरूप मीमांसा’ के आधार पर उपरिर्वाणित काल की गणितीय सारणी दी जाती है—^१

२४ घंटे = १ दिन-रात मानव का,

३० दिन-रात = १ मास मानव का,

१ मास (मानव का) = १ दिन-रात पितरों का,

१२ दिन-रात (पितरों के) = १ दिन-रात देवताओं का,
= १ दिव्य अहोरात्र।

१ वर्ष (मानव का) = १ दिव्य-अहोरात्र।

३० दिव्य अहोरात्र = १ दिव्य मास

१२ दिव्य मास = १ दिव्य वर्ष

१२०० दिव्य वर्ष = १ खण्ड दिव्य युग

२००० दिव्ययुग = १ महा दिव्य युग

एक महादिव्य युग = ८६४, ०००, ००० मानव वर्ष।

१ महादिव्य युग = १ ब्राह्म अहोरात्र

३० ब्राह्म अहोरात्र = १ ब्राह्म मास

१२ ब्राह्म मास = १ ब्राह्म वर्ष

१०० ब्राह्म वर्ष = १ ब्राह्म युग

१००० ब्राह्मयुग = १ विश्वेश्वर युग

} दिव्ययुगानुबन्धिनी
व्यवस्था

} ब्राह्मयुगानुबन्धिनी
व्यवस्था।

} ईश्वरयुगानुबन्धिनीव्यवस्था

१. दिग्देश काल स्वरूप मीमांसा (खण्ड चतुष्टयात्मक “भारतीय हिन्दू मानव और उसकी भावुकता” निबन्धान्तर्गत) वि० २०१५, प० २४, २६।

ब्रह्माण्ड की आयु

यह है काल-व्यवस्था का एक संक्षिप्त चित्र। ब्रह्माण्ड की आयु जानने के लिए ब्रह्मा की आयु जाननी चाहिए, क्योंकि ब्रह्मा ही ब्रह्माण्ड के रचयिता हैं, स्वामी हैं। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार ब्रह्मा की आयु के पचास वर्ष बीत चुके हैं, ५१ वाँ वर्ष चल रहा है। ब्रह्मा के पचास वर्षों से हमारा तात्पर्य निम्नांकित सारणी से जान हो जायगा—

$$\begin{aligned} ५० \text{ ब्राह्म वर्ष} &= ५० \times ३६५ \text{ ब्राह्म दिवस,} \\ &= १८२५० \text{ ब्राह्म दिवस,} \\ &= ८३४,०००,००० \times १८२५० \text{ मानव वर्ष।} \\ &= १५,०६०,०००,०००,००० \text{ मानव वर्ष।} \end{aligned}$$

इस प्रकार ब्रह्माण्ड (विश्व) की आयु लगभग एक बीस अशुबन खरब वर्ष है।

पृथ्वी की आयु

ऊपर उल्लेख हो चुका है कि हमारे यहाँ मत्स्य, त्रेता, द्वापर, और कलि नामक चार युग माने जाते हैं। इन युगों की अवधि क्रमशः ४८००, ३६००, २४०० और १२०० दिव्य वर्ष है। इस चौकड़ी की अवधि हुई १२००० दिव्य वर्ष अर्थात् $१२००० \times ३६० = ४३,२०,०००$ मानव वर्ष। इन चारों युगों के चक्र को एक 'महायुग' कहते हैं। महायुग की अवधि ४३, २०, ००० वर्ष है। युगों के समान ही महायुगों का चक्र भी चलता रहता है। ७१ महायुगों का एक मन्वन्तर होता है। इस प्रकार एक मन्वन्तर की अवधि ३० करोड़ ६७ लाख, २० हजार वर्ष होती है। अधोलिखित सारणी से इसे सरल ढंग से समझा जा सकता है—

सत्ययुग	=	४८०० दिव्यवर्ष	=	१७, २८, ००० मानववर्ष।
त्रेतायुग	=	३६०० दिव्यवर्ष	=	१२, ९६, ००० मानववर्ष।
द्वापरयुग	=	२४०० दिव्यवर्ष	=	८, ६४, ००० मानववर्ष।
कलियुग	=	१२०० दिव्यवर्ष	=	४, ३२, ००० मानववर्ष।

$$\text{महायुग (चतुर्युग)} = १२, ००० \text{ दिव्यवर्ष} = ४३, २०, ००० \text{ मानववर्ष}$$

$$७१ \text{ महायुग} = १ \text{ मन्वन्तर} = ३०, ६७, २०, ००० \text{ मानववर्ष}$$

प्रत्येक मन्वन्तर के उपरान्त प्रलय होती है। प्रलयकाल की अवधि १७ लाख २८ हजार वर्ष है। प्रलयकाल में पृथ्वी जल में डूब जाती है और उसपर व्याप्त प्रायः सभी जीव लुप्त हो जाते हैं। प्रलय के उपरान्त पुनः मन्वन्तर अर्थात् युगों का चक्र आरम्भ होता है। १४ मन्वन्तरों के बाद अर्थात् ४ अरब २९ करोड़ ४० लाख ८० हजार वर्ष के उपरान्त महाप्रलय होती है। महाप्रलय के समय सम्पूर्ण जीवन का लोप हो जाता है तथा नये सिरे से प्रकृति की रचना आरम्भ होती है। पुनः मन्वन्तर और युगों का चक्र चलता है। इस प्रकार यह क्रम अनादि काल से चल रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा।

महाप्रलय के बाद पुनः सृष्टि की रचना होती है। हमारे ग्राम्यों के अनुसार पिछले महाप्रलय के बाद से ही पृथ्वी का आरम्भ हुआ है। गत महाप्रलय के बाद से ६ मन्वन्तर बीत चुके हैं। सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है। इस सातवें मन्वन्तर के भी २७ महायुग बीत चुके हैं, अब २८वाँ महायुग चल रहा है। २८वें महायुग के भी सत्य, त्रेता तथा द्वापर युग बीत चुके हैं और हमारा वाम अब कलियुग में है। कलियुग की अवधि है चार लाख वत्तीस हजार वर्ष। इस अवधि के अभी केवल (संवत् २०१६ तक) ५०६० वर्ष ही बीते हैं। अतः पिछले महाप्रलय के बाद

$६ \times ३०, ६७, २०, ००० + २७ \times ४३, २०, ००० + ३८, ८८, ००० + ५०६० = (६ \times \text{मन्वन्तरकाल} + २७ \times \text{महायुगकाल} + \text{सत्य, त्रेता, द्वापरकाल} + \text{बीता कलियुग काल})$

$= १९७१, २२१, ०६०$ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। यही हमारी पृथ्वी की आयु हुई। वैज्ञानिक विधियों से भी पृथ्वी की आयु लगभग दो अरब वर्ष ज्ञात हुई है। प्राचीन भारतीय विचारधारा तथा आधुनिक विज्ञान के आँकड़ों का यह मेल बड़ा ही विलक्षण है।

वैज्ञानिकों के दो वर्ग

१८वीं शताब्दी के अवसान तथा १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भू-

शास्त्री दो गुटों में विभक्त थे। पहले वर्ग के वैज्ञानिक प्रत्येक भौमिक परिवृत्ति को समझाने के लिए प्रलय का सहारा लेते थे। इन लोगों का विश्वास था कि भूकम्प का प्रकोप, ज्वालामुखी का उभाड़, अगम्य महासागरों तथा गगनचुम्बी पर्वतमालाओं का निर्माण प्रलयकारी घटनाओं का ही परिणाम है। वे सहस्रों फुट ऊँचे पहाड़ों पर समुद्री जीव-जन्तुओं के अवशेषों की उपस्थिति को प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत करते थे। उनका कथन था कि सागर की अगम्य गहराइयों में रहनेवाले जीव जन्तुओं का सहस्रों फुट ऊँचे पहाड़ों पर आना केवल प्रकृति में होने वाली प्रलयकारी घटनाओं द्वारा ही सम्भव है। इन लोगों के विचार में पृथ्वी की उत्पत्ति कुछ सहस्र वर्ष पूर्व हुई थी।

दूसरे वर्ग में जेम्स हटन के अनुयायी थे। ये एकरूपतावादी कहलाते थे। १८वीं शती के अन्तकाल में जेम्स हटन ने एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त जगत् के समक्ष रखा—‘कि जो क्रियाएँ पृथ्वी पर प्राचीनकाल में कार्य कर रही थीं, आज भी वे उसी प्रकार अपने कार्य में संलग्न हैं।’ वायु की लहरें, धूल व बालूकण साथ में लिये हुए शिलाओं को घिस रही हैं। वर्षा का जल शिलाओं की दरारों में घुसकर उन्हें विखण्डित करता है। शिलाओं का विघटित पदार्थ वायु तथा जल द्वारा बहाकर लेजाया जाता है, और अन्ततः किसी सागर या झील में जमा कर दिया जाता है। ये सब क्रियाएँ हटन के सिद्धान्त के अनुसार दीर्घकाल से कार्यशील हैं और भविष्य में भी तद्वत् रहेंगी। फलस्वरूप पर्वत शनैः-शनैः घिसते जा रहे हैं और सागरों में तह पर तह जमती जा रही हैं। एक ओर पहाड़ों की ऊँचाई कम होती जा रही है और दूसरी ओर सागरों के वक्षस्थल पर दिन-प्रतिदिन बोझ बढ़ता जा रहा है। किन्तु ये सब क्रियाएँ इतनी मन्द गति से हो रही हैं कि मनुष्य को अपने जीवन-काल में कोई विशेष परिवर्तन दिखाई नहीं पड़ता। मनुष्य की जीवनावधि है अधिक से अधिक सौ-सवा-सौ साल, जब कि पृथ्वी पर होने वाले

परिवर्तनों में लाखों-करोड़ों वर्ष लग जाते हैं। इस आधार पर एकरूपता-वादियों ने पृथ्वी की आयु को कुछ सहस्र वर्ष मानने से मना किया। उनके विचार में कोलोरडो नदी को अपनी घाटी बनाने में सहस्रों वर्ष लगे। गंगा और सिन्धु नदियाँ, पर्वतों की जिन कन्दराओं (घाटियों) में होकर बहती हैं, उनका निर्माण लाखों वर्षों में हुआ। अतः एकरूपतावादियों ने पृथ्वी की दीर्घ आयु की कल्पना की।

पृथ्वी की दीर्घ और अल्प आयु पर प्रलयवादी और एकरूपतावादी क्षेत्रों में दीर्घकाल तक वाद-विवाद चलता रहा। इस काल में एकरूपतावादियों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। धार्मिक ग्रन्थों ने तथा धर्माध्यक्षों ने प्रलयवादियों को प्रोत्साहित किया और एकरूपतावादियों को धर्म का शत्रु टहकाया। एकरूपतावादियों के ऊपर यह दोष लगाया गया कि वे पृथ्वी की आयु करोड़ों वर्ष की मानते हैं।

धीरे-धीरे धर्मान्धता दूर होने लगी। भौतिक परिवृत्तियों पर धर्म से भिन्न विचारों को भी मान्यता दी जाने लगी। वस्तु का कारण और प्रभाव जानने की प्रबल जिज्ञासा ने एकरूपतावादियों को प्रोत्साहित किया। पृथ्वी की दीर्घ आयु में लोगों को विश्वास होने लगा। एकरूपतावादी अभी अपने पैर पूरी तरह जमा भी न पाये थे कि उन्हें भौतिक विज्ञान के प्रकाण्ड विद्वान् लार्ड कैल्विन का सामना करना पड़ा।

लार्ड कैल्विन ने पृथ्वी की आयु की समस्या को तीन प्रकार से मुलझाने का प्रयास किया। आपके प्रयास गणित और भौतिकी के सर्वमान्य सिद्धान्तों पर अवलंबित थे। अतः इनके निष्कर्षों पर सन्देह करने का कोई भी कारण न था। इसलिए जब लार्ड कैल्विन ने पृथ्वी की आयु १० करोड़ वर्ष बतायी, तब भूशास्त्रियों के पैरों तले की जमीन खिसक गयी। वे बड़े असमंजस में पड़ गये। एक ओर हटन का मान्य सिद्धान्त दूसरी दिशा में लार्ड कैल्विन के प्रभावशाली प्रमाण और अकाट्य तर्क।

1. Gorges

पृथ्वी की परिभ्रमण गति और आयु

लार्ड कैल्विन का प्रथम प्रयास खगोलज्ञों की गवेषणाओं पर आधारित है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में खगोलज्ञों ने यह सत्य प्रतिपादित किया कि सौर-परिवार भूतकाल में भी इसी प्रकार मुचारु रूप से कार्यरत था, जैसे वर्तमान काल में, तथा भविष्य में भी इसकी कार्यशीलता इसी स्थिति में रहेगी। गणित की सहायता से किसी भी समय सौर-परिवार की स्थिति तथा दशा ज्ञात की जा सकती है।

पृथ्वी अपने अक्ष पर घूम रही है। पृथ्वी की परिभ्रमण गति के अध्ययन से हम पृथ्वी के काल को नाप सकते हैं। यह प्रमाणित हो चुका है कि पृथ्वी की परिभ्रमण गति धीरे-धीरे कम होती जा रही है। तत्फलस्वरूप पृथ्वी को अपने अक्ष पर एक चक्कर लगाने में अधिक समय लगेगा, अर्थात् नाक्षत्र-दिन की लम्बाई बढ़ती जा रही है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि भूतकाल में पृथ्वी वर्तमान की अपेक्षा अपने अक्ष पर अधिक तेजी से घूम रही थी। गणना करके लार्ड कैल्विन ने बताया कि एक अग्रव वर्ष पूर्व पृथ्वी की परिभ्रमण गति १५ गुनी अधिक थी। यदि उस समय पृथ्वी तरल अवस्था में थी तो तरल पदार्थों के परिभ्रमण सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी अपेक्षाकृत अधिक चपटी होनी चाहिए थी। पृथ्वी का वैपुवत व्यास ध्रुवीय व्यास की अपेक्षा अधिक बड़ा होना चाहिए था। पर हम देखते हैं कि पृथ्वी के ध्रुवीय और वैपुवत व्यास में बहुत कम (लगभग २७ मील) अन्तर है। इस अन्तर के आधार पर पृथ्वी की आयु लगभग दस करोड़ वर्ष होती है। दस करोड़ वर्ष की अवधि में पृथ्वी को जितनी चपटी होना चाहिए था, आज पृथ्वी लगभग उतनी ही चपटी है।

सूर्य की आयु

कैल्विन का दूसरा साधन सूर्य की आयु ज्ञात करना था। सूर्य ही

पृथ्वी का जनक है, इसलिए पृथ्वी की आयु सूर्य की आयु की अपेक्षा कम ही होगी। सूर्य की आयु ज्ञात करने के लिए सूर्य से उपलब्ध ताप और ऊर्जा का अध्ययन किया गया। ऊर्जा संरक्षण का सिद्धान्त कैल्विन महोदय के समय तक पूर्णतः स्थापित हो गया था। स्वयं लार्ड कैल्विन ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया था।

उम समय यह धारणा थी कि सूर्य आरम्भ से अब तक समान गति से बाहर की ओर ताप फेंक रहा है। ताप एक प्रकार की ऊर्जा ही है। सूर्य से ताप के रूप में ऊर्जा बाहर निकलती रहती है। ऊर्जा के धीरे-धीरे बाहर निकलने से सौर-ऊर्जा के भण्डार में कमी होती जायगी। किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं। सूर्य को अन्य स्रोतों से बराबर शक्ति प्राप्त होती रहती है। 'पृथ्वी के पूर्वज' शीर्षक परिच्छेद में बताया जा चुका है कि सूर्य में प्रतिक्षण अरबों उल्काएँ गिर रही हैं। उल्काओं से हम अच्छी प्रकार परिचित हैं। कभी-कभी ये हमारी पृथ्वी के ऊपर भी आक्रमण करती हैं। यह हमारे मौभाग्य की बात है कि अधिकतर उल्काएँ वायुमण्डल में प्रवेश करने ही हवा की रगड़ लगने से जल उठती हैं और पृथ्वी तक केवल उनकी राख ही पहुँच पाती है।

उल्काओं की गतिक-ऊर्जा मुख्यतः ताप और प्रकाश ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार सूर्य में गिरने वाली उल्काओं से सूर्य को ऊर्जा प्राप्त होती है। विकिरण द्वारा सूर्य की जो ऊर्जा व्यय होती है वह उल्काओं द्वारा पूरी की जाती है। पर क्या उल्काएँ विकिरण द्वारा नष्ट ऊर्जा की पूर्णतया पूरक हैं? सूर्य की ऊर्जा का वास्तविक उद्गम कहाँ है?

सूर्य की ऊर्जा के उद्गम को जानने के हेतु हमें विख्यात जर्मन वैज्ञानिक हरमान फौन हैलमहोलज की गवेषणाओं की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा। आपके विचार में आरम्भ में सूर्य ठण्डी गैस का एक बहुत बड़ा

गोला था। तब यह आज की अपेक्षा कई गुना बड़ा था। उस समय यह सन्तुलित अवस्था में न था। अपने ही भार के कारण सूर्य में संकोचन होने लगा। संकोचन के प्रभाव वश सूर्य के केन्द्रित भाग में गैस सम्पीडित हो गयी। गैस के सम्पीडन से उसके तापमान में वृद्धि हुई। इस प्रकार गैस के एक विशाल गोले के संकुचित होकर छोटे आकार का बन जाने से उसका तापमान बढ़ गया। तापमान धीरे-धीरे बढ़ता ही गया। भीतरी भाग की गैस का दबाव जब ऊपर वाले स्तरों के भार को सम्भालने में समर्थ हो गया, तब कदाचित् संकोचन क्रिया बन्द हो गयी और सूर्य सन्तुलन-अवस्था में आ गया।

पर सूर्य में पूर्ण सन्तुलन की अवस्था न आ पायी, क्योंकि उसकी सतह से ताप विकिरण क्रिया द्वारा चारों ओर के ठण्डे वायुमण्डल में प्रवाहित होने लगा। इस प्रकार सूर्य से निरन्तर ऊर्जा व्यय हो रही है। इस ऊर्जा की कमी को पूरा करने के लिए सूर्य का पुनः संकुचन आवश्यक हो गया। हैल्म होल्ज के विचार में सूर्य अब भी धीरे-धीरे सिकुड़ता जा रहा है।

न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त के आधार पर यह ज्ञात किया गया है कि सूर्य के व्यास में कितनी कमी हो रही है। हर सौ साल में सूर्य का अर्ध-व्यास ०.०००३ प्रतिशत कम होता जायगा। यह परिवर्तन इतना सूक्ष्म है कि मनुष्य को अपने जीवन-काल में इसका बोध संभव नहीं, पर भौमिक काल की दृष्टि से यह सूक्ष्म परिवर्तन भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

वैज्ञानिकों ने आरम्भ से अबतक सूर्य के संकुचन से उपलब्ध गुरुत्वाकर्षण ऊर्जा ज्ञात की है। सूर्य से व्यय होने वाली ऊर्जा की वार्षिक दर तथा सूर्य के घनत्व को ध्यान में रखकर कैल्विन ने सूर्य की आयु १० करोड़ वर्ष बतलायी है।

यहाँ यह बतलाना आवश्यक है कि कैल्विन के समय में ऊर्जा का स्रोत सूर्य का संकुचन ही माना गया था, पर आधुनिक गवेषणाओं के फलस्वरूप

1. Gravitational energy

हमें अणुओं में व्याप्त ऊर्जा के अनन्त भण्डार का पता चल गया है। इस प्रकार गणित पर आधृत लार्ड कैल्विन के तर्क १९ वीं शताब्दी में अकाट्य थे, पर बीसवीं शती में उन प्रमाणों की कोई मान्यता नहीं है।

पृथ्वी का तापमान और आयु

लार्ड कैल्विन ने पृथ्वी की आयु जानने के लिए पृथ्वी के तापमान का अध्ययन किया। ज्यों-ज्यों हम पृथ्वी में भीतर की ओर जाते हैं, तापमान बढ़ता जाता है। औसतन प्रति ३० या ३५ मीटर पर तापमान १ अंश सेंटीग्रेड बढ़ जाता है। पृथ्वी में ताप भीतर से बाहर की ओर बहता है। बाहर आकर ताप का वायुमण्डल में विकिरण हो जाता है। अतः हमारी पृथ्वी आग का एक बड़ा गोला है, जो धीरे-धीरे ठण्डा हो रहा है। आरम्भ में इस गोले का तापमान और अधिक था। इस गोले का तापमान ४५०० अंश सेंटीग्रेड मानकर लार्ड कैल्विन ने हिमाव लगाया कि १० करोड़ वर्ष तक धीरे-धीरे ठण्डी होने पर ही पृथ्वी वर्तमान तापमान-प्रवणता पर पहुँची है।

बाद में लार्ड कैल्विन को ज्ञात हुआ कि उन्होंने पृथ्वी का आरम्भिक तापमान अधिक मान लिया था। शिलाओं के भौतिक गुणों को ध्यान में रखते हुए इतना उच्चतम तापमान संभव न था। अतः पृथ्वी की आयु १० करोड़ वर्ष से घटाकर २½ करोड़ वर्ष कर दी गयी।

उस समय पृथ्वी में विद्यमान रेडियो-सक्रिय पदार्थों का पता न चल पाया था। इन रेडियो-सक्रिय पदार्थों के विघटन से पृथ्वी को अनन्त ऊर्जा प्राप्त होती है। अतः पृथ्वी धीरे-धीरे ठण्डी हो रही है, कहना कठिन है। रेडियो-सक्रिय विधि के ऊपर आगे एक अध्याय में विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

1. Temperature gradient

अध्याय ५

सागर की आयु

‘इस समुद्र के गर्भ में एक मधुर रहस्य है, न जाने वह क्या है ! इसके सौम्य तथा भयभीत कंपन इसके तन में किसी अदृश्य आत्मा का पता देते हैं।’
—हरमैन मेलविल (सागर की खोज, पृ० २२)^१

पृथ्वी के जन्म की कहानी कहते हुए हमने सागर की रचना की ओर भी संकेत किया था। पृथ्वी के निर्माण के समय उसके पटल पर के गड्ढों में वृष्टिका जल एकत्र होने से ही उन ‘जलकुण्डों’ की रचना हुई। उस काल की वृष्टि का अनुमान डमी से लगाया जा सकता है कि निरन्तर दिन-रात, महीनों, वर्षों, कदाचित् शताब्दियों पर्यन्त भयंकर मूसलाधार पानी बरसता रहा। यह पानी पृथ्वी के गड्ढों में भरता गया और क्रमशः इन्होंने ही सागर का रूप धारण कर लिया।

सागर का सर्जनकाल भूपटल-निर्माण-काल के समान ही माना जा सकता है। यदि हम सागर की आयु ज्ञात कर लें तो उस आधार पर पृथ्वी की आयु भी जान सकेंगे। निम्नलिखित अनुच्छेदों में सागर की आयु के विषय में बताने का प्रयास किया गया है।

सागर की आयु ज्ञात करने का सर्वप्रथम झुकाव प्रसिद्ध खगोलज्ञ हेली (१६५६-१७४२) ने रखा। किन्तु इस विधि से सागर की आयु ज्ञात करने

१. सागर की खोज—(The Sea Around Us by Rachel L. Carlom का हिन्दी अनुवाद), अनु० आनन्द प्रकाश जैन, १९५८।

का श्रेय भू-शास्त्री जैली को है। यह विधि इस तथ्य पर अवलंबित है कि सागर-जल में विद्यमान सम्पूर्ण लवण उसे स्थल की देन है। आरम्भ में सागर का जल मीठा था, पर वायु तथा नदियों द्वारा स्थल से लाकर जमा किये हुए लवण के कारण ही सागर का जल खारा होता गया। अतः यदि हम यह जान लें कि सागर में लवण की कितनी मात्रा है तथा प्रतिवर्ष वायु एवं नदियाँ कितना लवण सागर में बहा ले जाती हैं, तो पहली मात्रा को दूसरी मात्रा से भाग देने पर सागर की आयु का अनुमान लगाया जा सकता है।

सागर की आयु— $\frac{\text{सागर में विद्यमान लवणों की मात्रा}}{\text{सागर में प्रतिवर्ष जमा होने वाले लवणों की मात्रा}}$

सागर में लवण

आधुनिक खोजों के फलस्वरूप ज्ञात हुआ है कि प्रायः सभी रासायनिक तत्त्व सागर में किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। कारसन ने लिखा है कि समुद्री जल में ५०, ०००, ०००, ००००००, ००००००, ०००००० टन लवण है।^१ वैज्ञानिकों की मान्यता है कि सागर-जल में खनिजों के अनन्त भण्डार हैं। यहाँ तक कि सोना और चाँदी प्राप्त करने के लिए भी भविष्य में हम सागर पर आश्रित रहेंगे।

सागरों में कुल मिलाकर इतने अधिक परिमाण में स्वर्ण मौजूद है कि उससे संसार का प्रत्येक व्यक्ति लवणपति हो सकता है, किन्तु वरुण देवता के मुख से उसे किस प्रकार उगलवाया जाय ? जर्मनी की युद्धोत्तरकालीन ऋण सम्बन्धी देनदारी को भुगताने के लिए समुद्र से पर्याप्त सोना निकालने का विचार जर्मन वैज्ञानिक फ्रिट्ज हेबर के मस्तिष्क में उठा। उसके

१. सागर की खोज : [Rachel L. Carson की “The Sea Around Us” अनुवाद), अनुवादक—आनन्द प्रकाश जैन (सन् १९५८), पृ० २३०।

स्वप्न को साकार करने के लिए एक अन्वेषक दल ने १९२४ व १९२८ के बीच कई बार अटलांटिक महासागर की यात्रा की। किन्तु सोने की मिलने वाली मात्रा आशा से कम रही और उसे निकालने का मूल्य उससे मिलने वाले मूल्य से अधिक रहा। समुद्र के औसतन एक घन मील जल में लगभग ९३,०००,००० डालर का सोना है और ८५,००,००० डालर की चाँदी है।^१

सागर से लवण प्राप्त करने में हमारी सफलता सीमित-सी ही है। जब हमारे साधन और उन्नत हो जायँगे, तब संभव है कि हम सागर में विद्यमान सभी पदार्थों का आर्थिक उत्पादन कर सकेंगे।

रासायनिक विश्लेषण के परिणामस्वरूप हमें ज्ञात हुआ है कि सागर में पाँच लवण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। इनमें सोडियमक्लोराइड सर्व-प्रमुख है। सागर-जल में सोडियम क्लोराइड की मात्रा ७७.८ प्रतिशत है। मैगनेशियम क्लोराइड की १०.९ प्रतिशत, मैगनेशियम सल्फेट की ४.७ प्रतिशत, कैल्सियम सल्फेट की ३.६ प्रतिशत तथा पोटेशियम सल्फेट की २.५ प्रतिशत। शेष लवण ५ प्रतिशत हैं।

रासायनिक दृष्टि से सागर-जल और नद-जल में आश्चर्यजनक विभिन्नताएँ हैं। नदियाँ क्लोराइड की अपेक्षा चार गुना अधिक कैल्सियम सागर में लाती हैं, पर सागर में क्लोराइड की मात्रा कैल्सियम की अपेक्षा ४६ गुना अधिक है। इसका मुख्य कारण है समुद्री जीवों द्वारा कैल्सियम को अपने में सोख लेना। यही कैल्सियम समुद्री जीवों के कवच आदि बनाने में योग देता है। दूसरे, कैल्सियम अवक्षेपित होकर समुद्र के तल में बैठ जाता है। इसी प्रकार (नदियों द्वारा विपुल परिमाण में लाये गये सिलिका का भी महत्त्वपूर्ण भाग समुद्री जीवों द्वारा खींच लिया जाता है। अतः समुद्र में प्रतिवर्ष आने वाले धुले हुए लवणों का अल्प भाग ही सागर जल को प्राप्त होता है।

क्लार्क ने शुद्ध जल में घुले हुए पदार्थों का औसत योग इस प्रकार दिया है--

कारबोनेट	३५.१५*
सल्फेट	१२.१४
क्लोराइड	५.६८
नाइट्रेट	०.९०
कैल्शियम	२०.३९
मैगनीशियम	३.४१
सोडियम	५.७९
पोटाशियम	२.१२
लोह एल्यूमिनियम आक्साइड	२.७५
सिलिका	११.६७
	१००.००

पर इन सब पदार्थों में सोडियम ही ऐसा पदार्थ है जो सरलता से एकत्र होता है। अन्य घुले हुए पदार्थ रासायनिक क्रिया द्वारा या 'जैविक विधि' से अवक्षेपित हो जाते हैं। इन पदार्थों में से मुख्य-मुख्य नीचे दिये गये हैं, साथ ही उनसे नियमित खनिज का नाम भी दिया गया है।

* [Carbonate (CO_3),	Sulphate (SO_4),
Chloride (Cl)	Nitrate (NO_3),
Calcium (Ca),	Magnesium (Mg)
Sodium (Na),	Potassium (K),
Iron-Aluminium Oxide	(Fe Al) $_2$ O $_3$ Silica (SiO_2)]
1. Precipitated	2. Mineral

कैल्सियम कार्बोनेट	—	कैल्साइट
मैगनीशियम कार्बोनेट	—	मैग्नेसाइट
कैल्सियम-मैगनीशियम कार्बोनेट	—	डोलोमाइट
कैल्सियम सल्फेट (जल)	—	जिप्सम
लौह आक्साइड (जल)	—	लिमोनाइट
सिलिकन डाई आक्साइड	—	सिलिका

इनके अतिरिक्त पोटेशियम बहुत कम मात्रा में सागर तक पहुँच पाता है। इस स्वल्प पोटेशियम का अधिकांश भाग भी ग्लौकोनाइट^१ खनिज के निर्माण में लग जाता है। क्लोरीन की मात्रा की गणना और भी कठिन है। क्लोरीन का अधिक भाग ज्वालामुखी से प्राप्त होता है। इस प्रकार सोडियम के अतिरिक्त अन्य तत्वों का भौमिक सन्तुलन पत्र^२ बनाना कठिन है। अतः सोडियम के आधार पर ही सागर की आयु ज्ञात करना सरल है।

सागर की आयु ज्ञात करने की विधि बताने के लिए हम एक छोटा-सा उदाहरण लेते हैं। मृतसागर^३ एक प्राकृतिक जलभण्डार है। इसका तल भूमध्यसागर^४ के तल से दो फीट नीचा है। जार्डन नदी मृतसागर में गिरती है। यह नदी अपने साथ बहुत-से रासायनिक लवण लाती है। इसमें मुख्य हैं मैगनीशियम, सोडियम, कैल्सियम एवं पोटेशियम-क्लोराइड। सहस्रों वर्ष से मृतसागर में वाष्पन क्रिया^५ हो रही है, तत्फलस्वरूप जल में इन लवणों की मात्रा बढ़ रही है। ज्ञात हुआ है कि मृतसागर में पोटेशियम क्लोराइड की मात्रा लगभग २०००.०००.००० टन है। जार्डन नदी प्रतिदिन लगभग १०० टन मात्रा घोल के रूप में इसको लाती है। यदि

1. Glaucinite

2. Balance Sheet

3. Dead Sea

4. Mediterranean Sea

5. Evaporation

जार्डन नदी के पोटेशियम क्लोराइड जमा करने की गति समान रही है, तो कहा जा सकता है कि लगभग ५५००० वर्षों से यह क्रिया हो रही है। इस प्रकार हम मृतसागर की आयु का अनुमान लगा सकते हैं। ५५००० वर्ष मृतसागर की निम्नतम आयु मानी जा सकती है।

सोडियम-विधि

सोडियम की मात्रा के आधार पर पृथ्वी की आयु की गणना मुख्यतः निम्नोक्त मान्यताओं पर अवलंबित है—

१. प्राथमिक समुद्र में, अर्थात् जब समुद्र की रचना हुई, सोडियम की मात्रा नाममात्र को भी न थी।

२. सागर को जो कुछ भी सोडियम प्राप्त हुआ, उसमें जमा होता गया। अवक्षेपण द्वारा जो कुछ भी सोडियम की मात्रा व्यय हुई, वह स्वल्प है।

३. आरंभ से अब तक सोडियम जमा होने की वार्षिक गति समान रही है।

इन मान्यताओं के औचित्य पर तो आगे विचार किया जायेगा। पहले हम इन स्थापनाओं को लेकर सागर की आयु ज्ञात करेंगे, तत्पश्चात् आवश्यकतानुसार उसमें संशोधन कर लेंगे।

सागर में प्रतिवर्ष सोडियम की मात्रा किस गति से जमा हो रही है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए विश्व की समस्त नदियों का विशद अध्ययन आवश्यक है। किन्तु यह एक बृहत् और कठिन कार्य है। जब तक विश्व के सभी देशों का सहयोग प्राप्त न हो, यह कार्य अधूरा ही रहेगा। इस न्यास^१ की अनुपस्थिति में, किसी भी उचित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए यह आवश्यक है कि विश्व की प्रमुख नदियों का विस्तृत अध्ययन हो।

1. Data

वैज्ञानिकों ने विश्व की प्रमुख नदियों के अध्ययनोपरान्त निम्नलिखित बातें ज्ञात की हैं—

नदियों की द्रोणी^१ का क्षेत्रफल और उसकी ऊँचाई।

नदियों के पानी का खारीपन।

यान्त्रिक विधि द्वारा (नदियों द्वारा) ले जाये गये पदार्थ का बोझ।

नदियों द्वारा जमा किये जाने वाले सम्पूर्ण पदार्थ की मात्रा।

साथ ही उत्तरी अमेरिका में बहने वाली नदियों का भी विस्तृत रूप में अध्ययन हो चुका है। यहाँ यह भी बतलाना उचित है कि उत्तरी अमेरिका इस प्रकार के अध्ययन के लिए आदर्श क्षेत्र है। उत्तरी अमेरिका की माध्य^२ ऊँचाई पृथ्वी के सभी स्थल समुदायों की माध्य ऊँचाई के लगभग बराबर है। इसके अतिरिक्त उत्तरी अमेरिका में उत्पादन^३ की औसत गति विश्व की मुख्य नदियों की औसत अपरदन गति से कुछ ही अधिक है। अतः उत्तरी अमेरिका की नदियों के आधार पर ज्ञात निष्कर्षों की सहायता से विश्व के समस्त नद-क्षेत्रों^४ के उपरदन के फलस्वरूप जमा होने वाले पदार्थ की मात्रा का अनुमान लगाया जा सकता है।

उत्तरी अमेरिका की नदियों के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि स्थल से लगभग ६०००,०००,००० टन पदार्थ एक वर्ष के बीच में सागर में ले जाया जाता है। विश्व की प्रमुख नदियों के अध्ययन के आधार पर यह संख्या ५७००,०००,००० टन ज्ञात हुई है। ये दोनों ही संख्याएँ एक-दूसरे के बहुत निकट हैं। अतः हम इन पर सविश्वास निर्भर रह सकते हैं। इसी प्रकार एक वर्ष में ले जाये गये खार^५ पदार्थ की मात्रा उत्तरी अमेरिका की नदियों तथा विश्व की प्रमुख नदियों के आधार पर क्रमशः ३०००,०००,-००० टन तथा २४४०,०००,००० टन है।

1. River basin

2. Mean

3. Erosion

4. Drainage areas

5. Saline

महासागरीय जल की सम्पूर्ण संहति १,१७८,०००,०००,०००,०००, ००० टन है। इसमें सोडियम की मात्रा १.०८ प्रतिशत है। महासागरों में विद्यमान सोडियम की मात्रा १२,६००,०००,०००,०००,००० टन है। एक वर्ष में नदियों द्वारा लाये जाने वाले सोडियम की मात्रा १५६,०००,००० टन है। इस आधार पर महासागरों की आयु

सागर में विद्यमान सम्पूर्ण सोडियम की मात्रा

नदियों द्वारा एक वर्ष में लाये जाने वाले सोडियम की मात्रा

$$= \frac{१२६००,०००,०००,०००,०००}{१५६,०००,०००} \text{ वर्ष}$$

$$= ८१,०००,००० \text{ वर्ष।}$$

यह रहा सागर की आयु का मोटा अनुमान। अब हम उपरिलिखित मान्यताओं पर विचार करेंगे। पहली मान्यता है प्राथमिक सागर में सोडियम की अनुपस्थिति। यह कहना बड़ा कठिन है कि प्राथमिक सागर में सोडियम नहीं था और यदि था तो कितना। यह बात पृथ्वी की उत्पत्ति के सिद्धान्त से संबद्ध है। यदि पृथ्वी की रचना चैम्बरलेन वाद^१ के अनुसार शीतग्रहाणुओं^२ के योग से हुई है, तो महासागरों का विकास धीरे-धीरे हुआ होगा। उनका खारापन क्रमशः बढ़ा होगा। पर यदि पृथ्वी गैसीय अवस्था से संघनन^३ द्वारा बनी है, तो महासागर की रचना उस समय हुई होगी जब कि तापमान पानी के चरम तापमान ३७४ अंश सेंटीग्रेड से कम हो गया होगा। इस अवस्था में गर्म नमक के अम्ल^४ के चिप्पड़ या भूपटल पर प्रभाव से क्लोराइड^५ आदि बने होंगे और सागर का जल खारा हो गया होगा। बहुत-से विद्वानों ने, जिनमें महान् जर्मन विशेषज्ञ भी हैं, प्राथमिक सागर में

1. Chamberlin Hypothesis

2. Cold Planetesimals

3. Condensation

4. Hydrochloric acid

5. Chloride

मूलतः कुछ सोडियम की विद्यमानता को माना है। जौली ने प्राथमिक सागर में विद्यमान सोडियम क्लोराइड की मात्रा का अनुमान लगाया और इस आधार पर अपनी परिकलित आयु में १२.५ प्रतिशत कमी कर दी।

सागर में विद्यमान सोडियम के विषय में एक और बात का उल्लेख भी आवश्यक है। सोडियम की जो मात्रा सागर में प्रतिवर्ष जमा होती है, वह सब की सब नयी मात्रा नहीं है। इसका कुछ भाग सागर में पहले से विद्यमान था। किन्हीं क्रियाओं द्वारा वह सागर से स्थल की ओर चला जाता है और पुनः सागर में आकर जमा हो जाता है। इसे सोडियम-चक्र कहते हैं।

वायु द्वारा लाये जाने वाले सोडियम की मात्रा कितनी है, यह कहना कठिन है। विद्वानों के इस सम्बन्ध में विभिन्न विचार हैं। बेकर^१ के विचार में वायु द्वारा सोडियम-क्लोराइड स्थल में बीस मील तक ले जाया जाता है। प्रसिद्ध भूमिशास्त्री हौलेंड^२ ने, जिन्होंने राजस्थान क्षेत्र का विस्तृत अध्ययन किया था, बताया है कि वायु अपने साथ लवणों को स्थल में पाँच सौ मील भीतर ले जा सकती है। योवा^३ की माउंट वर्नन^४ का अध्ययन इस दिशा में बड़ा रुचिकर है। माउंट वर्नन प्रशान्त महासागर के तट से १५०० मील दूर, अटलांटिक तट से १२०० मील तथा 'गल्फ' से ८०० मील दूर है। यहाँ पर क्लोरीन के अवक्षेपण का अध्ययन किया गया। इस विस्तृत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि लवण स्थल में भीतर अधिक दूर तक ले जाये जा सकते हैं। नदियों में विद्यमान क्लोरीन की औसत मात्रा प्रति दस लाख में सात भाग है। वर्षा के जल में क्लोरीन की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। आंधी के साथ वेग से आने वाली वर्षा के जल में क्लोरीन की अधिकतम मात्रा प्रति दस लाख में १२१ भाग है। वर्षा का लगभग दो-तिहाई भाग

1. Becker

2. Holland, T.

3. Iowa

4. Mount Vernon

भाप बनकर वायुमण्डल में चला जाता है, इस दो-तिहाई भाग में क्लोरीन नहीं रहता। शेष एक-तिहाई भाग में, जो बहकर जाता है, क्लोरीन की मात्रा वर्षाजल में विद्यमान क्लोरीन की मात्रा की तिगुनी होती है। यह क्लोरीन भी सोडियम के साथ मिलकर सोडियम-क्लोराइड बनाता है। अतः इस क्लोरीन के तुल्य सोडियम भी चक्र से प्राप्त होता है, अर्थात् यह सागर का ही सोडियम है जो पुनः उसमें पहुँच जाता है। पर क्लोरीन के तुल्य सोडियम की मात्रा को पूर्णतः सोडियम-चक्र से प्राप्त मान लेना उचित नहीं है, क्योंकि कुछ क्लोरीन ज्वालामुखी से भी प्राप्त होता है।

घुले हुए पदार्थों में क्लोराइडमय सोडियम^१ की मात्रा ३.६८ प्रतिशत है। पूर्ण सोडियम की मात्रा ५.७९ है। (देखिए तालिका पृष्ठ ७७)। अतः अक्लोराइडमय सोडियम^२ की मात्रा २.११ प्रतिशत हुई। अतः नदियाँ प्रतिवर्ष २.११ प्रतिशत नया सोडियम सागर में ले जाकर जमाकर रही हैं। क्लार्क के अनुसार सागर में प्रतिवर्ष होने वाले लवणों की मात्रा २.७३५×१०^९ टन है। इस आधार पर सागर में प्रतिवर्ष $२.७३५ \times १०^९ \times .०२११$ अर्थात् ५.७७×१०^९ टन नया सोडियम जमा होता है। क्लार्क के अनुसार सागर में विद्यमान सोडियम की मात्रा १६०९×१०^{१३} टन है। इस प्रकार उसके विचार में—

$$\text{सागर की आयु} = \frac{१६०९ \times १०^{१३}}{५.७७ \times १०^९} = २७०,०००,००० \text{ वर्ष लगभग।}$$

इस संख्या में वायु द्वारा ले जाये गये सोडियम, सागरीय उद्गम के सोडियम आदि के आधार पर क्लार्क ने दस प्रतिशत कमी की है। इस संशोधन पर सागर की आयु लगभग १००,०००,००० वर्ष है।

क्लार्क की इस गणना का आधार आग्नेय शिलाओं में विद्यमान

सोडियम की मात्रा है। आपके अनुसार सागर का सोडियम आग्नेय शिलाओं के अपरदन से प्राप्त हुआ है।

सोडियम-विधि की दूसरी मान्यता है कि सागर को जो कुछ भी सोडियम प्राप्त हुआ है, उसमें जमा होता गया। अवक्षेपण द्वारा जो कुछ भी सोडियम की मात्रा व्यय हुई, वह स्वल्प है।

सागर के सोडियम की कुछ मात्रा ग्लुकोनाइट खनिज के निर्माण में व्यय होती है। ग्लुकोनाइट में सोडियम आक्साइड^१ की मात्रा ३ प्रतिशत है। चूना पत्थर^२ तथा डोलोमाइट^३ नामक जलज शिलाओं में भी सोडियम की कुछ मात्रा एल्वाइट^४ खनिज के निर्माण में व्यय होती है। पर सागर में सोडियम की अधिक हानि अधिशोषण^५ और भस्मविनिमय^६ विधि द्वारा होती है। सागर की मिट्टियों में नदियों की मिट्टियों की अपेक्षा सोडियम की मात्रा अधिक है। सागर की मिट्टी सागर जल में विद्यमान सोडियम के कुछ भाग को अपने में सोख लेती है। यह क्रिया सागर की तलहटी में होती है। सागर की तलहटी में विद्यमान बेसाल्ट-ग्लास^७ पैलेगो नाइट^८ में परिवर्तित हो जाता है। इसमें सोडियम की मात्रा १.८३ से ४.५० प्रतिशत तक हो जाती है।

अधिशोषण या भस्म-विनिमय क्रिया को स्पष्ट रूप से समझाने के लिए हम परम्युटिट^९ के विषय में संक्षेप में बतायेंगे। परम्युटिट का उपयोग भारी पानी को हल्के पानी में परिवर्तित करने के लिए किया जाता है। उदाहरणार्थ, हम सोडियम परम्युटिट^{१०} लेते हैं। भारी पानी को परम्युटिट फिल्टर द्वारा

1. Sodium Oxide (Na_2O)	2. Lime Stone
3. Dolomite	4. Albite ($\text{Na Al Si}_3 \text{O}_8$)
5. Adsorption	6. Base exchange
7. Basalt glass	8. Palagonite
	9. Permutites
10. Sodium permutit ($\text{Na}_2 \text{O}, \text{Al}_2 \text{O}_3, 4\text{SiO}_2, x\text{H}_2 \text{O}$)	

छाना जाता है, इस क्रिया में जल का कैल्सियम सोडियम द्वारा परिवर्तित हो जाता है, अर्थात् जल में सोडियम तथा परम्युटिट में कैल्सियम आ जाता है। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप जल हलका हो जाता है। जब परम्युटिट का सारा सोडियम व्यय हो जाता है और उसके स्थान पर कैल्सियम एकत्र हो जाता है, तो परम्युटिट में पानी को हलका करने की शक्ति नहीं रहती। परम्युटिट को पुनः शक्तिशाली बनाने के हेतु उसे पुनः सोडियम के घोल में डाला जाता है।

विल्कुल इसी प्रकार की क्रिया सागर में होती है। मिट्टी में बहुत से खनिज पाये जाते हैं, जैसे 'मृदा-जिओलाइट्स'। ये परम्युटिट के समान होते हैं। अपरदन क्रिया के फलस्वरूप मिट्टी के ये अवयव सागर में ले जाये जाते हैं। सागर में सोडियम क्लोराइड का घोल है, अर्थात् सागर-जल में नमक अधिक मात्रा में मिला है। यहाँ मिट्टी के अवयवों और सोडियम क्लोराइड में भस्म-विनिमय क्रिया होती है। परिणामस्वरूप वे नीचे बैठ जाते हैं और इस प्रकार सागर में जलज शिलाओं की तहें जमना आरंभ हो जाता है।

सागर में मिट्टी के स्तरों के जमा होने से जो शिलाएँ बनती हैं उन्हें शेल^१ कहते हैं। उपरिलिखित आधार पर हम कह सकते हैं कि शेल शिलाओं में विद्यमान सोडियम अधिशोषण या भस्मविनिमय विधि से प्राप्त होता है। जलज शिलाएँ पृथ्वी के तीन-चौथाई भाग को ढके हुए हैं। जलज शिलाओं में भी ५० प्रतिशत शेल है। अतः यह कहा जा सकता है कि अधिकांश जलज शिलाओं को सोडियम सागर से प्राप्त हुआ है। यही सोडियम इन शिलाओं के अपरदन से पुनः सागर को प्राप्त होता है। अतः यह भी चक्र-सोडियम है।

स्ट्रैम^३ ने नदी और सागर की मिट्टियों का तुलनात्मक अध्ययन करके

बताया कि शेल में विद्यमान सोडियम का आधा अधिशोषण और भस्म-विनिमय उद्गम से प्राप्त हुआ है।

सागर के सोडियम का कुछ भाग लवण-निक्षेपों (विशेषकर नमक की पहाड़ियों) के रूप में पाया जाता है। मनुष्य और प्रकृति दोनों ही दीर्घकाल से सागर जल को उड़ाकर लवण प्राप्त करने में लगे हैं। मनुष्य को जहाँ कहीं जलवायु की सुविधा मिली उसने सागर जल का सौर वाष्पीकरण कर लवण प्राप्त किये हैं। फारस की खाड़ी, चीन, जापान, फिलिपाइन्स, कैलीफोर्निया, यूटाह तथा भारत में आज भी सौर वाष्पीकरण द्वारा नमक तैयार किया जाता है। विश्व के कुछ भागों में स्वतः प्रकृति ही इस कार्य में लीन है। भारतवर्ष के पश्चिम में कच्छका रन इसका ज्वलंत उदाहरण है। रन एक समतल मैदान है जिसका आकार ६०×१८५ मील है। यह कच्छ के द्वीप द्वारा समुद्र से अलग हो जाता है। जब दक्षिण पश्चिमी मानसून आता है, एक जलमार्ग के द्वारा सागर का पानी मैदान में आ जाता है और उसके जलाशयों में एकत्र हो जाता है। पर उत्तर-पूर्वी मानसून (जो स्थल से आता है) के समय इस भाग में जल का आना बन्द हो जाता है। जलाशयों में एकत्र जल भाप बनकर उड़ जाता है, तत्परिणामस्वरूप लवण के स्तर शेष रह जाते हैं। ये स्तर कई फुट तक मोटे हैं। प्रकृति की यह क्रिया फिलस्तीन^१ में मृतसागर में तथा अमेरिका में यूटाह^२ की नमक की झील में बड़े पैमाने पर हो रही है।

दीर्घकाल-पूर्व 'गिरि-युग'^३ में, अर्थात् लगभग बीस करोड़ वर्ष पूर्व एक विस्तृत अन्तःप्रदेशीय सागर ने यूरोप के अधिकांश भागों को आच्छादित कर लिया। उस समय वहाँ वाष्पीकरण की गति तीव्र थी, अतः सागर में लवणों की मात्रा घनी होती गयी। अन्ततः लवणों की परतों पर परतें जमने लगीं। जर्मनी में स्टैसफर्ट^४ में ये परतें लगभग २५०० फुट मोटी

हैं। लवणों की दृष्टि से ये विश्व के सबसे महत्वपूर्ण निक्षेप^१ माने जाते हैं।

भौमिक काल में कई बार भूमण्डल के कई भागों में समुद्र स्थल पर चढ़ आया और कुछ काल बाद वापस लौट गया। ऐसे ही समुद्र की एक बाहु कैलीफोर्निया के सीअरसेल भाग में फैली थी। एक पर्वतमाला के खड़े हो जाने से सागर की यह बाहु कट गयी। सागर से विच्छेद हो जाने पर इस झील का पानी भाप बनकर उड़ता रहा तथा किनारों पर लवण जमने लगे। झील का पानी दिन-प्रतिदिन खारा होता गया। बाष्पीकरण द्वारा सारे पानी के लोप हो जाने पर यह झील 'लवणों की झील' में परिवर्तित हो गयी। इसी झील से संसार में उत्पादित सुहागे का आधा भाग प्राप्त होता है।

'साल्टरेंज'^२ ने, जो विभाजन से पूर्व भारतवर्ष का ही एक भाग था और अब पाकिस्तान क्षेत्र में है, अपने निक्षेपों की आयु के वाद-विवाद के कारण विश्व के प्रमुख भूशास्त्रियों को अपनी ओर आकर्षित किया है। इन निक्षेपों का वार्षिक उत्पादन डेढ़ लाख टन से अधिक है। विश्व के समस्त लवण-निक्षेपों की मात्रा पर भी यदि विचार करें तो उन सबका जोड़ भी सागर में विद्यमान सोडियम की मात्रा की तुलना में नगण्य है।

इस प्रकार दूसरी मान्यता का विवेचन करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यद्यपि अवक्षेपण की क्रिया से सागर के सोडियम का अल्पांश व्यय होता है, पर अधिशोषण तथा भस्म-विनिमय विधि द्वारा व्यय होने वाले सोडियम की मात्रा अधिक है। इस आधार पर हमें सागर की ज्ञात आयु में महत्वपूर्ण संशोधन करना होगा।

तीसरी मान्यता है कि सागर में सोडियम जमा होने की गति सर्वदा

समान रही है। इसका अर्थ है कि अपरदन की गति में आरंभ से अब तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। पर क्या यह सत्य है ?

जो कुछ भी कार्य इस दिशा में हुआ है, उससे स्पष्ट है कि अपरदन की गति परिवर्तनशील है। वर्तमान काल में भूतकाल की अपेक्षा अपरदन-गति कहीं अधिक है। अपरदन-गति जिन बातों पर निर्भर होती है उनमें स्थल की ऊँचाई मुख्य है। अपरदन का ध्येय है असम को सम करना। ऊँचे भाग अपरदन क्रिया के परिणामस्वरूप घिसते जाते हैं और अन्ततः सारा प्रदेश समतल हो जाता है। वर्तमान काल में अपरदन वेग से हो रहा है। पृथ्वी के घटनाचक्र में इस समय पर्वत निर्माणकारी अवस्था चल रही है, अतः महाद्वीप अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत और ऊँचे हैं। फलस्वरूप नदियों का वेग भी अधिक है।

नदियों की अपरदन-शक्ति भूमि के ढाल, जल की मात्रा तथा उस प्रदेश की शिलाओं के योग पर निर्भर है। ऊँची-नीची भूमि होने के कारण नदियों का वेग अधिक होता है। जल की मात्रा कम होने पर भी एक वेगवती नदी का अपरदन कार्य महत्त्वपूर्ण होता है। पर्वतों पर बहने वाली छोटी-छोटी वेगवती नदियाँ भी बड़े-बड़े शिलाखण्डों को अपने साथ बहा लाती हैं। वर्तमान काल की नदियाँ अधिक वेगवती हैं। अपनी आधार-शिलाओं में विद्यमान घुलनशील पदार्थों को बहाकर ले जाने में ये सामर्थ्यवान ही नहीं, वरन् महत्त्वपूर्ण भी हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आजकल नदियाँ अपेक्षाकृत अधिक पदार्थ ले जाकर सागर में जमा कर रही हैं।

भूतकाल में जब पर्वत घिसते-घिसते निचले मैदानों के सम हो गये थे, सागर का जल निचली भूमि पर फैल गया था, उस समय जल मन्द गति से बहता था। परिणामस्वरूप अपरदन की गति नाम मात्र को ही रह गयी थी।

इसके अतिरिक्त भूतकाल में, जैसा कि हमें भौमिकी के अध्ययन से ज्ञात हुआ है, भूमण्डल के विस्तृत भाग हिम-चादरों से ढके थे। यह आवरण एक कवच के समान था। वायुमण्डल की शक्तियाँ इस आवरण को भेदने में

असमर्थ थीं, इसलिए भी अपरदन की गति कम थी। इस युग में हिम-चादरें समाप्त हो चुकी हैं और यदि हैं तो विश्व के कुछ ही भागों में, जैसे ग्रीनलैंड, अन्टार्कटिका आदि। अतः स्थल का बहुत बड़ा भाग अपरदन कार्य के लिए विगोपित^१ है।

अर्वाचीन काल में स्वयं मनुष्य के कार्यों ने ही अपरदन-गति में सहायता पहुँचायी है। दिन-प्रतिदिन वन कटते जा रहे हैं, इससे भी मिट्टी छीजन^२ की समस्या उपस्थित हो गयी है। हमारे देश में इस समस्या को सुलझाने के निमित्त वनमहोत्सव आरम्भ हुआ था। बड़े-बड़े बाँध बनाने एवं महान् योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए प्रायः सभी प्रान्तों में खुदाइयाँ हो रही हैं। मिलों और कारखानों की चिमनियों से निकले विषैले धुएँ और गैसों से वायुमण्डल की अपरदन-शक्ति अधिक बढ़ गयी है। वायुमण्डल में व्याप्त ये गैसें वर्षाजल के साथ मिलकर नीचे आती हैं। गैसयुक्त वर्षाजल साधारण जल की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता है। उदाहरण के लिए, साधारण जल में शिलाओं को घुलाने की सामर्थ्य नहीं है, पर कार्बन डाइ-आक्साइड मिल जाने पर यही जल चूने के पत्थर को पूर्णतः अपने में घुला लेता है। यही कारण है कि चूना-पत्थर वाले प्रदेशों में बड़ी-बड़ी गुफाएँ बन जाती हैं।

इस प्रकार सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ीं। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु उसे स्थान की आवश्यकता पड़ी। उसने धीरे-धीरे नदियों के किनारे जंगल काटकर नगर बसाना आरम्भ किया और इस प्रकार उसने क्रमशः प्रकृति पर विजय प्राप्त की और परोक्ष रूप में अपरदन की गति बढ़ाने में सहायता पहुँचायी। उपरि-

1. Exposed

2. Soil Erosion

२. मिट्टी छीजन की समस्या—महाराज नारायण मेहरोत्रा, 'आज' वाराणसी, २५ अक्टूबर, १९५३।

लिखित विवरण से स्पष्ट है कि मानवीय तथा भौगोलिक दोनों ही कारणों से अपरदन की गति आधुनिक काल में अधिक तीव्र हो गयी है।

हमारी गणनाएँ वर्तमान काल की नाप-तोल पर आधारित हैं। अतः तीसरी मान्यता के आधार पर हमें सागर की आयु में संशोधन करना होगा। भूतकाल में अपरदन की गति कम थी, अतः सागर की आयु परिकलित आयु से अधिक है। कुछ विद्वान् परिकलित आयु का पाँच गुना करना उचित समझते हैं तो कुछ-एक परिकलित आयु को पन्द्रह गुना कर देने के पक्ष में हैं।

उपर्युक्त मान्यताओं का विवेचन करने के अनन्तर एक और तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सागर में जमा होने वाले सोडियम की मात्रा लगभग २ प्रतिशत है। सागर को सोडियम की प्राप्ति आग्नेय (इसमें कायांतरित शिलाएँ भी सम्मिलित हैं)। और जलज शिलाओं के अपरदन से होती है। सम्पूर्ण नद-क्षेत्रों के, जिनके अपरदन से नदियों को सोडियम आदि लवण प्राप्त होते हैं, एक चौथाई में आग्नेय-शिलाएँ हैं तथा शेष तीन-चौथाई भाग में जलज शिलाएँ। आग्नेय शिलाओं में सोडियम की औसत मात्रा २.८५ प्रतिशत है तथा जलज शिलाओं में सोडियम की औसत मात्रा ०.८१ प्रतिशत है। अतः सम्पूर्ण नद-क्षेत्र की शिलाओं में सोडियम की औसत मात्रा १.३ प्रतिशत है। यदि अपरदन के परिणामस्वरूप यह सारे का सारा सोडियम भी सागर में जमा हो जाय, तो भी हमें सागर में विद्यमान सोडियम की अधिकता को समझना होगा।

नद-क्षेत्रों के शिला-योग, जिनके आधार पर गणनाएँ की गयी हैं, सर्वथा मानने योग्य नहीं हैं। वर्तमान काल में नद-क्षेत्रों में एक-चौथाई आग्नेय शिलाएँ एवं तीन-चौथाई जलज शिलाएँ हैं। पर भूतकाल में भी ऐसा ही था—यह मानने को हम तत्पर नहीं। भौमिक काल के आरम्भ से अब तक पृथ्वी पर कई बार उथल-पुथल हो चुकी है, जल-खण्डों और स्थल-खण्डों में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं। विशाल हिमालय इसका साक्षी

है। आज जिस भाग में विश्व की सबसे ऊँची पर्वतमालाएँ हैं, वहाँ दीर्घकाल-पूर्व सागर था। अतः आग्नेय और जलज शिलाओं का वितरण सदा समान नहीं रहा है। प्राचीन काल में ग्रेनिट शिलाएँ^१ आज की अपेक्षा संभवतः कम थीं। आधुनिक अध्ययन और गवेषणाओं के फलस्वरूप ज्ञात हुआ है कि विशाल मात्रा में जलज और कायान्तरित शिलाओं में पृथ्वी के अन्तर्भाग से आने वाले घोलों के फलस्वरूप परिवर्तन हुआ है और यह जलज तथा कायान्तरित शिलाएँ ग्रेनिट के समान शिलाओं में परिवर्तित हो गयी हैं। ग्रेनिटीकरण^२ आज भी भौमिकी के क्षेत्र में एक मनोरंजक व विवादास्पद प्रश्न है।

आग्नेय शिलाएँ ही प्राथमिक शिलाएँ हैं। यदि हम यह मान लें कि सभी स्तर आग्नेय शिलाओं के अपक्षरण^३ और अनाच्छादन^४ से बने हैं, तो इस आधार पर शेल,^५ बलुई पत्थर^६ और चूना पत्थर^७ की प्रतिशत मात्रा नीचे तालिका में दी गयी है —

कार्यकर्ता	शेल	बलुई-पत्थर	चूना-पत्थर
सी०के० लाइट और डब्लू०जे० मीड } एफ० डब्लू० क्लार्क } ए० होल्मस	८७ ८० ७०	८ १५ १६	५ ५ १४

पर यह परिणाम वास्तविक नाप से भिन्न है। उत्तरी अमेरिका तथा

1. Granitic rocks	2. Granitisation
3. Weathering	4. Denudation
5. Shales	6. Sand Stone
7. Lime Stone	8. तालिकाएं Age of the

अन्य कुछ भागों में जो नाप की गयी है, उसके आधार पर निम्नोक्त परिणाम निकले हैं—

कार्यकर्ता	शैल	बलुई-पत्थर	चूना-पत्थर
सी०के० लाइथ और डब्लू० जे० मीड } जी० शुर्कर्ट	४७.५ ४४	३२.५ ३७	२० १९

उपरिलिखत दोनों तालिकाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि पृथ्वी की सतह पर की शिलाओं का आधुनिक वितरण प्राचीन काल में व्याप्त शिलाओं के वितरण का सही द्योतक नहीं है।

क्लार्क की गणना का आधार आग्नेय शिलाओं में विद्यमान सोडियम की मात्रा है। आपके अनुसार सागर को ८४,३००,००० घनमील क्षेत्र में व्याप्त आग्नेय शिलाओं के विघटन से सोडियम प्राप्त हुआ है। आग्नेय शिलाओं में सोडियम की मात्रा लगभग २.८ प्रतिशत है। पृथ्वी पर व्याप्त आग्नेय शिलाओं में प्रमुख हैं—ग्रेनिट और बेसाल्ट। इनमें सोडियम की मात्रा क्रमागत २.४१ और २.३१ है। अतः क्लार्क की गणना में सोडियम की मात्रा को लगभग ठीक माना जा सकता है।

यदि यह भी मान लिया जाय कि सागर का सम्पूर्ण सोडियम ८४,३००,००० घनमील क्षेत्र में व्याप्त आग्नेय शिलाओं के विघटन से प्राप्त हुआ है, तो भी हमारी समस्या का पूर्ण समाधान नहीं होता। इन शिलाओं में क्लोरीन की मात्रा ०.५ प्रतिशत है। इस आधार पर उपर्युक्त क्षेत्र की आग्नेय शिलाओं से अधिक से अधिक २.८२×१०^{१४} टन क्लोरीन सागर को प्राप्त होगा। किन्तु सागर में क्लोरीन की मात्रा २.९२×१०^{१६} टन है, अतः हम कह सकते हैं कि सागर में विद्यमान क्लोरीन का केवल १ प्रतिशत ही इन शिलाओं से प्राप्त होता है। क्लोरीन की अधिक मात्रा की विद्यमानता इस ओर इंगित करती है कि कदाचित् ८४,३००,००० घनमील से अधिक व्यापक क्षेत्र की शिलाओं का अपरदन हुआ है और इससे प्राप्त क्लोरीन तो सागर में जमा होता रहा, पर सोडियम का कुछ भाग

लुप्त हो गया। अन्यथा हमें यह मानना होगा कि सागर में आरम्भ से ही कुछ क्लोरीन की मात्रा विद्यमान थी। यह भी संभव है कि भौमिक काल में ज्वालामुखी द्वारा क्लोरीन की मात्रा सागर को प्राप्त हुई। यह हम जानते भी हैं कि ज्वालामुखी उभाड़ से जो पदार्थ निकलते हैं, उनमें हाइड्रोक्लोरिक, अमोनियम क्लोराइड आदि अन्य क्लोराइड भी हैं।

किन्तु क्या ८४,३००,००० घनमील से अधिक क्षेत्र की आग्नेय शिलाओं का विघटन संभव है। ८४,३००,००० घनमील आग्नेय शिलाओं के विघटन से बनी जलज शिलाओं की मात्रा १०८,०००,००० घनमील होगी। यदि समस्त महाद्वीपीय क्षेत्रों में जिनका क्षेत्रफल लगभग ६६,०००,००० वर्गमील है, इन जलज शिलाओं को फैलाया जाय तो स्थल पर लगभग १½ मील मोटी तह जम जायगी। पर क्षेत्र-भौमिकी^१ के अध्ययन से हमें विदित है कि जलज शिलाओं की तह असतत^२ है और अपेक्षाकृत पतली है, अर्थात् १¼ मील से कम है। वानहाइस^३ के अनुसार जल शिलाओं की तह अधिक से अधिक सवा मील तक हो सकती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ८४,३००,००० घनमील से अधिक व्यापक क्षेत्र की आग्नेय शिलाओं का अपरदन नहीं हुआ है, अन्यथा इस विघटित पदार्थ का सन्तुलन-पत्र कैसे तैयार किया जायगा।

उपरिलिखित अध्ययन से विदित है कि सागर की आयु ज्ञात करने की विधि हमें उसकी न्यूनतम आयु ही बतलाती है। सागर की अधिकतम आयु कितनी होगी, इस विषय में कुछ कहना कठिन है। अभी हाल ही में स्पेंसर और मुराटा (१९३८)^४ ने सभी त्रुटियों और असुविधाओं को

1. Field Geology 2. Discontinuous 3. Van Hise

4. Spencer, A. C. & Murata, K. J. : Oceans half billion years' old Science News Letter, Washington, January 11, 1938 ('Dating the Past' by F. E. Zeuner, 1952 P. 316 से उद्धृत)

ध्यान में रखकर पुनः सोडियम विधि से सागर की आयु ज्ञात की। उनके विचार में सागर की आयु ५० करोड़ से ७० करोड़ वर्ष है। कनवे^१ (१९४३) ने सागर का रचना काल कम से कम ७० से ८० करोड़ वर्ष तथा अधिक से अधिक २३५ करोड़ वर्ष माना है। यह अन्तिम गणना रेडियो-सक्रिय विधि से ज्ञात आय के निकट है।

1. Conway, E. J. (1943) : The Chemical Evolution of the Ocean—Proc. R. Irish Acad. 48, pp. 161-212 (Dating the past 1952- p. 316 से उद्धृत)

अध्याय ६

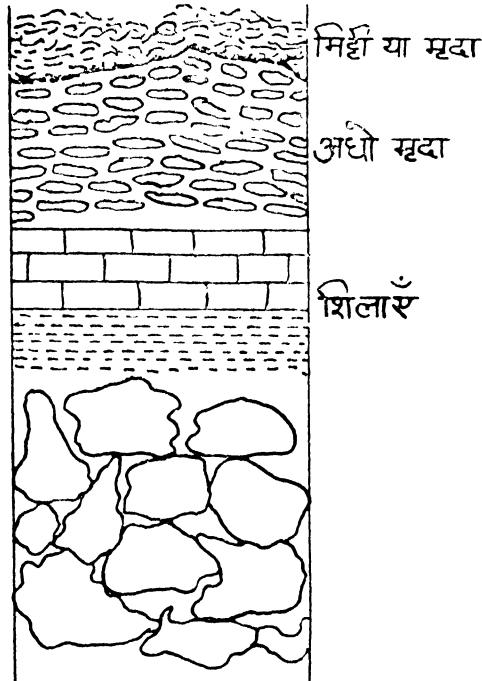
शैल तथा पुराजीव प्रमाण

“एक बालूकण या शिला का एक टुकड़ा निर्जीव द्रव्य का एक अंश नहीं है, वरन् पृथ्वी के इतिहास का एक शब्द या पद है जो हमें उन सब प्राकृतिक क्रियाओं का बोध कराता है, जिनके परिणामस्वरूप उसकी रचना हुई। इसी प्रकार एक पुराजीव केवल एक भूत जीव का अवशेष नहीं है, प्रत्युत् एक महत्त्वपूर्ण प्रलेख है, जिसका संरक्षण भौमिक इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है।”

—डी० एन० वाडिया; जियालौजी आफ इण्डिया, १९४४, पृ० ४९।

भूपटल शिलाओं का बना हुआ है। पर्वतों, घाटियों एवं मरुस्थलीय प्रदेशों में बहुधा हमें शिलाओं का नग्न रूप देखने को मिलता है। अन्य स्थानों पर वनस्पतियाँ तथा मिट्टी का आवरण शिलाओं को ढके हुए है। मिट्टी का आवरण कहीं-कहीं इतना पतला है कि एक-दो फुट खोदने के बाद ही शिलाएँ दिखाई पड़ने लगती हैं, किन्तु कहीं-कहीं यह आवरण इतना गहरा है कि सहस्रों फुट नीचे जाने पर भी शिलाएँ दृष्टिगोचर नहीं होतीं। गंगा-यमुना के मैदान में मिट्टी के स्तर लगभग ६ सहस्र फुट मोटे हैं और कई जगहों पर तो यह मोटाई दस सहस्र फुट से भी अधिक हो गयी है। पृथ्वी के आरम्भ में कदाचित् मिट्टी का अस्तित्व नहीं था, जल और शिलाओं का ही प्राधान्य था। तदुपरान्त वायुमण्डल की शक्तियों—ओला, पाला वर्षा, तापमान-परिवर्तन आदि के प्रभावस्वरूप शिलाएँ शिथिल पड़ती गयीं, धीरे-धीरे उनके अंश पृथक् होने लगे। पहले शिलाओं के शिला-

खण्ड हुए। शिलाखण्डों में आपस में रगड़ हुई और फिर छोटे-छोटे टुकड़े हो गये। यहाँ छोटे-छोटे टुकड़े भी परस्पर टकराये तथा वायुमण्डल की शक्तियों के प्रहारस्वरूप बालूकणों में परिणत हो गये। वायु के प्रभाववश बालूकण भी टूट गये, उनका चूरा हो गया और अन्ततः मिट्टी बन गयी। इस



चित्र १०—भूपटल का उदग्र कटाव

प्रकार मिट्टी की जननी शिलाएँ ही हैं। हमें जो भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टियाँ देखने को मिलती हैं वे विभिन्न योग की शिलाओं के अपरदन से बनी हैं।

शिलाएँ मुख्यतः तीन प्रकार की हैं—आग्नेय,^१ जलज^२ (या तलछटी)

और कायान्तरित।^१ आग्नेय शिलाएँ अग्नि की क्रिया से निर्मित होती हैं। पृथ्वी के अन्तर्भाग में, जैसा कि तीसरे अध्याय में बताया जा चुका है, उच्च तापमान है। उच्च तापमान पर अधिकतर वस्तुएँ अपने द्रव रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। अन्तर्भाग में विद्यमान इस तरल पाषाणीय पदार्थ को मैग्मा^२ कहते हैं। मैग्मा के जमने से ही आग्नेय शिलाएँ बनती हैं।

तरल पाषाणीय पदार्थ—मैग्मा के जमने के स्थान के आधार पर ही आग्नेय शिलाओं का वर्गीकरण किया गया है। ये मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैं—

१—ज्वालामुखीय,^३

२—अर्धपातालीय,^४

३—पातालीय।^५

ज्वालामुखी शब्द से प्रायः सभी व्यक्ति परिचित हैं। ज्वालामुखी-उभार में पृथ्वी के अन्तर्भाग-स्थित मैग्मा दरारों तथा संछिद्रों के द्वारा ऊपर आकर धरातल पर बहने लगता है। धरातल पर आने पर इसे लावा^६ कहते हैं। लावा के ठण्डा होकर जमने पर जो शिलाएँ बनती हैं उन्हें ज्वालामुखीय शिलाएँ कहते हैं। बेसाल्ट शिलाएँ^७ इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

मैग्मा सर्वदा धरातल तक आने में सफल नहीं होता। बहुधा वह धरातल से नीचे और पाताल की गहराई से ऊपर जमा हो जाता है। इन शिलाओं को अर्धपातालीय शिला के नाम से अभिहित करते हैं। अधिकांशतः ये शिलाएँ डाइक^८ (या भित्ति) और पत्रशिला^९ के रूप में पायी जाती हैं। डोलराइट^{१०} अर्धपातालीय शिलाओं का सुन्दर उदाहरण है।

1. Metamorphic

2. Magma

3. Volcanic

4. Hypabyssal

5. Plutonic

6. Lava

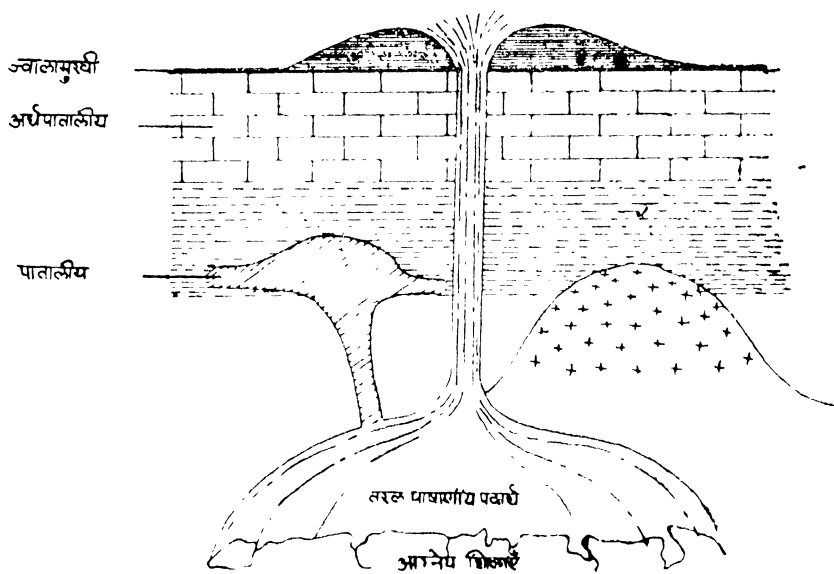
7. Basalt

8. Dyke

9. Sill

10. Dolerite

जब मैग्मा पाताल की गहराइयों में ही स्थित होकर धीरे-धीरे ठण्डा होने लगता है, तब पातालीय शिलाओं का निर्माण होता है। इन शिलाओं की रचना में अधिक समय लगता है। मैग्मा की गर्मी क्रमशः कम होती जाती है। अतः मैग्मा के घोल से जो स्फाट व कण बनते हैं वे ज्वालामुखीय व अर्धपातालीय शिलाओं की अपेक्षा बड़े होते हैं। शिलाओं के स्फाट या कणों के आकार को देखकर ही यह बताया जा सकता है कि अमुक शिला ज्वालामुखीय है या अर्धपातालीय अथवा पातालीय उद्गम की। ज्वालामुखीय बेसाल्ट के कण अति सूक्ष्म, अर्धपातालीय डोलराइट के कण मध्यम आकार के तथा पातालीय शिला गैब्रो के कण बड़े आकार के होते हैं। पातालीय शिलाओं में ग्रेनिट बहुत व्यापक है।

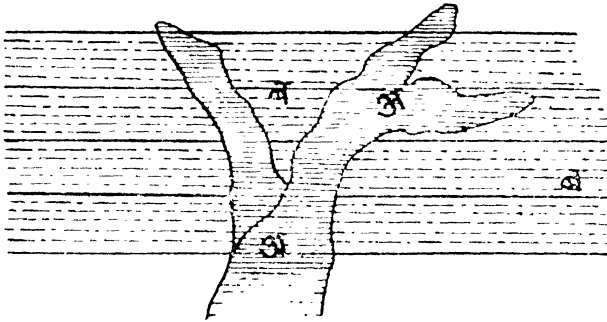


चित्र ११—आग्नेय शिलाएँ

उपर्युक्त दोनों प्रकार की शिलाएँ चित्र ११ में दिखायी गयी हैं।

ये शिलाएँ क्षेत्र में बहुत-से रूपों में उपलब्ध होती हैं। अपरदन के परिणामस्वरूप इनमें अनेक प्रकार की रचनाएँ भी देखने को मिलती हैं। इनके आकार भी विभिन्न होते हैं। कुछ डाइक कई मील लम्बे फैले देखे गये हैं। पातालीय शिलाएँ तो इस दृष्टि से बहुत ही विशाल हैं। ये सैकड़ों वर्ग मील क्षेत्रफल में फैली हुई पायी गयी हैं।

वायुमण्डल की शक्तियों के अपरदन के फलस्वरूप धरती में छिपी हुई अर्धपातालीय और पातालीय शिलाएँ भी धरातल पर विगोपित^१ (अनावृत) हो जाती हैं। बहुत सी पातालीय शिलाएँ ऐसी हैं जिनके आधार का पता अभी तक नहीं चल पाया है। जबलपुर के निकट मदन महल की चोटी से आग्नेय शिलाओं का अत्यन्त भव्य दृश्य दीख पड़ता है। जिन लोगों को जबलपुर से भेड़ाघाट संगमरमर की चट्टानों तथा धूआँधार-प्रपात देखने के लिए जाने का अवसर मिला है, उन्होंने मार्ग में चारों ओर बड़े-बड़े काले पत्थरों को पड़े हुए देखा होगा। ये आग्नेय शिला ग्रेनित के ही पत्थर हैं। ग्रेनित शिलाएँ रंगहीन क्वार्ट्ज^२ तथा हलके रंग के खनिज फेल्सपार^३, अभ्रक



चित्र १२—शिलाएँ एक दूसरी को काटती हुई

आदि की बनी होती हैं, पर अपरदन के कारण परिवर्तन होते रहने से शिलाओं का बाहरी आवरण काला दिखाई पड़ता है।

क्षेत्र में ये शिलाएँ एक-दूसरी को काटती हुई, या अन्य शिलाओं, जैसे जलज और कायान्तरित शिलाओं को काटती हुई दिखाई पड़ती हैं। इनका अध्ययन कर शिलाओं की अपेक्षाकृत आयु जानी जा सकती है। यदि किसी क्षेत्र में अ और ब दो प्रकार की शिलाएँ हैं और 'अ' शिलाएँ 'ब' को काटती हुई दिखाई पड़ती हैं, तो 'अ' शिलाओं की आयु 'ब' शिलाओं की अपेक्षा कम है। पहले 'ब' शिलाएँ बनीं, बाद में 'अ' शिलाएँ, तभी 'अ' शिलाओं द्वारा पूर्वनिर्मित 'ब' शिलाओं का काटा जाना संभव है। (देखिए चित्र संख्या १२)।

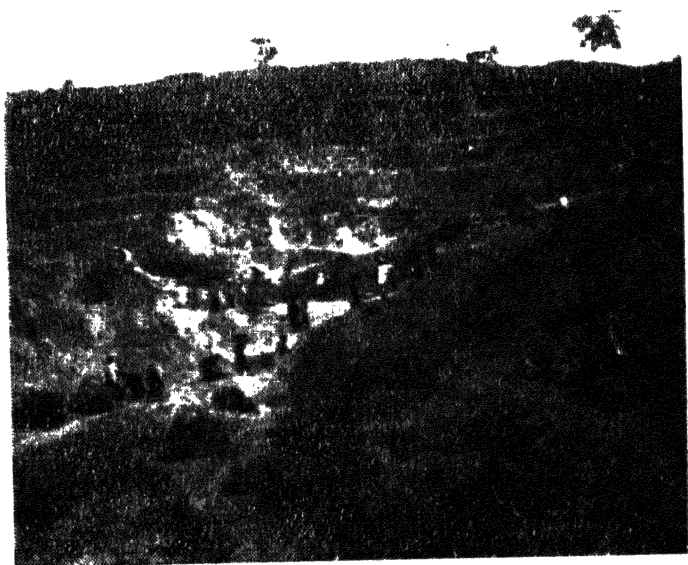
कभी-कभी जलज और कायान्तरित शिलाओं के अन्दर आग्नेय शिलाओं के टुकड़े पाये जाते हैं। इन्हें अन्तर्वस्तु^१ कहते हैं। जिस शिला में अन्तर्वस्तु पायी जाती है, उसकी आयु अन्तर्वस्तु की अपेक्षा कम होती है। अतः यदि हमें अन्तर्वस्तु की आयु ज्ञात हो तो हम अन्तर्वस्तु की पोषक शिला^२ की आयु भी जान सकते हैं।

आग्नेय शिलाओं की आयु जानने की दूसरी विधि उनमें विद्यमान रेडियो-सक्रिय खनिजों के अध्ययन पर आधृत है। यह आधुनिकतम विधि अति महत्त्वपूर्ण है। इसका विस्तृत वर्णन आगे के अध्यायों में किया जायगा।

दूसरे प्रकार की प्रमुख शिलाएँ हैं—जलज या तलछटी। इनका निर्माण साधारणतः किसी भी जलकाय में होता है। पूर्वनिर्मित आग्नेय शिलाओं का चूरचूर वायु तथा नदियों द्वारा बहाकर ले जाया जाता है और सागर, झील या अन्य किसी भी जलकाय में जमा कर दिया जाता है। सहस्रों वर्ष तक यह क्रम चालू रहता है। सागर में इस प्रकार तहें जमती रहती हैं। ऊपरी तहों या स्तरों के बोझ से नीचे की तहें सुगठित होती जाती हैं। कालान्तर में सैकड़ों फुट मोटी तह सागर में जम जाती है। पृथ्वी के अन्तर्भाग में होने वाली उथल-पुथल के परिणाम स्वरूप स्थलीय प्रदेश जलमग्न हो

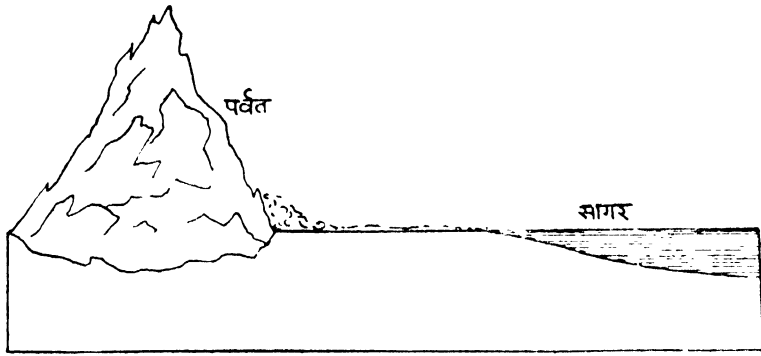


चित्र १२ क—मदन महल से आग्नेय शिलाओं का
भव्य दृश्य (पृ० ९७)



चित्र १२ ख—जलज शिलाएँ (पृ० १००)

जाते हैं और जलीय भाग ऊपर उठ आते हैं। इस प्रकार सागर की गहराइयों में बनी शिलाएँ धरातल पर विगोपित (अनावृत) हो जाती हैं। यही



चित्र १३—जलज या तलछटी शिलाओं का निर्माण

जलज शिलाएँ हैं। बलुआ पत्थर, चूना पत्थर, शेल आदि जलज शिलाओं के ही उदाहरण हैं।

आग्नेय या जलज शिलाएँ उच्च दाब तथा ताप के प्रभाव में अपना मूल स्वरूप खो देती हैं। उनकी काया में परिवर्तन हो जाता है। लम्बे चपटे खनिज दाब के लम्ब की दिशा में फैल जाते हैं। इनमें कभी-कभी नये खनिज भी निर्मित हो जाते हैं। इस भाँति बनी हुई शिलाओं को कायान्तरित शिलाएँ कहते हैं। जलज और कायान्तरित शिलाएँ मूलतः आग्नेय शिलाओं पर ही आश्रित हैं। अतः आग्नेय शिलाओं को प्राथमिक^१ तथा जलज और कायान्तरित शिलाओं को द्वितीयक^२ शिलाएँ भी कहते हैं।

भौमिक काल नापने की दृष्टि से जलज शिलाएँ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। जलज शिलाओं के स्तर एक पुस्तक के पृष्ठ के समान हैं। जैसे एक पुस्तक के पन्ने उलटकर ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, वैसे ही विभिन्न स्तरों

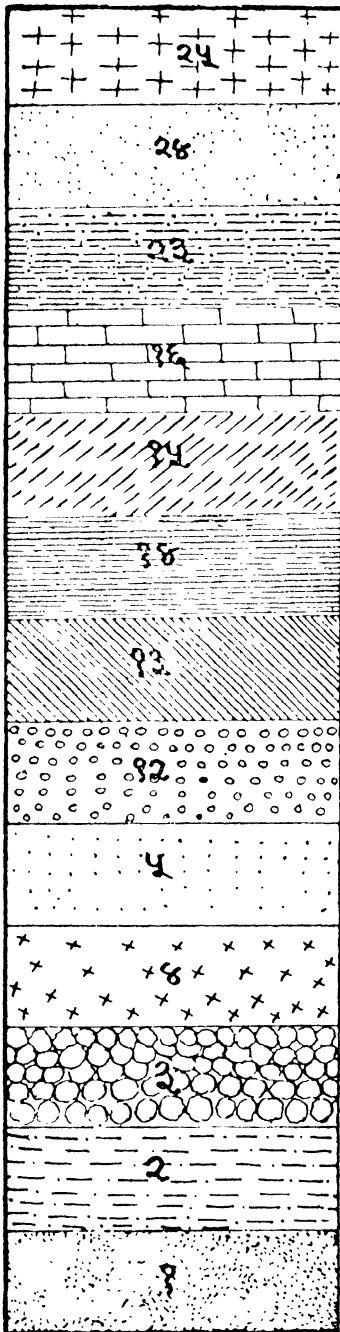
के अध्ययन से पृथ्वी के इतिहास का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यदि हम पृथ्वी के आरम्भ से अब तक बने स्तरों की मोटाई ज्ञात कर लें तथा उन स्तरों के जमा होने की गति-विधि जान लें तो हम इन शिलाओं की आयु का अनुमान लगा सकते हैं।

शैलस्तरों की मोटाई

पृथ्वी के आरम्भ से अब तक जमा हुए शैलस्तरों या तलछटों की सम्पूर्ण मोटाई का बोध होना सरल कार्य नहीं है। पृथ्वी पर किसी एक स्थान पर ही आरम्भ से अद्यपर्यन्त निक्षेपण क्रिया नहीं हो रही है। अनेक प्रमाणों से विदित हुआ है कि पृथ्वी स्थिर नहीं है। उसमें उथल-पुथल होती रहती है। स्थल के उत्थान और अवतलन के बहुत-से प्रत्यक्ष प्रमाण हमें देखने को मिलते हैं। उच्च बालूतट स्थल के उत्थान के सुन्दर साक्षी हैं। ये प्रायः विश्व के सभी भागों में पाये जाते हैं। इन बालूतटों में सागरीय जीव-जन्तुओं की ठठरी व कवच आदि प्राप्त हुए हैं, जिससे स्पष्ट है कि ये भाग किसी समय समुद्र के भीतर थे, पर अब किन्हीं कारणों से सागर से ऊपर उठ गये हैं। हमारे देश में बम्बई के निकट निमग्न वन है। यह वन-भूमि पहले जल-तल से ऊपर थी, तभी इस भूमि पर वृक्ष उगे, पर कुछ काल पूर्व यह भाग जल के नीचे चला गया और अब यह वन जल के भीतर ही विद्यमान है। सन् १९१९ में कच्छ के उत्तरी भाग में कहीं-कहीं धरती जल से ऊपर उठ गयी थी और एक स्थान पर लगभग २००० वर्गमील क्षेत्र दस पन्द्रह फुट नीचे धँस गया था।

इस प्रकार पृथ्वी के स्थल और जलमण्डलों में परिवर्तन होता रहा

1. Thickness of Sediments	2. Elevation
3. Subsidence	4. Raised Beaches
5. Submerged forests	



है। अतः हम किसी एक विशेष स्थान पर पृथ्वी के आरम्भ से अब तक बनी जलज शिलाओं का अध्ययन नहीं कर सकते।

मान लीजिए एक स्थान पर हमें निम्नदर्शित शिलाक्रम मिलता है। इसका अर्थ है कि उस स्थान पर सबसे पहले जल की गोद में १, २, ३, ४, ५ स्तर जमा हुए। संभव है ६, ७ भी वहाँ पर जमा हुए हों। निक्षेपण क्रिया समाप्त होने के बाद उस स्थान का उत्थान हुआ, परिणामस्वरूप १ से ७ तक के स्तर धरती पर प्रकट हुए। इनमें से ऊपर वाले स्तर ७ और ६ वायुमण्डल की शक्तियों के प्रभाव में अपरदित हुए और उनका कोई नाम भी शेष न रहा।

इधर जब इस क्षेत्र की शिलाओं का अपरदन हो रहा था, दूसरे क्षेत्र में निक्षेपण क्रिया हो रही थी, जिसके फलस्वरूप वहाँ ८, ९, १०, ११ स्तर जमा हुए। अतः चित्र में दर्शाये गये कल्पित क्षेत्र में ८ से ११ तक के

चित्र १४—एक स्थान पर प्राप्त शिलाक्रम

स्तर निक्षेपित न हो पाये। कुछ काल के अन्तर यह क्षेत्र पुनः जलप्लावित हुआ। नदियों ने फिर से शिलाओं का चूरा लाकर निक्षेपित करना आरम्भ किया। इस प्रकार १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २० स्तर जमा हुए। पृथ्वीके अन्तर्भाग में होने वाली उथल-पुथल के कारण यह भाग फिर उत्थापित हुआ। वर्षा, पाला, वायु आदि ने इस उन्नत भाग को कार्य-क्षेत्र बनाया। शिलाओं का घिसना आरंभ हुआ। तत्फलस्वरूप १७ से २० तक के स्तर विलकुल घिस गये, उनका नामोनिशान भी न रहा। (२१, २२ स्तर इस क्षेत्र में निक्षेपित नहीं हुए।)

जैसा कि उल्लेख हो चुका है, पृथ्वी में उत्थान और अवतलन की क्रिया होती रहती है। यह क्षेत्र अवतलित हुआ और इसमें २३ से २६ तक स्तर जमा हुए। एक बार फिर यह क्षेत्र उन्नत हुआ। इस क्षेत्र में निक्षेपित शिलाएँ प्रकट हुईं। २६वाँ स्तर अपरदित हो गया। केवल २५ तक स्तर ही वर्तमान क्षेत्र में दृष्टिगोचर होते हैं।

उपरिर्वाणित क्षेत्र में काम करने वाले भौमिकीज्ञ को १ से ५, १२ से १६ तथा २३ से २५ तक स्तर मिलेंगे। ६ से ११ तथा १७ से २२ तक स्तर इस क्षेत्र में या तो प्रकट नहीं हुए हैं या अपरदित हो गये हैं। इस प्रकार पृथ्वी के इतिहास की पुस्तक के पृष्ठ क्रमबद्ध संकलित नहीं हैं।

पृथ्वी का शैल इतिहास जानने के लिए हमें पृथ्वी के आँगन में इधर-उधर खोज करनी होगी, पृथ्वी के इतिहास के बिखरे पन्नों को समेटना होगा, तत्पश्चात् उन्हें क्रम से व्यवस्थित करना होगा, तभी हम पृथ्वी का शैल चित्र तैयार कर सकेंगे।

जलज शिलाओं का क्रम तैयार करने में हमें बहुत-सी असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। ये शिलाएँ तह पर तह जमने से बनती हैं, अतः यदि हमें किसी क्षेत्र में शिलाओं के कई स्तर दिखाई देते हैं, तो सबसे नीचे वाला स्तर सबसे पुराना, अर्थात् सबसे पहले बना है। उसके ऊपर वाला उससे बाद में तथा सबसे ऊपर वाला सबसे बाद में। किन्तु अधिकतर भागों में यह क्रम भी छिन्न-भिन्न हो गया है। पृथ्वी के अन्तर्भाग में होने वाली उथल-

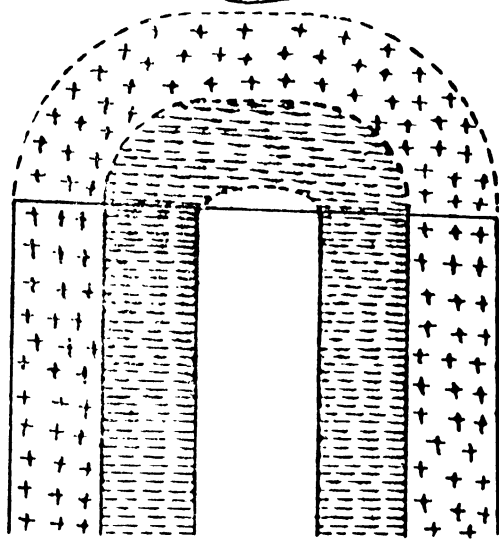
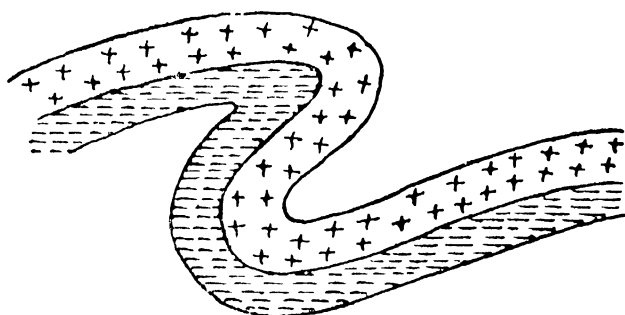
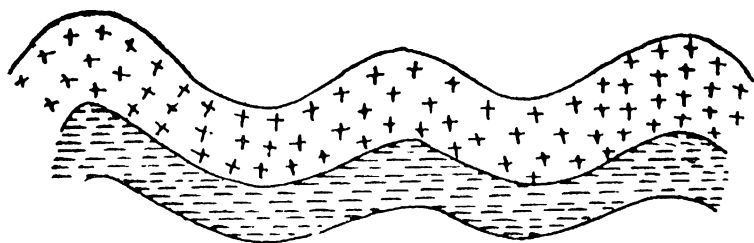
पृथल के परिणामस्वरूप, विशेषकर क्षैतिजीय^१ और उदग्र^२ बलों के प्रभाव में शिलास्तरों का क्रम बिगड़ जाता है। उनमें बहुत-सी सिकुड़नें पड़ जाती हैं। कभी-कभी क्षैतिजीय बल इतने उग्र होते हैं कि शैलस्तरों का एक भाग दूसरे भाग से सैकड़ों मील दूर चला जाता है। इसे परिवलन^३ कहते हैं। परिवलित भागों को शैलक्रम में नियत करने में बड़ी असुविधा होती है। इन्हें शैलक्रम में ठीक स्थान पर रखने के लिए सुदूर स्थित परिवलित भाग का ज्ञान आवश्यक है। भ्रंशों^४ के प्रभाव में भी शैलक्रम भंग हो जाता है। चित्र १५ तथा १६ में वलनों^५ और भ्रंशों का शैलस्तरों पर प्रभाव दिखाया गया है।

भ्रंश के फलस्वरूप शिलास्तर का एक भाग अपेक्षाकृत ऊपर या नीचे चला जाता है। भूशास्त्री को क्षेत्र में इन्हीं कारणों से शैलक्रम ढूँढ़ निकालने में बड़ी कठिनाई होती है।

इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी विद्वानों ने पृथ्वी के आरम्भ से अब तक शैलक्रम स्थापित किया है। इस क्रम-निर्माण में शिलास्तरों में विद्यमान प्रस्तराभूत जीव-अवशेषों-पुराजीवों^६ के अध्ययन से बड़ी सहायता मिली है। पुराजीवों का विस्तृत अध्ययन भौमिकी की एक शाखा पुराजै-विकी^७ के अन्तर्गत आता है।

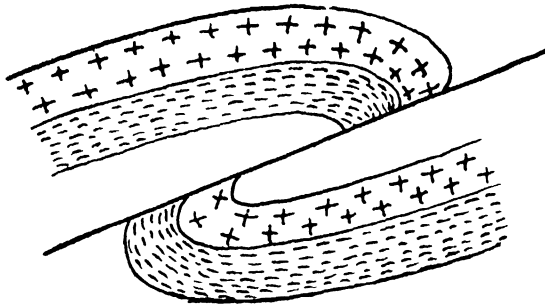
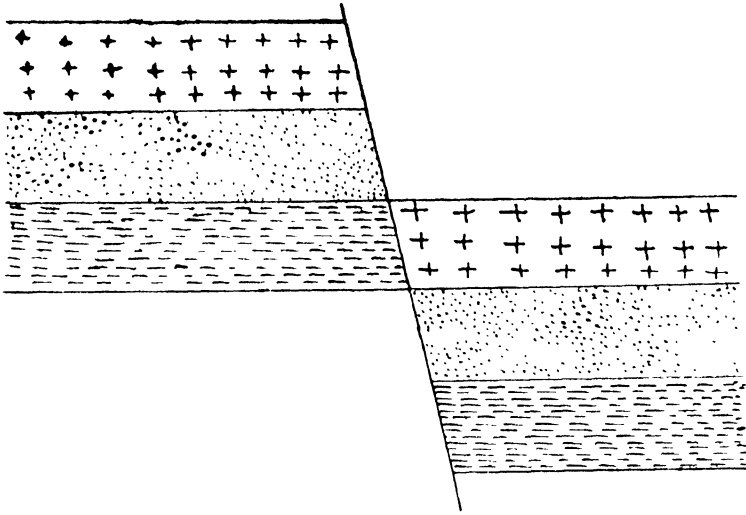
पुराजीवों की कहानी भी बड़ी रोचक है। आज की तरह प्राचीन काल में भी जीव-जन्तु थे। पर यह कहना कठिन है कि जब से पृथ्वी का आरम्भ हुआ तभी से पृथ्वी पर जीव-जन्तुओं का आगमन हुआ। यह एक विवाद का प्रश्न है कि पृथ्वी पर प्रथम जीव कहाँ से और कैसे आया। कुछ लोगों के विचार में पृथ्वी की रचना के बाद किसी दूसरे ग्रह से जीव का

1. Horizontal	2. Vertical	3. Recumbent fold
4. Faults	5. Folds	6. Fossils
7. Paleontology		



चित्र १५—शिलाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार के वलन

आगमन हुआ। किन्तु बहुत-से विद्वान् इससे असहमत हैं। उनके दृष्टि-कोण में पृथ्वी के ठण्डी होने के उपरान्त धीरे-धीरे जीव का विकास हुआ।



चित्र १६—शिलाओं पर भ्रंशों का प्रभाव

जीवन के सम्बन्ध में विज्ञान के क्षेत्र में दो वाद दीर्घकाल से प्रचलित हैं। एक वर्ग की मान्यता है कि जीव की उत्पत्ति निर्जीव से है, जबकि दूसरे

वर्ग के अनुयायी कहते हैं कि निर्जीव से जीव की कल्पना निर्मूल है।^१ जीव से ही जीव की उत्पत्ति संभव है।

प्रथम वर्ग के प्रवर्तकों ने अपने तर्क की पुष्टि के हेतु रोटी का उदाहरण लिया। उन्होंने बताया कि यदि रोटी को तीन-चार दिन ऐसे ही छोड़ दिया जाय तो उसमें कीड़े पड़ जाते हैं। इसलिए यह प्रमाणित होता है कि निर्जीव रोटी में जीव कीड़ों का जन्म हुआ। अतः निर्जीव से जीव की उत्पत्ति संभाव्य है। दलदल में वनस्पतियों का उगना भी इसी तथ्य का परिचायक है।

विरोधी वर्ग को यह तर्क स्वीकार्य न हुआ। इटली के वैज्ञानिक रेडी ने मांस के कुछ टुकड़ों को लेकर महीन जालियों से ढक कर सुरक्षा से रखा और यह प्रमाणित किया कि यदि वस्तुओं, रोटी, मांस के टुकड़ों आदि को सुरक्षा से रखा जाय तो उनमें कीड़े उत्पन्न नहीं होते। कीड़े तो वायुमंडल की देन हैं। वायुमण्डल के सूक्ष्म जीव रोटी में प्रवेश कर गये थे। उपयुक्त वातावरण तथा पर्यावरण^२ मिलने पर ये जीव विकसित हो जाते हैं। इसी प्रकार दलदल में भी वनस्पतियाँ स्वतः ही नहीं उग पड़तीं, उनमें पहले से ही बीज रहते हैं। बरसात के दिनों में उपयुक्त वातावरण मिलने पर बीज के अंकुर फूट निकलते हैं और हरियाली दिखाई पड़ने लगती है।

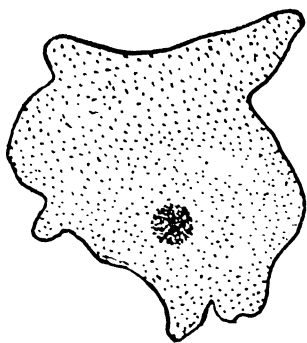
यह विवाद बिल्कुल इसी प्रकार है जैसे कि यह निर्णय कर पाना कि पेड़ पहले उत्पन्न हुआ या बीज पहले आया। एक की सत्ता दूसरे पर आधारित है। अतः जीव की उत्पत्ति के विस्तार में न जाकर हम आज की वैज्ञानिक मान्यता का ही संक्षेप में विवेचन करते हैं। अथक परिश्रम के फल-स्वरूप वैज्ञानिक जीवन के मूलतत्त्वों को जानने में सफल हुए हैं। जीवन-

१. 'आज' वाराणसी, २१ जुलाई १९५७, महाराज नारायण मेहरोत्रा।

2. Circumstances and environment

मूल के योग में जल का प्रमुख हाथ है। इसमें जल की मात्रा ७० से ९० प्रतिशत तक होती है। जीवन-मूल के मुख्य तत्त्व हैं—कार्बन, आक्सिजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन। ये सभी पदार्थ हमें प्रकृति से स्वतः ही प्राप्त हैं। रासायनिक संघटन के अतिरिक्त जीवन-मूल के सम्बन्ध में हम अधिक नहीं जान पाये हैं। इन तत्त्वों की सहायता से वैज्ञानिक जीवन-मूल की रचना नहीं कर पाये हैं। रासायनिक संघटन के अतिरिक्त जो एक शक्ति जीवन-मूल की संचालक है, विश्लेषण के समय उसका लोप हो जाता है। उसका पता अभी तक नहीं चल पाया। इस आधार पर यह संभावना उचित ही प्रतीत होती है कि प्रथम जैविक पदार्थ की रचना पृथ्वी के उपयुक्त पर्यावरण में कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सिजन आदि के मेल से हुई। इस रचना के लिए आवश्यक ऊर्जा कदाचित् सौर विकिरण, प्राकृतिक विद्युत् तथा रेडियो-सक्रिय पदार्थों से उपलब्ध हुई।

पृथ्वी की रचना के बाद वह उपयुक्त पर्यावरण कब हुआ, कहना कठिन है। कदाचित् पृथ्वी की प्राथमिक अवस्था में ही यह प्रक्रिया आरंभ



चित्र १७—एक-कोशीय जीव

हो गयी, जो निरन्तर होती चली जा रही है। जीवन के प्रथम अंकुर प्रोटोप्लाज्म में दृष्टिगोचर हुए। यह इतने सूक्ष्म थे कि अणुवीक्ष द्वारा ही इनका देखा जाना संभव था। जीवों का यह प्रारम्भिक रूप एक कोश में ही सीमित था। यही एक-कोशीय जीव पशु और वनस्पति जगत् के पूर्वज थे। इन जीवों का एक विशेष स्वभाव था। ये बढ़कर दो भागों में विभक्त हो जाते थे और इनका प्रत्येक भाग एक स्वतन्त्र जीव

का रूप धारण कर लेता था। इस प्रकार इनकी वृद्धि होती गयी। बाद में एक-कोशीय जीवों ने परस्पर मिलकर एक संयुक्त-कोशीय जीव का रूप ग्रहण किया। संयुक्त-कोशीय जीवों का भी क्रमशः विकास हुआ। उनके

शरीर के विभिन्न कोशों को शरीर का अलग-अलग कार्य मिला। उनकी शरीर-रचना में भी धीरे-धीरे परिवर्तन हुआ तथा उनके आकार में वृद्धि हुई।

पहले के ये जीव बड़े कोमल थे। मरने के उपरान्त इनके चिह्न शेष न रह पाये। पर धीरे-धीरे इन जीवों के अंगों में कठोरता आती गयी। इन जीवों ने अपनी रक्षा के लिए अपने ऊपर आवरण भी चढ़ा लिया। अतः मरने के बाद भी इनके कठोर भाग सुरक्षित बने रहे। इन्हीं कठोर भागों के चिह्न शिलाओं में अंकित हैं, उन्हीं के आधार पर विकास-क्रम तैयार किया गया है।

मृत जीवों के अवशेषों का परिरक्षण^१ केवल उन्हीं स्थानों पर संभव है, जहाँ पर निक्षेपण-क्रिया हो रही हो। अन्यथा मृत शरीर को या तो अन्य जन्तु खा जाते हैं अथवा अग्नि से जलकर वह राख हो जाता है या स्वतः ही घुलकर नष्ट हो जाता है। निरन्तर निक्षेपण केवल सागरों में ही होता है अथवा यदा-कदा हिमपात के साथ पर्वतों पर। अतः मृत जीवों के अवशेषों के परिरक्षण का सर्वोत्तम स्थान सागर ही है। सागर के जीव-जन्तु मरणो-परान्त उसमें जमा होनेवाली मिट्टी, बालू आदि से ढक जाते हैं और इस प्रकार सुरक्षित रहते हैं। दीर्घ काल तक बालू, मिट्टी आदि में होने के कारण वे अवशेष भी पाषाणमय हो जाते हैं। इन पाषाणमय अवशेषों को ही पुराजीव कहते हैं।

यहाँ इस तथ्य की ओर इंगित करना अप्रासंगिक न होगा कि कठोर भागों का ही परिरक्षण होता है। मुलायम भाग धीरे-धीरे स्वतः ही विघटित हो जाते हैं। किन्तु हिमाच्छादित प्रदेशों में कहीं-कहीं जीव-जन्तुओं के पूरे शरीर भी सुरक्षित मिले हैं। इसका सर्वोत्तम उदाहरण साइबेरिया के उत्तर में बर्फ में मिले गैंडा^२ तथा विशालकाय हाथी हैं।

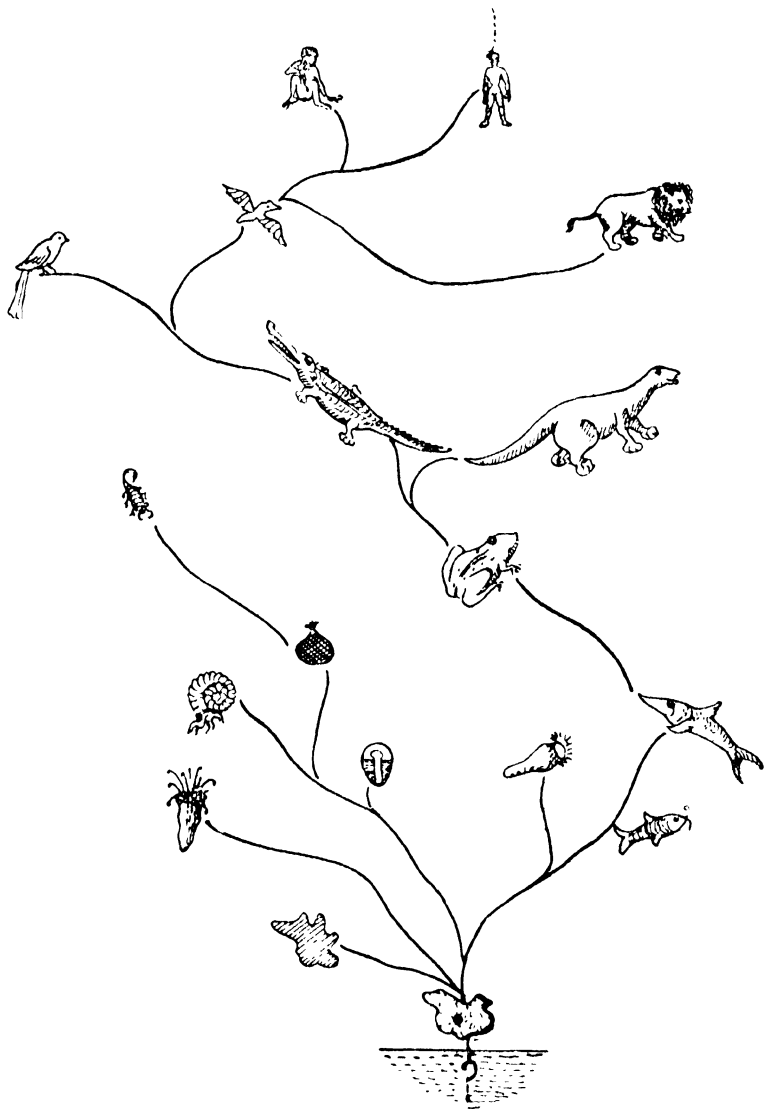
इसके अतिरिक्त कई बार शिलाओं में जीव के कुछ चिह्न ही मिलते हैं—जैसे जानवरों के पदचिह्न। यद्यपि ये उस जीव के शरीर का कोई अंग नहीं होते, किन्तु तब भी इनकी गणना पुराजीव के अन्तर्गत कर ली जाती है। विशेषज्ञ इनकी सहायता से उन जीवों के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं।

पुराजीव जलज शिलाओं में ही पाये जाते हैं। आग्नेय शिलाओं में पुराजीव नहीं मिलते; क्योंकि उनका रचना-तापक्रम इतना उच्च है कि उस तापमान पर कोई जीव-जन्तु जीवित नहीं रह सकता। ज्वालामुखी-उभार के समय जब गर्म लावा सतह पर बहता है तो लावा के प्रवाह-मार्ग में जो जीव-जन्तु आते हैं, वे लावा की गर्मी से झुलस जाते हैं तथा उनका कोई अवशेष नहीं रह पाता। कायान्तरित शिलाओं के निर्माण में भी उच्च-ताप तथा उच्च-दाब मुख्य रहता है। अतः इन शिलाओं में भी पुरा-जीवों की स्थिति असंभव है।

जलज शिलाओं की एक और विशेषता है। ये स्तरों के रूप में एक के ऊपर एक जमा होती हैं। इनका निचला स्तर अधिक पुराना तथा ऊपर का स्तर नया होता है। अतः ज्यों-ज्यों जानवरों का विकास होता गया, उनके अवशेष ऊपरी स्तरों में ही जमा होते गये। प्रारम्भिक जीव नीचे के शिलास्तरों में, उससे विकसित जीव उससे ऊपर के स्तरों में तथा और अधिक विकसित जीव और ऊपर के स्तरों में प्रस्तरीभूत हुए। यदि यह जीव-विकास का क्रम स्थापित हो जाये तो जलज शिलाओं का क्रम स्थापित किया जा सकता है। जिन प्रदेशों में भ्रंशों तथा वलनों के कारण प्रत्यक्ष शिलाक्रम भंग हो गया है, वहाँ भी पुराजीवों की सहायता से उचित क्रम तैयार किया जा सकता है। आगामी परिच्छेदों में जीव-विकास का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जायगा।

1. Imprints

विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार समस्त जीव एक ही व्यापक परिवार के अंग हैं। प्रत्येक जीव के पूर्वजों की वंशावली तैयार की जा सकती है।

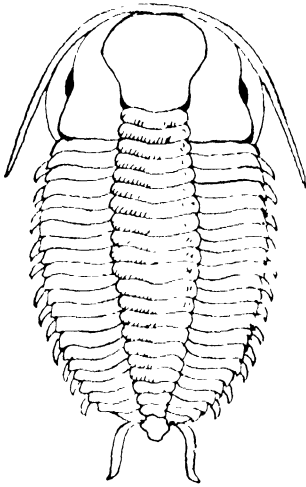


चित्र १८—जीवों के विकास क्रम का वंशवृक्ष

जीवों की विभिन्नताएँ पर्यावरण के प्रभाव तथा प्राकृतिक वरण के कारण हैं। यही कारण है कि ज्यों-ज्यों विकास होता गया, जीव सरल से जटिल रूप धारण करते गये। यहाँ तक कि साधारण दृष्टि से देखने पर दो जीवों में कोई समता ही दृष्टिगत नहीं होती। किन्तु यदि इन जीवों की वंशावली पर दृष्टि डाली जाय तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि जीवन का स्रोत एक है, केवल विकास की दिशाएँ भिन्न रही हैं।

जीवों के विकास-क्रम का वंशवृक्ष चित्र १८ में दिया गया है।

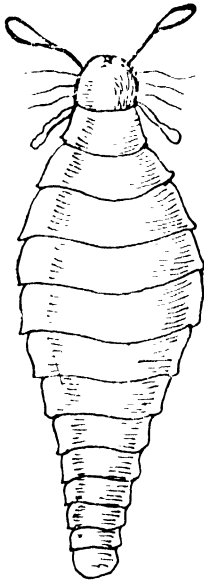
जीव-विकास से पूर्व पृथ्वी का प्रारंभिक रूप बड़ा भयावह था। पृथ्वी अपने अगणित संछिद्रों द्वारा आग उगल रही थी। सागर में भी भयंकर उताल तरंगे उठा करती थीं। पृथ्वी पर न कोई वृक्ष दिखाई पड़ता था, न कोई छोटा-मोटा कुंज ही था। विस्तृत भूखण्ड पर नग्न चट्टानें ही



दीख पड़ती थीं। ऐसी स्थिति में पृथ्वी पर जीवन की संभावना ही कैसे हो सकती थी? उस समय यदि कुछ जीवन हो सकता था तो केवल सागरों में ही। यदि वनस्पति की अवस्थिति हो सकती थी तो पाषाण-खण्डों पर जमी हुई काई या शैवाल के रूप में और यदि कोई जीव थे तो प्रारंभिक एक-कोशीय जीव, जिनका संकेत ऊपर किया जा चुका है। किन्तु शैल अभिलेखों में इनके असंदिग्ध प्रमाण प्राप्त नहीं हुए हैं।

चित्र १९—एक ट्रिलोबाइट शैल अभिलेखों के अनुसार सागर में निवास करने वाले सर्वप्राचीन कदाचित् ट्रिलोबाइट थे। प्राचीनतम जलज शिलाओं से हमें इनके पुराजीव प्राप्त

हुए हैं। उस काल में इनके समान दूसरे जीव भी सागर में विद्यमान थे। पर समस्त जीवों में ट्रिलोवाइट ही सर्वाधिक विकसित थे। इनके बहुत-से वर्ग थे तथा इनमें परस्पर भी बहुत-सी भिन्नताएँ थीं। ट्रिलोवाइट और

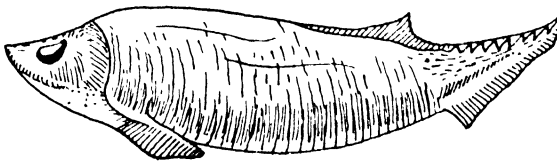


जीवों की अपेक्षा पानी में अधिक सुगमता से रह सकते थे। इन्होंने लगभग बीस करोड़ वर्षों तक सागर में एकच्छत्र राज्य किया।

तत्पश्चात् अचानक ही ये लुप्त हो गये और एक नये जीव समुद्री पनबिछिया का विकास हुआ। ट्रिलोवाइट के समान इन्होंने भी सागर पर लगभग बीस करोड़ वर्ष तक अपना एकाधिकार रखा। ये जीव मांसाहारी थे। इनकी लम्बाई ढाई-तीन गज होती थी।

ट्रिलोवाइट और समुद्री पनबिछिया के बाद आस्ट्राकोडर्म का आगमन हुआ। आस्ट्राकोडर्म का अर्थ है कवचधारी-मत्स्य। इन मछलियों के शरीर का खोल कड़ा होता है। इनके अगले भाग में कवच की नाई प्लेटें होती थीं, जिससे ये अन्य जीवों से अपनी रक्षा करने में समर्थ रहे। पिछला भाग धड़ तथा पूँछ कवचहीन थी, जिससे ये तैरने का कार्य कर सकें। लगभग ८ करोड़ वर्ष

चित्र २०—समुद्री
पनबिछिया

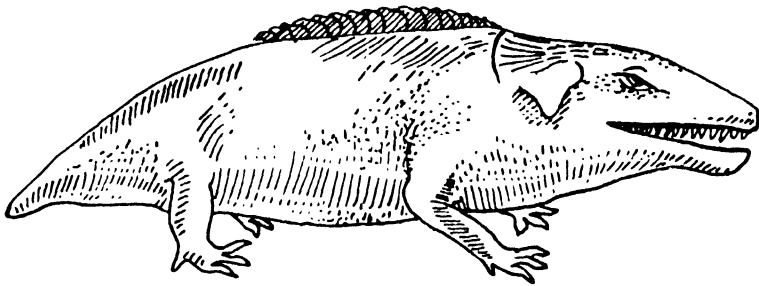


चित्र २१—कवचधारी मत्स्य

तक जल में राज्य करने के पश्चात् इनका पतन आरम्भ हुआ। इन्हींकी एक शाखा से मछलियों का विकास हुआ।

ये मछलियाँ दो बातों में अपने पूर्वजों से भिन्न थीं। एक तो इनमें मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) का विकास हुआ तथा धीरे-धीरे हड्डियों का ढाँचा भी विकसित होता रहा। इस विकास के कारण इनके शरीर का आकार पानी में विचरण करने के अधिक अनुकूल हो गया। इनके पूर्व जीव अधिकतर सागर की तलहटी में, दलदल में ही रहा करते थे, पर ये जल में स्वच्छन्दता से विचरण करने लगीं। इन मछलियों ने लगभग पाँच करोड़ वर्ष तक सागर पर अपना आधिपत्य रखा। तत्पश्चात् इनकी संख्या घटने लगी। किन्तु आजकल पायी जानेवाली मछलियाँ इन्हीं से विकसित हुई हैं।

इधर स्थल पर वनस्पति का श्रीगणेश हुआ। छोटे-छोटे पेड़-पौधे पृथ्वी पर फैलने लगे। क्रमशः धरती वनस्पतियों से आच्छादित हो गयी।



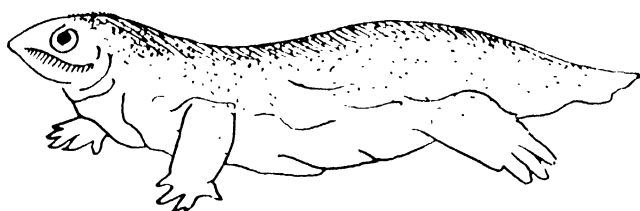
चित्र २२—उभयचर जीव

सागर के जीव-जन्तु वनस्पतियों की ओर उन्मुख हुए। उन्होंने स्थल की ओर प्रवेश किया। इन जीवों को द्विचर या उभयचर जीव^१ कहते हैं।

1. Amphibians

उभयचर का अर्थ है जल और थल दोनों में रह सकने में समर्थ जीव। प्रारंभिक अवस्था में ये जल में ही अधिक रहते थे, अपने भोजन के निमित्त स्थल पर आते थे और पुनः जल में चले जाते थे। स्थल पर निवास करने के लिए धीरे-धीरे इनके पैरों का विकास हुआ। इनके शरीर में भी कुछ परिवर्तन हुआ। अब ये स्थल पर ही अधिक रहने लगे। यदा-कदा आवश्यकता पड़ने पर अण्डे देने के लिए जल में चले जाते थे। उभयचरों ने भी लगभग १० करोड़ वर्ष तक पृथ्वी पर राज्य किया। कालान्तर में इनका युग भी समाप्त हुआ। इनके कुछ ही वंशज, जैसे मेढक आदि शेष रहे।

अब एक नये युग का सूत्रपात हुआ। विशालकाय सरीसृपों ने स्थल पर अपना अधिकार जमा लिया। ये अपने अण्डे भी स्थल पर ही देते थे एवं



चित्र २३—उभयचर से सरीसृप का विकास

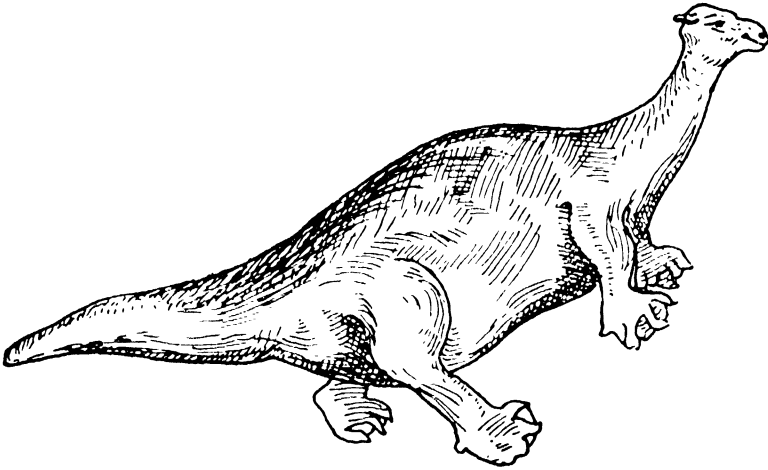
पानी में बहुत कम प्रवेश करते थे। इनका विकास बहुत तीव्र गति से हुआ। इसके दो कारण थे। इन्हें स्थल पर अण्डे देने की सुविधा थी तथा उस समय धरती पर वानस्पतिक भोजन का बाहुल्य था। परिणामस्वरूप इनकी संख्या ही नहीं बढ़ी, वरन् आकार-प्रकार में भी वृद्धि हुई। कदाचित् आपको यह जानकर आश्चर्य हो कि कुछ सरीसृप ९० फुट लम्बे थे।

समय और वातावरण के अनुरूप सरीसृपों के अंगों में परिवर्तन हुए। अधिकांश सरीसृपों के पैर शरीर से सटे होने लगे ताकि वे अपना भारी बोझ

1. Reptiles

सरलता से सँभाल सकें। कुछ सरीसृपों, जैसे सर्प आदि, के पैर लुप्त हो गये और कुछ जलप्रेमी सरीसृपों के पर पतवारनुमा हो गये, ताकि वे जल में सुविधापूर्वक तैर सकें। सरीसृपों के एक वर्ग में पैरों के स्थान पर एक झिल्ली का विकास हुआ, जिसकी सहायता से वे आकाश में उड़ सकें। कदाचित् इसी अन्तिम वर्ग के सरीसृप ही हमारी चिड़ियों के पूर्वज हैं।

सरीसृपों ने दीर्घकाल तक पृथ्वी पर शासन किया। इनकी अगणित जातियाँ थीं। इनमें डाइनोसोर^१ अपने भीमकाय शरीर के कारण सर्वाधिक प्रसिद्ध थे। इतने भीमकाय रूप के प्राणी और कभी पृथ्वी पर नहीं हुए।



चित्र २४—एक सरीसृप (डाइनोसोर)

जल और वायुमंडल में भी इनका कोई सानी न था। प्रसिद्ध डाइनोसोर डिप्लोडोकस^२ लगभग ८५ फुट लम्बा था। विख्यात डाइनोसोर ब्रैकियोसोरस^३ का वजन लगभग ५० टन था। इनके भार और लम्बाई से इनकी

1. Dinosaur
3. Brachiosaurus

2. Diplodocus

बृहत् काया का अनुमान लगाया जा सकता है। इन जीव-जन्तुओं ने लगभग दस करोड़ वर्ष तक पृथ्वी पर एकच्छत्र राज्य चलाया। तदुपरान्त एक ऐसा समय आया जबकि जलवायु में महान् परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन सरीसृपों के विकास के प्रतिकूल था, अतः सरीसृपों का पतन आरम्भ हो गया।

सरीसृपों के एक वर्ग आर्कियोप्टेरिक्स^१ में अन्य सरीसृपों से विपरीत परिवर्तन हुए। उनका शरीर अपेक्षाकृत हलका होता गया तथा उनमें पंखों का विकास हुआ। इस प्रकार आकाश में उड़ने वाले वर्ग का जन्म हुआ। आजकल की चिड़ियाँ इन्हीं की वंशज हैं।

सरीसृपों के एक अन्य वर्ग की विकास-गति कुछ भिन्न ही थी। इन जीवों के शरीर का तापमान गर्म था। अन्य जीवों के सदृश इनका तापमान जल और वायु के तापमान पर निर्भर न था। धीरे धीरे इनके शरीर पर बालों का विकास हुआ। जिस जलवायु में सरीसृपों के वर्गों का पतन हुआ, वही जलवायु इस वर्ग के विकास के अनुकूल हुआ। परिणामस्वरूप इन्होंने अवसर पाकर तेजी से अपना विकास किया। यही जीव स्तन-प्राणियों के नाम से प्रसिद्ध हुए। आज के मनुष्य इन्हीं स्तन-प्राणियों के एक परिवार की सन्तान हैं।

विकासवाद का सिद्धान्त, जिसका वर्णन ऊपर किया गया है, पुरा-जैविकी के आधार पर स्थित है। पुराजीवों के अध्ययन से ही जीव-विकास का क्रम तैयार किया गया। जीव-विकास का क्रम जान लेने के उपरान्त ही जलज शिलाओं को क्रमबद्ध रूप में संकलित किया जा सका। जलज शिलाओं के क्रमबद्ध अध्ययन का श्रेय इंग्लैण्ड के विद्वान् विलियम स्मिथ को है। आपने इंग्लैण्ड में शिलाओं का विशद अध्ययन किया, साथ ही उनमें प्राप्य जीवों का परीक्षण भी किया। इससे आपने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्येक रचना^२ में कुछ विशिष्ट पुराजीव पाये जाते हैं। इन विशिष्ट पुराजीवों के

आधार पर दूरस्थ प्रदेशों में विद्यमान शिलाओं का सहसंबन्ध^१ स्थापित किया जा सकता है। आपने ही पहले इंग्लैण्ड और वेल्स की जलज शिलाओं का क्रम तैयार किया था।

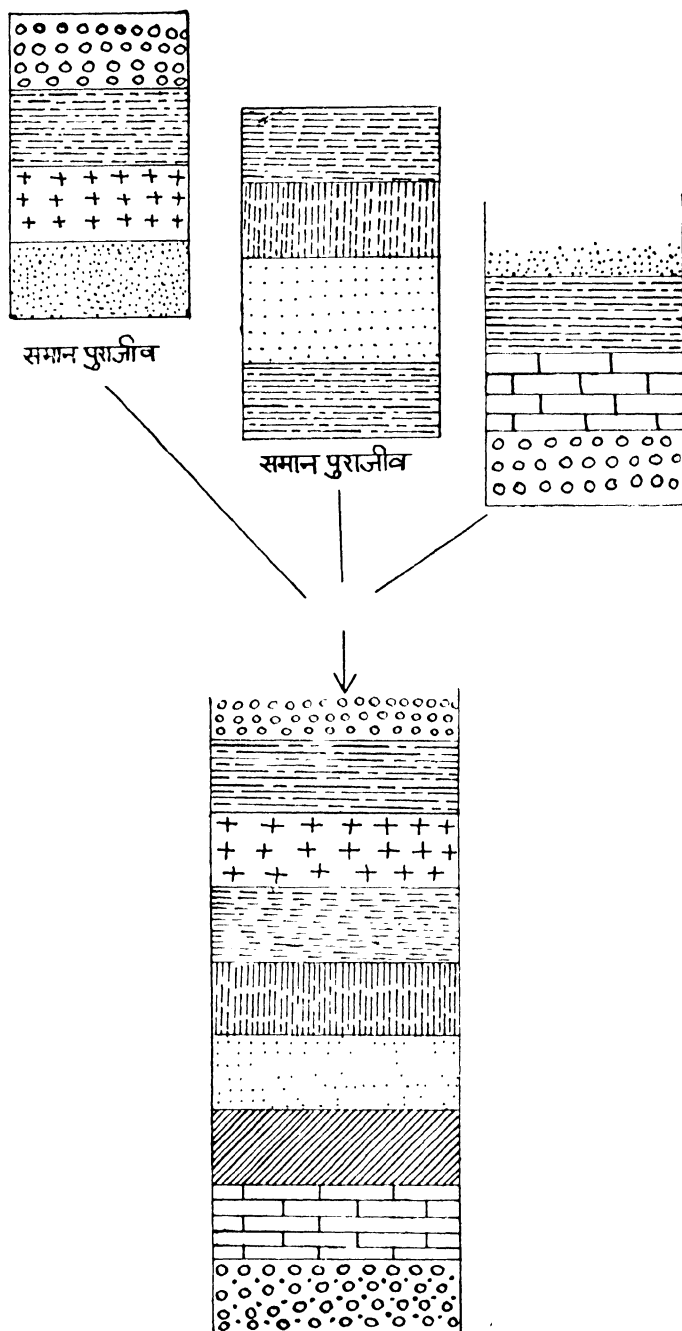
इस प्रकार विभिन्न शिलाओं का सम्बन्ध पुराजीवों के आधार पर स्थापित किया गया। जिन शिलाओं में एक समान पुराजीव प्राप्त हुए उन्हें समश्रेणी में रखा गया। विभिन्न पुराजीव वाली शिलाओं को उनसे पृथक् स्थान दिया गया। वंशवृक्ष के अनुरूप पुराजीव के स्थान पर निर्भर विविध शिलाओं को ऊपर-नीचे रखा गया। उदाहरणार्थ, यदि दो रचनाओं में से एक में ट्रिलोबाइट तथा दूसरी में समुद्री पनबिछिया के प्रस्तरी-भूत अवशेष विद्यमान हैं, तो ट्रिलोबाइट वाली शिला नीचे तथा समुद्री पनबिछिया वाली शिला क्रम में ऊपर रखी जायगी, क्योंकि विकास-क्रम के अनुसार ट्रिलोबाइट पहले जीव थे, समुद्री पनबिछिया का आगमन उसके बाद हुआ।

इस प्रकार भूविदों के अथक परिश्रम के फलस्वरूप जलज शिलाओं का क्रम उपलब्ध हुआ है और हम इन शिलाओं की मोटाई जान सके हैं।

शैलक्रम

(देखिए पृ० १२१)

1. Corelation



कल्प	अंग्रेजी नाम	हिन्दी नाम	युग	शिलाओं की मोटाई	जीवन का विकास	आयु
↑	ब्रवाटरनरी	प्रस्तर युग	हिन्दी नाम			
↓	(क) रीसेंट	अभिनव			मनुष्य का उद्भव, आधुनिक पेड़-पौधे	५,०००,०००
↑	(ख) प्लाइस्टोसीन	परमनूतन		४,००० फुट		
↓	टरशियरी	तृतीयक युग				
↑	(क) प्लायोसीन	अतिनूतन		१८,००० फुट	उच्चतर स्तनपोषी (मनुष्यकेअतिरिक्त)	१५,०००,०००
↓	(ख) मायोसीन	अल्पनूतन		२१,००० फुट		३०,०००,०००
↑	(ग) ओलिगोसीन	आदिनूतन		१५,००० फुट	उच्चतर श्रेणी की वनस्पतियाँ	४०,०००,०००
↓	(घ) इओसीन	आदिनूतन		२३,००० फुट		७०,०००,०००
	क्रिटेशियस	खटीयुग		६४,००० फुट	सरीसृपों का शूल पर साम्राज्य	११०,०००,०००
	जुरासिक	महासरट युग		२२,२०० फुट	प्रथम पक्षी	१४०,०००,०००
	ट्रयासिक	रक्ताशम युग		२५,००० फुट	कुछ सरीसृप तथा प्रारंभिक स्तनपोषी	१९०,०००,०००
महा कल्प						

परमियन	गिरियुग	१८,००० फुट	सरीसृपों, उभयचरों का पतनोन्मुख	२२०,०००,०००
कार्बोनिफेरस	अंगारयुग	४०,००० छोट	उभयचरोंका वाहुल्य कोयला, वनस्पति	२४०,०००,०००
डिवोनियन	मत्स्ययुग	३७,००० फुट	सागर में मछलियों का साम्राज्य, उभयचर के प्रथम प्रस्तरावशेष	३२०,०००,०००
सिलरियन	प्रवालादि युग	२०,००० फुट	स्थल पर जीवगम	३४०,०००,०००
आर्डोविशियन	अवर प्रवालादि युग	४०,००० फुट	सागर में रीढ़ प्राणियों का आगमन	३९०,०००,०००
कैम्ब्रियन	त्रिखण्ड युग	४०,००० फुट	रीढ़ रहित प्राणियों का उदय इस युग में बहुत से जीवों के प्रस्तरावशेष मिले हैं	५००,०००,०००
प्रोटरोजोइक	अज्ञात	अरीढ़	उद्भव (अनुमान)	७००,०००,०००
आर्कैजोइक			प्राचीनतम जीवधारी (अनुमान)	

Conozoic नवकल्प, Mesozoic मध्यकल्प, Palaeozoic पुराकल्प, Proterozoic सुपुराकल्प, Archeozoic आद्य कल्प या आदि कल्प।

तालिका की विस्तृत व्याख्या करने से पूर्व यह बताना आवश्यक है कि भौमिक-क्रम का अध्ययन नीचे से ऊपर की ओर किया जाता है, क्योंकि सबसे पहले बनी शिला सबसे नीचे होती है और सबसे बाद में बनी सबसे ऊपर। यही कारण है कि आदिकल्प सबसे नीचे है तथा नवकल्प सबसे ऊपर।

प्रस्तुत तालिका में पृथ्वी के आरम्भ से अब तक का इतिहास दिया गया है। जिस प्रकार किसी देश का इतिहास कई ग्रन्थों में रहता है, उन ग्रन्थों में बहुत-से अध्याय, अध्यायों के अन्तर्गत अनेक अनुच्छेद, अनुच्छेदों के भीतर बहुत-से वाक्य होते हैं, उसी प्रकार भौमिक शैलक्रम को भी समुदाय, संहति, माला और रचना में विभक्त किया गया है। इसका तात्पर्य है कि कई शैल-रचनाओं से मिलकर शैल-माला बनती है। कई शैल-मालाओं के संयोग से एक शैल-संहति, कई शैल-संहतियों के समुच्चय से एक शैल-समुदाय का निर्माण होता है। इन्हीं के अनुरूप समय को कल्प, युग, अनुयुग और काल की अभिधा प्रदान की जाती है—

समुदाय	कल्प ^१
संहति	युग
माला	अनुयुग
रचना	काल, वयस

भौमिकीज्ञ के लिए इन शब्दों का उचित प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है। यदि हमें पुराकल्प में बनी सभी शिलाओं को संबोधित करना है, तो हम

1. Group समुदाय	Era कल्प
System संहति	Preiod युग
Series माला	Epoch अनुयुग
Formation रचना	Age वयस, काल

‘पुराकल्प समुदाय’ अभिहित कर सकते हैं। इसी प्रकार कैम्ब्रियन युग में बनी शिलाओं को ‘कैम्ब्रियन संहति’ कह सकते हैं।

पृथ्वी का आरम्भ आदि-काल से होता है। तालिका में आदिकल्प और सुपुराकल्प के समक्ष स्थान शून्य छोड़ दिये गये हैं, जबकि अन्य कल्पों का विभाजन उनमें विद्यमान पुराजीवों के आधार पर किया गया है। पृथ्वी के आरंभकाल की शिलाओं में जीवन के कोई चिह्न नहीं मिले हैं। अतएव आदि और सुपुरा-कल्प सम्बन्धी हमारा ज्ञान सीमित है। यह कहना कठिन है कि आदिकल्प में जीवन का उद्भव हुआ था या नहीं। इस सम्बन्ध में भी दो विचारधाराएँ हैं। पहली, आदिकल्प में जीव का नामोनिशान भी न था, पर कुछ लोगों की यह धारणा है कि प्राथमिक जीवन का श्रीगणेश आदि-कल्प में ही हुआ। पर उनके अवशेष सुरक्षित न रह सके, क्योंकि वह कठोर-भाग रहित थे। दूसरे, आग्नेय क्रियाएँ उस काल में प्रचंड रूप से हो रही थीं, अतः अवशेषों का संरक्षण संभव भी न था।

पुराकल्प के आरंभ से ही प्रस्तरावशेषों की उपलब्धि हो जाती है। इसी आधार पर इस कल्प के छः भाग किये गये हैं। प्रथम भाग ‘कैम्ब्रियन’ कहलाता है। यह नाम सन् १८३५ में सिडविक^१ ने रखा था। इस नाम का भी एक इतिहास है। इंग्लैंड में पहले रोमवालों का साम्राज्य था। उन्होंने इंग्लैंड के वेल्स प्रदेश को ‘कैम्ब्रियन’ नाम दिया। इसी प्रदेश में सर्वप्रथम वह शिला मिली थी जिससे प्राचीनतम पुराजीवों के स्पष्ट अवशेष प्राप्त हुए। अतः इस शिला को ‘कैम्ब्रियन’ शिला व युग को ‘कैम्ब्रियन युग’ कहा गया। पृथ्वी पर इस काल को व्यक्त करने वाली सभी शिलाएँ कैम्ब्रियन शिलाओं के नाम से संबोधित की जाती हैं। इस काल में पुराजीवों में ट्रिलोबाइट सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। ट्रिलोबाइट जीवों के शरीर के तीन भाग होते हैं, इसलिए इन्हें त्रिखंडी कहा गया है। पुराकल्प के प्रथम खण्ड में

त्रिखंडी जीवों का बाहुल्य था, अतः इस पुराकल्प के प्रथम चरण कैम्ब्रियन युग का हिन्दी पर्याय 'त्रिखण्डी युग' उचित ही है।

पुराकल्प के द्वितीय युग की शिलाएँ भी सर्वप्रथम इंग्लैण्ड के एक भाग में प्राप्त हुई। यहाँ पहले इंग्लैण्ड की पुरानी सेल्टिक जातियों की एक आर्डोविसेज नामक उपजाति निवास करती थी। अतः इस भाग की शिलाओं को सन् १८७९ में चार्ल्स लपवर्थ^१ ने 'आर्डोविशियन शिलाओं' के नाम से संबोधित किया। इनकी समकालीन शिलाएँ संसार भर में 'आर्डो-विशियन' कहलाती हैं। आर्डोविशियन युग के पश्चात् 'सिलूरियन युग' आता है। इस युग की शिलाएँ उस भूखण्ड में पायी गयी हैं जहाँ 'सिलूर' नाम की उपजाति रहती थी। इस आधार पर ही मर्चिसन^२ ने इन शिलाओं को सन् १८३५ में 'सिलूरियन शिलाएँ' कहा था। इस युग में प्रवाल आदि जीवों का प्राचुर्य था। इसी युग में प्रवाल-भित्तियों की रचना आरंभ हुई। अतः सिलूरियन युग का अर्थसूचक भाववाची पर्याय 'प्रवालादि युग' युक्तिसंगत है। सिलूरियन के नीचे होने के कारण आर्डोविशियन युग को तालिका में 'अवर प्रवालादि युग' (अवर=नीचे)^३ के नाम से पुकारा गया है। जैसा कि ऊपर के विवरण से ज्ञात होता है, सिलूरियन शिलाओं का नामकरण सन् १८३५ में हुआ, जबकि उनके नीचे की सिलूरियन शिलाओं का नामकरण ४४ वर्ष उपरान्त सन् १८७९ में। इसका एक कारण है। पहले आर्डोविशियन शिलाओं का कोई पृथक् अस्तित्व नहीं था। भौमिकी के ज्ञान की प्रगति के साथ-साथ यह ज्ञात हुआ कि उत्तर^४ कैम्ब्रियन तथा अवर सिलूरियन शिलाओं में एक से पुराजीव मिलते हैं। इस पर वैज्ञानिक क्षेत्रों में विवाद चला, उसका समाधान करने के लिए उत्तर-कैम्ब्रियन और अवर सिलूरियन को मिलाकर एक नयी शैल-संहति की स्थापना हुई, जिसे आर्डोविशियन (अवर प्रवालादि) संहति कहा गया।

पुराकल्प का चौथा चरण डिवोनियन कहलाता है। इस युग में मछलियों का बाहुल्य था। अतः इसे 'मत्स्य युग' कहते हैं। इस युग की शिलाओं की कहानी डिवोनियन संहति के ही समान है। विलियम लौन्सडेल^१ डिवोन क्षेत्र में शिलाओं का अध्ययन कर रहे थे। आपने देखा कि इन शिलाओं में पाये जाने वाले पुराजीव सिलूरियन और उनके ऊपर की कार्बोनिफरस शिलाओं के पुराजीवों के मध्य के हैं। लौन्सडेल की गवेषणाओं के आधार पर मार्चेंसन और सिडविक ने सन् १८४० में सिलूरियन और कार्बोनिफरस शैल-संहति के बीच में डिवोनियन-शैल संहति की स्थापना की।

कार्बोनिफरस युग में वनस्पतियों का बाहुल्य था। इन्हीं वनस्पतियों के परिवर्तन से कोयले (अंगार) की रचना हुई। दाब तथा रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप काष्ठीय^२ भाग कार्बन में घने होते जाते हैं तथा उनमें से आक्सीजन और हाइड्रोजन गैसों बाहर निकल जाती हैं। यही अंगार का उद्गम है। विश्व के अधिकतर अंगार-निक्षेप इसी युग के हैं। इस युग में उभयचारी भी अपने विकास की चरम सीमा पर थे। अतः इस युग को अंगार-युग या उभयचारी-युग भी कह सकते हैं।

कार्बोनिफरस संहति के ऊपर की शिलाएँ रूस के वोल्गा प्रदेश के पूर्व में पूर्णतः क्रमबद्ध रूप से अगोपित हैं। प्राचीन काल में यहाँ परमिया राज्य था। अतः सन् १८४१ में सर रोडेरिक मर्चिसन ने इन शिलाओं को 'परमियन शैल संहति' नाम दिया। यह युग पुराकल्प का छठा या अन्तिम चरण है। इस युग में सरीसृपों का विकास हुआ तथा उभयचारियों का अवसान आरम्भ हो गया। इस युग की सबसे महत्त्वपूर्ण बात है—पर्वतरचना का आरम्भ होना, अतः इस युग को तालिका में 'गिरि युग' की संज्ञा दी गयी है।

पुराकल्प के उपरान्त मध्यकल्प आता है। पुराकल्प का आरम्भ

आज से पचास करोड़ वर्ष पूर्व हुआ था। इस कल्प की अवधि लगभग तीस करोड़ वर्ष रही। तदुपरान्त मध्य कल्प के प्रथम चरण ट्रयासिक का श्रीगणेश हुआ। जर्मनी में इस युग की शिलाएँ तीन भागों में विभाजित थीं—इसलिए फौन अलवर्ट^१ ने १८३४ में इन्हें ट्रयासिक (ट्रयास—तीन भाग) संहति नाम दिया। विश्व के अन्य भागों में ये शिलाएँ तीन भागों में विभक्त नहीं हैं, पर ट्रयासिक नाम साधारण रूप में प्रचलित हो गया है। इस युग की मुख्य शिलाएँ हैं 'लाल बलुआ पत्थर'। अतः तालिका में इसका हिन्दी पर्याय रक्ताश्म (रक्त—लाल, अश्म = पत्थर) दिया गया है।

ट्रयासिक या रक्ताश्म युग से ऊपर की शिलाओं को फ्रांसीसी भूविद ब्रान्नानियार^२ ने जूरासिक कहा है, क्योंकि इनकी समकालीन शिलाएँ जूरा पर्वत पर भी प्रकट हैं। इस युग में धरती पर महासरटोंका साम्राज्य था। इसलिए इसे महासरट युग भी कह सकते हैं। मध्यकाल का तीसरा व अन्तिम चरण क्रिटेशियस है। इस युग की शिलाएँ खटी^३ (खड़िया) से बनी हैं। खटी को लेटिन भाषा में क्रिटा^४ कहते हैं, अतः इस युग का नाम क्रिटेशियस या 'खटी युग' हुआ।

मध्य-कल्प की अवधि लगभग आठ करोड़ वर्ष है। तदुपरान्त 'नव-कल्प' आता है। नवकल्प के दो भाग हैं—तृतीयक युग और प्रस्तर युग। तृतीयक प्राचीन नाम है। इटली के विद्वान् आर्डुनो^५ ने सन् १७६० में शिलाओं को तीन भागों में बाँटा था—प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक। पुराकल्प की शिलाओं को प्राथमिक, मध्यकल्प की शिलाओं को द्वितीयक तथा नवकल्प की शिलाओं को तृतीयक कहकर आज भी पुकारा जाता है। पर इस रूप में इन शब्दों का प्रचलन समाप्त हो गया है। अवसर की बात है कि तृतीयक शब्द अभी तक अपना अस्तित्व बनाये हुए है। तृतीयक

1. Von Albert

2. Brongniort

3. Chalk

4. Creta=Chalk

5. Arduino

संहति के अन्तर्गत खटी युग और महाहिम युग के बीच की सभी शिलाएँ आ जाती हैं।

तृतीयक शिलाओं के उपविभाजन का श्रेय सर चार्ल्स लायल^१ को है। इन्हें क्रमागत रूप में इओसीन, ओलिगोमीन, मायोसीन, प्लायोसीन कहते हैं। इनके हिन्दी पर्याय हैं—प्रादिनूतन, आदि नूतन, अल्प नूतन, अति-नूतन। ये शब्द अभिनव^२ के विकास की सीढ़ियों के द्योतक हैं कि किस प्रकार प्रादि नूतन से क्रमशः विकसित होकर अतिनूतन काल आया। तृतीयक युग की अवधि लगभग छः करोड़ वर्ष है। इस युग में पक्षियों और स्तन-पोषियों का विकास हुआ।

कुछ विद्वानों ने खटी युग और प्रादिनूतन काल के बीच में भी पुरा-जीवीय आधार पर नयी शैल माला की स्थापना की है। इसे पैलियोसीन^३ या पुरानूतन कहते हैं।

अतिनूतन काल की शिलाओं से ऊपर की शिलाओं का नामांकन भी चार्ल्स लायल ने किया। इन शिलाओं को आपने उसी क्रम में प्लाइस्टोसीन (या परम नूतन) कहा। नव कल्प का यह विभाजन पूर्णतः पुराजीव प्रमाण पर आधारित है। इस कल्प का परम नूतन तथा अभिनव काल प्रस्तर युग के अन्तर्गत रखा गया है। इस समय धरती पर मानव का आगमन हुआ।

भौमिक काल का उपरिवर्णित विभाजन सर्वमान्य है, पर उनकी अवधि के सम्बन्ध में कुछ मतभेद है। अतः पृथ्वी से संबद्ध किसी घटना का वर्णन करते समय उस कल्प, युग अथवा अनुयुग का नाम लेकर ही उसका वर्णन किया जाता है। उदाहरणार्थ, ट्रिलोबाइट जीवों का आगमन कैम्ब्रियन युग (त्रिगुण्ड युग) में हुआ और गिरि-युग तक इन जीवों की इहलीला समाप्त हो गयी। इन का कोई भी वंशज शेष न रहा। अतः कहा जाता है कि ट्रिलो-

1. Sir Charles Lyell

2. Recent

3. Paleocene

वाइट पुरा कल्प में ही सीमित थे। यह सर्वमान्य है। पर यदि हम यह कहें कि ट्रिलोवाइट काल आज से ५० करोड़ वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ तथा बाईस करोड़ वर्ष पूर्व समाप्त हो गया, तो इस पर विद्वानों में मतभेद हो सकता है। पुराकल्प की अवधि पचास करोड़ वर्ष पूर्व आरम्भ होकर अब से २२ करोड़ वर्ष तक रही, इस पर एकमत नहीं है।

शैल स्तरों की मोटाई

तालिका में दिये गये शैल-विवरण में सुपुरा कल्प और आदि-कल्प की शिलाओं की मोटाई नहीं दी गयी है। इन शिलाओं की मोटाई अज्ञात है, किन्तु अन्य कल्पों की शिलाओं की मोटाई से इनकी मोटाई बहुत अधिक है। पुरा-कल्प से नवकल्प तक की शिलाओं की मोटाई जान लेने के बाद यदि हम इन शिलाओं की निक्षेपण-गति जान लें तो इन कल्पों की आयु ज्ञात कर सकेंगे।

अपरदन तथा निक्षेपण की गति बड़ी सीमा में विचरती है। इस विषय में निम्नोक्त तथ्य विचारणीय हैं—

१. वर्तमान काल में अपरदन की गति भूतकाल की अपेक्षा अधिक है। वर्तमान युग पर्वतनिर्माणकारी युग है, अतः स्थल में पर्वतों की ऊँची-ऊँची चोटियाँ हैं जो वायु-मण्डल की शक्तियों के प्रभाव में शीघ्र अपरदित हो रही हैं। यह भौमिक सत्य है कि भूमि के आधारतल^१ से ऊपर उठने पर अपरदन क्रिया तथा भूमि के आधारतल से नीचे जाने पर निक्षेपण क्रिया आरम्भ हो जाती है। वायुमण्डल तथा सभी अपरदन शक्तियों का लक्ष्य है स्थल के उच्च प्रदेशों को अनाच्छादित करके समतल करना।

२. निक्षेपण गति नदी-संभरण^२ अर्थात् नदी द्वारा प्राप्त सामग्री,

आवाह-क्षेत्र^१ के आकारों, धाराओं तथा समुद्री जीवों पर निर्भर है। उदाहरणार्थ, इटली की पो नदी बहुत कम पदार्थ अपने साथ बहा कर ले जाती है, जबकि चीन की व्हांग-हो या अमेरिका की मिसिसीपी नदियाँ अधिक मात्रा में पदार्थ ले जाकर निक्षेपित करती हैं। नदी की प्राप्त सामग्री उसके प्रवाह-क्षेत्र^२ की विशालता तथा प्रवाह-क्षेत्र में विद्यमान शिलाओं के योग पर भी निर्भर है। पो का प्रवाह-क्षेत्र केवल ३०,००० वर्गमील है जबकि मिसिसीपी का प्रवाह-क्षेत्र १,२७,५००० वर्गमील है। समुद्री जीवों की ठठरी आदि से निर्मित शिलाओं की गति अन्य शिलाओं की अपेक्षा अधिक है।

निक्षेपण के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह क्रिया निक्षेपण क्षेत्र की अवतल-गति^३ पर विशेषतः अवलम्बित है। निक्षेपण-क्षेत्र जितनी द्रुत गति से अवतलित होता जायगा, निक्षेपण गति उतनी ही बढ़ेगी।

विभिन्न प्रकार के स्तरों की निक्षेपण गति भी भिन्न होती है। उत्तरी अमेरिका के शैल-अध्ययन के आधार पर ज्ञात हुआ है कि—

१ फुट बलुआ पत्थर	१५०० वर्षों में,
१ फुट शैल	१८०० वर्षों में,
१ फुट चूना-पत्थर	३५०० वर्षों में,

निक्षेपित होता है। पर सम्पूर्ण विश्व की त्रिखण्ड युग से अब तक बनी शिलाओं की मोटाई (जो लगभग ४००,००० फुट है) के आधार पर कुछ भिन्न परिणाम प्राप्त हुए हैं, जो इस प्रकार हैं—

१ फुट बलुआपत्थर	७५० वर्षों में,
१ फुट शैल	१००० वर्षों में,
१ फुट चूना-पत्थर	२३५० वर्षों में,

1. Catchment basin
3. Rate of subsidence

2. Drainage area

अतः बलुआ पत्थर, शैल तथा चूना-पत्थर के निक्षेपण की माध्य गति क्रमागत १०००, १२०० तथा २५०० वर्ष मानी जा सकती है। इस प्रकार चूने की शिलाओं के निर्माण में सर्वाधिक समय लगता है। पर किन्हीं-किन्हीं सागरों में समुद्री जीवों के कारण चूना-पत्थर शैल की अपेक्षा अधिक शीघ्र निर्मित हुआ है।

प्रसिद्ध भूविद् होम्स ने बताया है कि स्तरों के निक्षेपण की औसत गति काल-क्रम से बढ़ती रही है। त्रिखण्ड युग में यह गति मन्थर थी, धीरे-धीरे इसमें वृद्धि हुई। नीचे की तालिका में विभिन्न कालों की निक्षेपण-गति वर्णित है—

	काल	एक फुट निक्षेपण वर्षों में
नवकल्प	{ —अतिनूतन	(प्लायोसीन) ६११
	{ —अल्पनूतन	(मायोसीन) ६६७
	{ —आदिनूतन	(ओलिगोसीन) ८००
	{ —प्रादिनूतन	(इओसीन) ८७०
मध्यकल्प	{ —रवटी युग	(क्रिटेशियस) १०७८
	{ —महासरट युग	(जुरासिक) ११३६
	{ —रक्ताश्म युग	(ट्रयासिक) १२००
	{ —गिरि युग	(परमियन) ११६७
पुराकल्प	{ —अंगार युग	(कार्बोनिफरस) १३००
	{ —मत्स्य युग	(डिवोनियन) १५६८
	{ —प्रवालादि युग	(सिलरियन) १८५०
	{ —अवर प्रवालादि युग	(आर्डीविशियन) २०००
	{ —त्रिखण्ड युग	(कैम्ब्रियन) २०००

समस्त जलज शिलाएँ प्रारम्भ में आग्नेय शिलाओं की चूर से ही बनीं। इस आधार पर इन शिलाओं में ८७ प्रतिशत शैल, ८ प्रतिशत बलुआ पत्थर तथा ४ प्रतिशत चूना-पत्थर होना चाहिए। होम्स की गणना के अनुसार शैल, बलुआ पत्थर तथा चूना-पत्थर की क्रमागति प्रतिशत ७०, १६ और १४ है। क्लार्क ने इन तीनों शिलाओं की निष्पत्ति ८०, १५, ५ मानी है। उपरिलिखित सभी मान्यताएँ वास्तविकता से भिन्न हैं, क्योंकि जलज

शिलाओं की रचना के लिए बहुत-सा नया पदार्थ वायुमण्डल से प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त बहुत-सा घुलनशील पदार्थ—चूना, मैग्नीशियम तथा महीन बालू आदि महासागरों में समा गया है। सभी तथ्यों को विचार में रखकर शेल, षलुआ पत्थर तथा चूना-पत्थर की क्रमागति प्रतिशत ४४, ३७, १९ अनुमानित की गयी है। इस आधार पर सम्पूर्ण जलज शिलाओं में, जो लगभग ४००,००० फुट हैं, १७५००० फुट मोटी तहें शेल की, १४६००० फुट षलुआ पत्थर की एवं ७९००० फुट मोटी तहें चूना-पत्थर की हैं। इनके निक्षेपण की माध्यगति क्रमशः १२००, १०००, २५०० वर्ष प्रतिफुट के हिसाब से मानने पर इन शिलाओं की रचना में ५००,०००,००० वर्ष से अधिक समय लगा। इस भाँति पुराकल्प से नवकल्प तक का समय लगभग ५० करोड़ वर्ष हुआ।

पुराकल्प से पहले दोनों कल्पों—सुपुराकल्प तथा आदिकल्प की शिलाओं में पुराजीवों की अनुपस्थिति के कारण उनकी आयु का अनुमान उनमें विद्यमान रेडियो-सक्रिय खजिनों के आधार पर किया गया है। ज्ञात हुआ है कि पुराकल्प से पूर्व कम से कम डेढ़ अरब वर्ष व्यतीत हो चुके थे, अर्थात् आदि-कल्प और सुपुराकल्प का समय पुरा, मध्य तथा नवकल्प की सम्पूर्ण अवधि के तीन गुने से भी अधिक है।

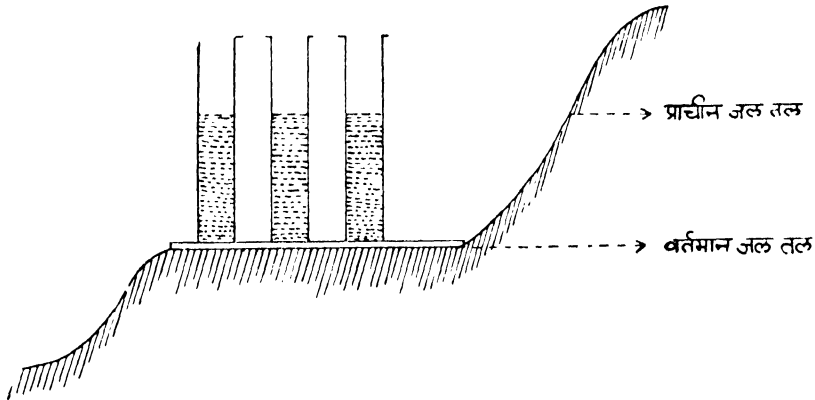
अध्याय ७

भू-क्रान्तियाँ

‘वर्तमान भूत की कुंजी है।’

भारतवर्ष के उत्तर में हिमालय पर्वत की उत्तुंग शृंखलाएँ हैं। इनकी सर्वोच्च चोटी गौरीशंकर २९००० फुट ऊँची है। भारतवर्ष के मध्य में विन्ध्याचल पर्वत शोभायमान है, जिसकी औसत ऊँचाई लगभग ३००० फुट है। इन दोनों पर्वत-मालाओं में इतना बड़ा अन्तर क्यों है; हिमालय पर्वत के संबन्ध में आज भी कहा जाता है कि वह गिरिश्रेणी ऊँची उठ रही है। बम्बई के निकट निमग्न वनों तथा कच्छ भूखण्ड के उत्थान के विषय में पिछले अध्याय में दिखाया गया है। स्थल के तल-परिवर्तन का सबसे सुन्दर प्रमाण जुपिटर का मन्दिर ‘सिरेपियम’ है। यह मन्दिर भूमध्य सागर के किनारे नेपिल्स के समीप पौजली में स्थित था। अब इस मन्दिर के भग्नावशेष मात्र उपलब्ध हैं। इसमें लगभग चालीस फुट लम्बे संगमरमर के तीन स्तम्भ हैं। इन स्तम्भों में गत दो सहस्र वर्षों में हुए तल-परिवर्तन के चिह्न हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओं ने इन स्तम्भों का अध्ययन करके बताया है कि ये तीनों स्तम्भ दूसरी या तीसरी शती ईसवी में स्थल पर निर्मित किये गये थे। पर इसी काल में यह भवन नीचे को घँसने लगा था और समुद्र ने इस पर आक्रमण किया था, अतः दूसरे फर्श का निर्माण प्रथम फर्श के ऊपर १८ इंच गहरी नींव भरने पर हुआ (चित्र २६)। धीरे-धीरे यह भाग २० फुट तक जल में डूब गया। जल के भीतर १२ फुट की गहराई तक ये स्तम्भ ज्वालामुखी की राख से सुरक्षित रहे, पर १२ फुट से २० फुट ऊँचाई तक इन स्तम्भों में भूमध्यसागर में रहने वाले

कोषस्थ जीव 'लिथोडोमस'^१ ने छेद बना लिये। ये छेद सभी स्तम्भों में एक ही ऊँचाई पर हैं। इन छेदों में लिथोडोमस के कवच^२ भी प्राप्त हुए हैं।



चित्र २६—सिरेपियम में स्थल के तल परिवर्तन के चित्र

इससे स्पष्ट है कि ये स्तम्भ दीर्घवधि तक जल के भीतर रहे। फिर कब इस भाग का उत्थान हुआ, यह कहना कठिन है। किन्तु सन् १७४१ तक ये स्तम्भ पूर्णतः जल से बाहर ऊपर उठ आये थे, क्योंकि उसी समय इनकी खोज हुई। १८वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों या १९वीं शती के आरम्भकाल में पुनः इस भाग का अवतलन आरम्भ हुआ।

भूमंडल पर दृष्टिपात करने से हमें ऐसे और अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनसे विदित होता है कि थल और जलमण्डलों में परिवर्तन हुए हैं। इतना ही नहीं, भौमिक इतिहास इस बात का साक्षी है कि पृथ्वी के बहुत-से भाग एकान्तर^३ रूप से जल और थल से ढके जाते रहे हैं। धरती के इतिहास के ये क्रान्तिकारी परिवर्तन पृथ्वी के अन्तर्भाग में घटित क्रियाओं के फलस्वरूप ही हैं। भौमिक इतिहास में गहरे पैठने पर यह भी ज्ञात होता है कि ये परिवर्तन व्यवस्थापूर्वक घटित हो रहे हैं। ऐसा आभास

होता है कि कोई प्राकृतिक शक्ति अनन्त काल से इन घटनाओं का संचालन कर रही है।

भौमिक इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना पर्वतों की रचना है। भौमिक काल में कई बार पर्वतमालाओं का निर्माण हुआ है तथा कई बार धरातल की शक्तियों ने इन उत्तुंग मालाओं को धराशायी किया है। पर्वतमालाओं का निर्माण एवं वायुमंडल के दूतों द्वारा उनका विघटन-चक्र क्रमपूर्वक चालू रहता है।

भूमण्डल के स्थायी दृढ़ भाग^१

भूमण्डल के समस्त भागों का समान रूप से विकास नहीं हुआ है। भूमण्डल के कुछ भाग ऐसे हैं जो भौमिक इतिहास के बृहत् काल में दृढ़ व स्थायी रहे हैं। भूमण्डल के ये मुख्य भाग हैं। बाल्टिक वर्म^२ साइबेरिया का वर्म (अंगारालैंड), चीनी वर्म, आस्ट्रेलिया की दृढ़ काय, अफ्रीकी स्थायी प्रदेश, कनाडियन वर्म, दक्षिणी अमेरिका का स्थायी ब्राज़ील और गायना प्रदेश, अंटार्कटिक और भारतीय वर्म। इन सभी भागों में पुराकल्प से पूर्व की शिलाएँ पायी गयी हैं। इनमें ग्रेनिट-नाइस^३ तथा शिस्ट^४ प्रधान हैं।

बाल्टिक वर्म आद्य शिलाओं का बना हुआ है। ये शिलाएँ बाल्टिक सागर के किनारे विगोपित हैं, यद्यपि ये शिलाएँ यूरोपीय रूस में भी फैली हुई हैं, पर वहाँ उत्तरआद्य कल्प^५ की शिलाओं से ढकी हैं। साइबेरियन वर्म के विषय में हमारा ज्ञान सीमित है। किन्तु रूसी भूविदों ने बताया है कि यहाँ की शिलाएँ भी प्राचीनतम कल्प की हैं तथा इनमें प्राचीनतम गिरिजन रचनाएँ^६ मिली हैं। आद्यकल्प की शिलाएँ चीन

1. Rigid mass	2. Shield	3. Granite gneiss
4. Schist	5. Upper Archaean	
6. Orogenic structures		

के कतिपय भागों में भी विद्यमान हैं, पर अधिकतर ये नवीन स्तरों से ढकी हैं। आस्ट्रेलिया में कारपेन्टरिया की खाड़ी से आस्ट्रेलियन बाइट^१ तक तथा पश्चिमी आस्ट्रेलिया का बड़ा पठार भी पुराकल्प से पूर्व की शिलाओं से बना है। अफ्रीका का तो लगभग सारा भाग प्राचीन शिलाओं से निर्मित है।

कनाडियन वर्म में उपलक्षक^२ आद्यशिलाएँ मिलती हैं। यह वर्म बाल्टिक वर्म से मिलता-जुलता है। अमेरिका और कनाडा के भूविदों ने इस वर्म का विशद अध्ययन किया है। इन शिलाओं में विद्यमान गिरिजन रचनाओं के आधार पर उन्होंने बताया है कि पुराकल्प से पूर्व कम से कम तीन बार गिरिजन क्रिया^३ हुई है। इनमें सर्वप्रथम को लारेन्गियन^४, दूसरी को अलगोमान^५, तीसरी (अन्तिम) गिरिजन क्रिया को किलारनी^६ क्रान्ति के नाम से संबोधित किया गया है। यद्यपि इन तीनों गिरिजन कालों के विषय में हमारा ज्ञान स्वल्प है, पर बाल्टिक तथा अन्य वर्गों में गठित रचनाओं के आश्रय इन तीनों गिरिजन चक्रों की स्थापना उचित ही जँचती है। ब्राजील और गायना का दृढ़ प्रदेश दक्षिणी अमेरिका-महाद्वीप का नाभिक^७ है। यह प्राचीनतम स्फटीय शिलाओं का बना है। इनमें ग्रेनिट, नाइस, शिस्ट और क्वार्ट्जाइट^८ प्रमुख हैं। वीर और उत्साही अन्वेषकों के अभियान का फल है कि अन्टार्कटिक-जैसे अप्रवेश्य प्रदेश का ज्ञान भी हमें प्राप्त हुआ है। इस वर्म की आधार-शिलाएँ भी प्राचीनतम हैं। ये शिलाएँ भ्रंशों से अधिक प्रभावित हैं।

1. Australian Bight

3. Orogenic movements

5. Algomon

7. Nucleus

2. Characteristic

4. Laurentian

6. Killarney

8. Quartzite

भारतीय वर्म

अन्य वर्मों की अपेक्षा भारतीय वर्म की सीमाएँ अधिक स्पष्ट हैं। इसके उत्तर में गंगा-सिन्धु का मैदान तथा और आगे हिमालय पर्वत की श्रृंखलाएँ हैं। पूर्व में बंगाल की खाड़ी और पश्चिम में अरब सागर है। इस वर्म के दक्षिणी कोने को हिन्द महासागर छूता है। यह भारतीय वर्म, जिसे प्रायद्वीपीय भारत भी कहते हैं, पुराकल्प से अब तक जल के ऊपर रहा है। केवल इसके किनारों के कुछ भाग खटीयुग^१ में जल में डूब गये थे। इस वर्म की शिलाएँ बड़ी जटिल हैं। ताप और दाब के प्रभाव में शिलाओं का मूलरूप बदल गया है। इन शिलाओं को दो भागों में विभाजित किया गया है। आद्यशैल-समुदाय, जिसे वैदिक कल्प समुदाय भी कहते हैं तथा दूसरा धारवार शैल-समुदाय। आद्यकल्प की शिलाएँ अरावली पहाड़ियों में विगोपित हैं, जबकि धारवार शैल-समुदाय के अध्ययन का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र मैसूर राज्य का धारवार क्षेत्र है।

भू-अभिनति^२

भूमण्डल के स्थायी भागों का वर्णन उनके निकटवर्ती अस्थायी प्रदेशों के वर्णन के बिना अधूरा ही रहेगा। ये स्थायी प्रदेश कभी जल में निमग्न हो जाते हैं और कभी जल के ऊपर उठ आते हैं। जब ये जल में डूबे रहते हैं, तब नदियों द्वारा लायी मिट्टी, बालू आदि पदार्थ इनमें जमा होते हैं, तथा जब दाब और गति के प्रभाव में ये भाग ऊपर उठते हैं तो इनके साथ इनमें निक्षेपित स्तर भी ऊपर उठ आते हैं। इन स्तरों में दाब तथा क्षैतिजीय बलों के कारण सिकुड़नें पड़ जाती हैं, तथा कभी-कभी बड़ी जटिल रचनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। यही हमारे पर्वत हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि विस्तीर्ण अभिनति ही पर्वतों की जनक है।

इसी की गोद में पर्वतों का पालन-पोषण होता है। विस्तीर्ण अभिनीतियों के सम्बन्ध में एक बात ध्यान रखने योग्य है कि इनमें ज्यों-ज्यों पदार्थ जमा होते जाते हैं ये उनके बोझ से नीचे धँसती जाती हैं और इस प्रकार इनमें सहस्रों फुट मोटे स्तर जमा हो जाते हैं। विश्व की सभी पर्वत-मालाएँ—हिमालय, आल्पस, राकी, एंडीज विस्तीर्ण अभिनीतियों की गोद में फली-फूली हैं। पर पृथ्वी में कितनी बार गिरिजन क्रियाएँ हुईं, यह कहना कठिन है। ज्ञात भौमिक इतिहास के आधार पर पुराकल्प से नव-कल्प तक तीन गिरिजन काल स्थापित किये जा चुके हैं। विश्वास किया जाता है कि पुराकल्प से पूर्व भी तीन या चार बार पर्वत-मालाओं का सर्जन हुआ। यद्यपि इनका स्पष्ट प्रमाण हमें उपलब्ध नहीं है, तथापि कनाडियन वर्म तथा पृथ्वी के अन्य दृढ़ कार्यों की प्राचीन शिलाओं में इनके चिह्न मिले हैं। इनके सम्बन्ध में पहले एक परिच्छेद इंगित हो चुका है।

कैलिडोनियन समुदाय?

पुराकल्प से नवकल्प तक तीन बार गिरिजन क्रिया हुई। सर्वप्रथम उत्तर-पुराकल्प में पर्वतों का सर्जन हुआ। पुराकल्प के आरंभ में ही भूमण्डल का एक भाग जल में डूब गया। इसमें त्रिखण्ड, अवरप्रवालादि, प्रवालादि युग की शिलाओं का चूरा जमा होता गया। किन्तु कुछ समय पश्चात् विपरीत क्रिया आरम्भ हुई। सागर-तल ऊपर उठने लगा। इसमें निक्षेपित स्तरों में क्षैतिजीय बलों के प्रभाव में बलन उत्पन्न हुए। अन्ततः ये पर्वतों के रूप में धरती पर प्रकट हुए। वे भौगर्भिक गतियाँ, जिनके परिणामस्वरूप ये पर्वतमालाएँ ऊपर उठीं, कैलिडोनियन गतियों? के नाम से अभिहित की जाती हैं। कैलिडोनियन गतियों के फलस्वरूप निर्मित पर्वत यूरोप के उत्तर-पश्चिम भाग तथा ब्रिटेन में सुविकसित हैं। स्काटलैंड

के उत्तर-पश्चिमी उच्च-प्रदेश में इन पर्वतों की सबसे अच्छी रचनाएँ पायी जाती हैं। यही प्राचीन कैलिडोनिया है, अतः विश्व भर में इनके समवर्ती पर्वतों को कैलिडोनियन समुदाय कहा जाता है। कैलिडोनियन गतियों के चिह्न अफ्रीका में दक्षिणी सहारा, आस्ट्रेलिया में न्यू साउथ वेल्स, उत्तरी अमेरिका में टैकोनिक पर्वत तथा दक्षिण अमेरिका में ब्राजील की दृढ़काय के पूर्व में मिलते हैं।

हरसीनियन समुदाय^१

हरसीनियन समुदाय के अभ्यन्तर वे सभी पर्वत आ जाते हैं जो अंगार-युग और गिरियुग^२ में होने वाली गतियों के कारण प्रकट हुए। यूरोप के सभी खण्ड पर्वत^३ हरसीनियन गतियों के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आये। इनके भग्नावशेष अब भी स्पेन, आयरलैण्ड, वेल्स, कर्नवाल, फ्रांस, वॉसगैस, हार्ज, यूराल में मिलते हैं। मलाया, जावा, उत्तरी बोर्नियो तथा चीन की सिंग-लिंग-शान श्रेणी में भी हरसीनियन गतियों के चिह्न मिले हैं। आस्ट्रेलिया में क्वीन्सलैंड, न्यू साउथ वेल्स के न्यू इंग्लैंड जिले में तथा न्यूजीलैंड में भी हरसीनियन गतियों के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। उत्तरी अमेरिका में हरसीनियन समुदाय का प्रतिनिधित्व अप्लेचियन माला ने किया है। इसका प्रभाव दक्षिणी अमेरिका की एंडीज माला में भी देखा जा सकता है। अफ्रीका में सहारा के उत्तर तथा कांगों में भी इनके समकालीन वलन^४ हैं। हरसीनियन समुदाय को वेरिस्कन^५ समुदाय के नाम से अभिहित किया जाता है।

1. Hercynian system
2. Carboniferous and Permian periods
3. Block mountains
4. Folds
5. Variscan

आल्पाइन समुदाय^१

उत्तर मध्यकल्प तथा तृतीयक युग^२ में निर्मित पर्वत समुदाय को आल्पाइन समुदाय कहा जाता है। विश्व की समस्त ऊँची पर्वतमालाएँ-आल्प्स, हिमालय, राकी. एंडीज, काकेशस प्रभृति इसी समुदाय के अन्तर्गत परिगणित होती हैं। धरातल-शक्तियाँ इन पर्वतमालाओं को धीरे-धीरे घिस रही हैं, पर इनका अस्तित्व समाप्त करने में अभी उन्हें सहस्रों-लाखों वर्ष लगेंगे। ये पर्वत अपनी युवावस्था में हैं। विभिन्न देशों के भूशास्त्रियों ने इन पर्वत-मालाओं का अध्ययन किया है। उनके परिश्रम का फल है कि इन पर्वतमालाओं के विषय में हमारा ज्ञान अपेक्षाकृत अधिक है। इसका मुख्य श्रेय स्वैस.^३ डिलौन,^४ कोबर,^५ हाइम^६ आदि अनेक भूविदों को है, जिन्होंने पर्वतों के अप्रवेश्य भागों में जाकर वहाँ की शिलाओं का अध्ययन किया। कदाचित् भूविद हाइम की मृत्यु भी आल्प्स पर्वत से गिर जाने से हुई। ऐसे ही महापुरुषों के बलिदानों के फलस्वरूप हमें आल्प्स में विद्यमान संरचनाओं का ज्ञान प्राप्त हुआ है।

अल्पाइन समुदाय पश्चिम में जिब्राल्टर से हिमालय तथा पूर्वी द्वीप समूह तक फैला हुआ है। इन पर्वतों की रचना एक विस्तीर्ण अभिनति में हुई, जिसे स्वैस ने 'टैथीस'^७ नाम दिया है। यह सागर यूरेशिया और अफ्रीका-अरब-भारत के दृढ़ कायों के मध्य स्थित था। इसमें जमा हुए स्तर सम्पीडन के प्रभाव में दो मुख्य मालाओं में प्रकट हुए। एक माला के अन्तर्गत पाइरेनीज, आल्प्स, कारपेथियन और काकेशस पर्वत आते हैं तथा दूसरी दक्षिणी माला में एटलस, ऐपेनाइन, दिनारिक आल्प्स टैरिक

1. Alpine system	2. Upper Mesozoic and Tertiary
3. Suess	4. De Launay
5. Kober	6. Heim
7. Tethys	

और हिमालय की श्रेणियाँ आती हैं। अमेरिका में इनके समकालीन पर्वत राकी और एंडीज हैं।

ज्वालामुखियों की व्यापकता इस नवीनतम समुदाय की विशेषता है। इनमें से बहुत-से ज्वालामुखी आज भी सक्रिय हैं और बहुत-से सुप्ता-वस्था में हैं। भूमण्डल पर ज्वालामुखियों का वर्तमान वितरण अल्पाइन गतियों से ही संबद्ध हैं। अल्पाइन वर्ग की श्रृंखलाएँ, जहाँ-जहाँ पायी जाती हैं, अधिकांशतः ज्वालामुखी पर्वत मिलते हैं। यद्यपि आल्प्स और हिमालय में सक्रिय ज्वालामुखियों का अभाव है, पर वहाँ पर भी आधुनिक ज्वालामुखी क्रिया के प्रमाण विद्यमान हैं। इसके साथ ही विश्व की युवा पर्वतमालाएँ यदा-कदा भूकम्प से ही प्रभावित होती रहती हैं। हिमालय पर्वतीय प्रदेश आसाम तो भूकम्पों का घर ही है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सभी क्रियाएँ, जैसे पर्वत-निर्माण, ज्वालामुखी उभार, भूकम्प आदि पृथ्वी के अन्तर्भाग में होने वाली घटनाओं से ही संबद्ध हैं।

महाद्वीपों की रचना में कैलिडोनियन, हरसीनियन और अल्पाइन गतियों का विशेष योग रहा है, प्रत्येक महाद्वीप की नाभिक तो कोई न कोई दृढ़काय रही है, पर इन गतियों के फलस्वरूप इस काय के चारों ओर स्थल क्षेत्र विकसित हुआ है। उदाहरण के लिए यूरोप को लीजिए। बाल्टिक वर्म इस महाद्वीप का बीज है। कैलिडोनियन गतियों के परिणाम-स्वरूप स्कैन्डीनेविया प्रदेश का विकास हुआ, तदनन्तर हरसीनियन काल में केन्द्रीय यूरोप और यूराल तथा अल्पाइन गतियों के प्रभाव में दक्षिणी यूरोप निर्मित हुआ। इसी प्रकार साइबेरिया-वर्म, भारतीय वर्म और चीनी वर्म के चहुँ ओर इन तीनों गतियों के परिणामस्वरूप विकास हुआ और एशिया महाद्वीप स्थापित हुआ।

इन गतियों के काल के सम्बन्ध में एक बात और जानना आवश्यक है। ये गतियाँ किसी एक विशेष युग में ही सीमित नहीं रही हैं। यदि यह कहा गया है कि कैलिडोनियन गतियाँ अवर प्रवालादि और प्रवालादि युग में हुई, तो इसका तापत्य केवल इतना ही है कि इस युग में ये गतियाँ

सर्वाधिक प्रभावशाली थीं। पर साधारणतः इनका प्रभाव हरसीनियन गतियों के आरम्भ तक रहा। यहाँ तक कि प्रारम्भिक हरसीनियन गतियों को कैलिडोनियन गतियों का अन्तिम चिह्न माना जा सकता है। इसी तरह अन्तिम हरसीनियन गतियाँ अल्पाइन गतियों की भूमिका मात्र थीं। पृथ्वी के अन्तर्भाग में यह घटना-चक्र चलता ही रहता है। उपरिवर्णित गतियाँ इस चक्र की बृहत् घटनाएँ हैं। पर इन बड़ी घटनाओं के अतिरिक्त और भी बहुत-सी गतियाँ हुई हैं। किन्तु ये बड़ी गतियों की तुलना में छोटी हैं और इन्होंने अपेक्षाकृत अल्प क्षेत्र को प्रभावित किया है।

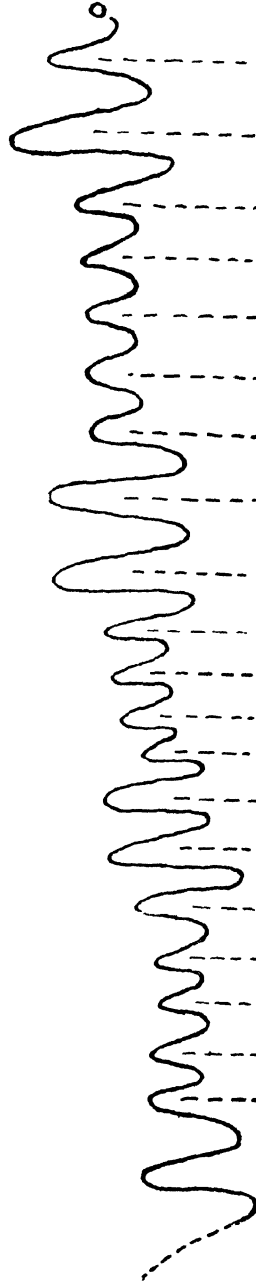
इन अल्प-गतियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें उन देशों के भौमिक इतिहास का अध्ययन करना होगा, जहाँ पर भौमिकीज्ञों ने शिलाओं का सूक्ष्म विवेचन कर उनमें विद्यमान रचनाओं के आधार पर अल्प-चक्रों को स्थापित किया है। यूरोप में पुराकल्प से अब तक तीन बृहत् तथा बीस अल्पचक्र स्थापित किये जा चुके हैं। इसी प्रकार अमेरिका में भी बीस अल्पचक्र ज्ञात किये गये हैं। चार्ल्स शुकर्ट^१ ने उत्तरी अमेरिका के बदलते हुए भूगोल का अध्ययन करके बताया है कि सागर ने कितनी बार अपनी सीमा को लाँघकर स्थलीय प्रदेश के कुछ भागों को जलप्लावित किया। यह दर्शाने के लिए आपने जो चित्र खींचा है, उससे प्रतीत होता है कि सागर ने कम से कम बीस बार स्थल पर आक्रमण किया। चित्र २६क में यूरोप और अमेरिका से उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर भूविद् होम्स द्वारा रचित चक्र-सूची चित्र सहित दी गयी—

उ० अमेरीका

वर्तमान काल

यूरोप

कास्केडियन लारा-
माइड क्रान्ति



१ उपर तृतीयक

२ अवर तृतीयक

} आल्पाइन
क्रान्ति

३ उपर खटी

४ अवर खटी

५ महासरट

६ रक्ताश्म

७ गिरि-रक्ताश्म

८ गिरि-अंगार

} हरसीनियन
क्रान्ति

निवेडा पर्वत

अप्लेचियन औया-
चिता क्रान्ति

९ उपर अंगार

१० अवर अंगार (ख)

११ अवर अंगार (क)

१२ उपर मत्स्य

१३ मध्य मत्स्य

१४ अवर मत्स्य

१५ प्रवालादि

} कैलीडोनियन
क्रान्ति

अकाडियन पर्वत

टैकोनिक क्रान्ति

१६ उपर अवर प्रवालादि

१७ मध्य " "

१८ निम्न " "

१९ उपर त्रिखण्ड

२० अवर त्रिखण्ड

किलारनियन क्रान्ति

चारनियन
क्रान्ति

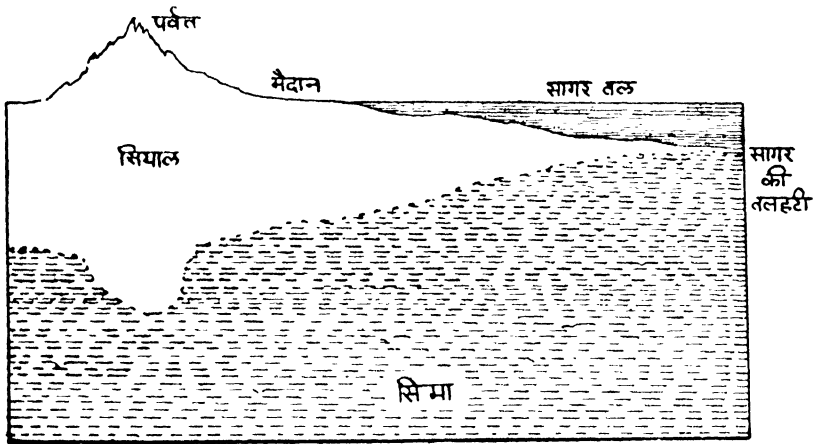
पुरा त्रिखण्ड

चित्र २६ क—होम्स द्वारा रचित चक्रसूची

इस चक्र को देखने से जिज्ञासा होती है कि इस तालबद्धक्रम का कारण क्या है। प्रो० जौली ने हमारी इस जिज्ञासा का समाधान किया है।

जौली का महत्वपूर्ण वाद

महाद्वीप हल्के पदार्थों के बने हैं। इन्हें सियाल^१ कहा जाता है। इसके विपरीत महासागरों की तलहटी भारी पदार्थों से बनी है। इन्हें सिमा^२ कहा गया है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि महाद्वीप ग्रेनित शिला के तथा सागर तल बेसाल्ट शिलाओं के बने हैं। इसका औसत आपेक्षिक घनत्व क्रमशः २.६७ तथा ३.०० है। कम घनत्व वाले सियाल भाग (महाद्वीप) अधिक घनत्व वाले सिमा पर तैर रहे हैं। या यों कहा जा सकता है कि सियाल भाग अधः स्तृत^३ सन्निहित हैं।^४



चित्र २७—सियाल और सिमा

सियाल और सिमा-सभी शिलाएँ रेडियो-सक्रिय^५ हैं, अर्थात् सभी

1. Sial^१

2. Sima

3. Substratum

4. Embedded

5. Radioactive

शिलाओं में कम या अधिक मात्रा में रेडियो-सक्रिय तत्त्व विद्यमान हैं। इनका स्वतः ही विघटन हो रहा है, जिसके फलस्वरूप ताप उत्पन्न होता है। सियाल शिलाएँ सिमा की अपेक्षा अधिक रेडियो-सक्रिय हैं। रेडियो-सक्रिय विधि से उत्पन्न ऊष्मा की गति बहुत कम है, पर दीर्घ काल तक एकत्र होने से यह अल्प मात्रा भी बढ़कर अत्यधिक हो जाती है और पृथ्वी में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने में समर्थ होती है।

पृथ्वी की सतह से जो ऊष्मा लुप्त होती है, उसकी मात्रा नापी जा सकती है। जौली के विचार में पृथ्वी की सतह से लोप होने वाली ऊष्मा की मात्रा सियाल शिलाओं में रेडियो-सक्रिय पदार्थों के विघटन से उत्पन्न ऊष्मा की मात्रा से कहीं अधिक है। यदि सियाल भागों की मोटाई लगभग अठारह मील है, तब उसके निचले भाग का तापमान १०५० अंश सेंटीग्रेड से अधिक होगा। यदि सियाल के नीचे के अधःस्तृत से ऊष्मा उपलब्ध नहीं होती है, तो सियाल के निचले भागों का तापमान एक-सा होगा। उसमें तापमान प्रवणता नहीं मिलेगी। अतः अधःस्तृत का तापमान भी १०५० अंश सेंटीग्रेड होगा।

महासागरों के नीचे परिस्थिति बिल्कुल भिन्न है। महासागरों की तली में कदाचित् सियाल नहीं है। अतः सिमा भागों से प्राप्त ऊष्मा सागर-जल में लुप्त हो जाती है। किन्तु यह स्थिति सिमा के ऊपरी स्तरों तक ही सीमित है, सिमा के निचले स्तरों में ऊष्मा एकत्र होती रहती है। यह ऊष्मा इतनी अधिक होती है कि बेसाल्ट शिलाएँ (जिनसे सिमा बना है) पिघल जाती हैं। यदि यह मान लिया जाय कि सिमा से सियाल स्तरों को तथा सिमा के निचले भागों से सिमा के ऊपरी भागों की ओर ऊष्मा का प्रवाह नहीं हो पाता, तब ऊष्मा सिमा के निचले स्तरों में एकत्र होती रहेगी। बेसाल्ट का गलनांक ११५० अंश सेंटीग्रेड है अर्थात् यह

1. Heat

2. Gradient

3. Melting point

अधःस्तृत के तापमान से १०० अंश अधिक है। अतः अधःस्तृत के द्रवीभूत होने के लिए कम से कम १०० अंश तापमान बढ़ना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि गलनांक पर भी पदार्थ ठोस अवस्था में रहे तो उसको द्रवीभूत अवस्था में लाने के हेतु गुप्त ऊष्मा की भी आवश्यकता होगी। जौली के अनुमान के अनुसार रेडियो-सक्रिय विधि से इस आवश्यक ऊष्मा को एकत्र होने में लगभग (३३०००,०००) तीन करोड़ तीस लाख वर्ष लगेंगे। किन्तु यदि वेसाल्ट की रेडियो-सक्रियता अल्प है तो इस ऊष्मा के एकत्र होने में (५६०००,०००) पाँच करोड़ साठ लाख वर्ष लग जायेंगे।

तापवृद्धि के परिणामस्वरूप यदि अधःस्तृत द्रवीभूत हो जाय तो पृथ्वी की सतह पर बड़े अद्भुत परिवर्तन होंगे। यथा—

१. सर्वप्रथम पदार्थ के गलने के कारण सिमा का प्रसार होगा, फल-स्वरूप गोलक^१ के व्यास में वृद्धि होगी।

२. सिमा के घनत्व में कमी होने के कारण सियाल भाग उसमें और अधिक डूब जायँगे। इसके फलस्वरूप महासागरों का जल महाद्वीपों के किनारों को जलप्लावित कर देगा। इसे ही सागर का अतिक्रमण^२ कहा गया है। इन जलप्लावित भागों में स्तरों का जमा होना आरम्भ हो जाता है। यही स्तर गिरिजन गतियों के प्रभाव में वलित^३ हो जाते हैं और अन्ततः पर्वतों के रूप में प्रकट होते हैं।

३. गोलक के व्यास में वृद्धि के कारण सागर की तली में बहुत-सी दरारें पड़ जायँगी। इन्हीं दरारों के द्वारा द्रवीभूत वेसाल्ट ऊपर आयेगा। कदाचित् महासागरीय द्वीपों की रचना इसी वेसाल्ट के ऊपर आकर जमने से हुई है।

४. महाद्वीप जो सिमा में तैर रहे हैं, वेलावल^४ के प्रभाव में पश्चिम

1. Globe	2. Transgression of seas	३. Folded
4. Tidal forces		

दिशा की ओर गतिमान् होंगे। इस प्रकार उनके स्थान पर सागर का प्रवेश होगा और एकत्र ऊष्मा बाहर निकल जायगी। इस प्रकार ताप में कमी होगी।

५. ताप के पुनः गिर जाने से अधःस्तृत पुनः जम जायगा। अधःस्तृत के ठोस होने के फलस्वरूप पृथ्वी का व्यास कम होकर सामान्य हो जायगा। महाद्वीप पुनः पृथ्वी के केन्द्र की ओर अग्रसर होंगे।

६. जमने पर सिमा के घनत्व में वृद्धि होगी, अतः महाद्वीपीय भाग, जो सिमा के पिघलने पर उसमें अपेक्षाकृत और नीचे चले गये थे—ऊपर उठ जायँगे। फलस्वरूप महाद्वीपों के किनारे, जहाँ सागर ने अतिक्रमण किया था, जल से ऊपर उठ जायँगे, अर्थात् अतिक्रमणीय सागरों का लोप हो जायगा।

७. अधःस्तृत के पिघलने पर सागर-तल में वृद्धि हुई तथा पुनः उसके जमने पर सागर-तल संकुचित हो गया। संकुचित क्रिया से अतिक्रमणीय सागरों में निक्षेपित स्तरों में वलन उत्पन्न हो गये।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि ये सभी कार्य बहुत धीरे-धीरे होते हैं। इस एक पूरे चक्र में लाखों वर्षों का समय लगता है।

सिमा के ठोस अवस्था से द्रव अवस्था में आकर पुनः ठोस हो जाने की अवधि को एक क्रान्ति कहते हैं। ज्ञात किया गया है कि सिमा के गलन में ३३,०००,००० से ६०,०००,००० वर्ष तक का समय लगता है। इस प्रकार लगभग प्रति तीन करोड़ वर्ष के उपरान्त उपरि लिखित सभी क्रियाओं की पुनरावृत्ति होगी, अर्थात् प्रति तीन करोड़ वर्ष में अधःस्तृत पिघलेगा, उसके व्यास में वृद्धि होगी, पर घनत्व कम होगा। महाद्वीप अधःस्तृत में और नीचे चले जायँगे, उनके किनारे के भाग सागर-जल से ढक जायँगे और उनमें स्तरों का निक्षेपण आरम्भ हो जायगा। ताप में कमी होने पर अधःस्तृत पुनः जमने लगेगा। उसका व्यास कम होगा। संकुचन के फलस्वरूप स्तरों में वलन पड़ जायँगे। घनत्व में वृद्धि होगी, जिसके कारण महाद्वीप ऊपर उठेंगे, उनके किनारे के वे भाग, जो

जल से ढक गये थे और जहाँ स्तरीकरण हुआ था, जल से बाहर आ जायँगे।

भौमिकीज्ञों ने ज्ञात किया है कि पुराकल्प से अब तक ऐसे बीस चक्र हो चुके हैं। इस प्रकार पुराकल्प से अब तक ६० करोड़ वर्ष बीत चुके हैं। अधिक काल व्यतीत होने पर अर्थात् छः या सात चक्रों की अवधि में पृथ्वी के गंभीर स्तरों भी पिघल जायँगे और उनके फलस्वरूप होने वाले परिवर्तन पृथ्वी के बृहत् क्षेत्र को प्रभावित करेंगे। प्रति तीन करोड़ के उपरान्त होने वाले चक्र को अल्पचक्र तथा छह-सात अल्प चक्र की अवधि के उपरान्त होने वाले चक्र को बृहत् चक्र कहा जाता है। पुराकल्प से पूर्व के अल्पचक्रों का हमारा ज्ञान अति सीमित है। किन्तु यह तथ्य सर्वमान्य है कि भौमिक काल के आरम्भ से पुराकल्प के आरम्भ तक भौमिक इतिहास में तीन बृहत् गतियाँ हुई हैं। बृहत् चक्रों की पुनरावृत्ति लगभग २० करोड़ वर्षों के उपरान्त होती है, अतः पुराकल्प से पूर्व ही भौमिक इतिहास के लगभग ६० करोड़ वर्ष व्यतीत हो गये थे। इस प्रकार पृथ्वी की आयु सौ करोड़ वर्ष से कहीं अधिक है। ये बृहत् चक्र ही पृथ्वी के इतिहास की महान् क्रान्तियाँ हैं। जिस प्रकार एक क्रान्ति के फलस्वरूप किसी देश की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक स्थिति में कायापलट हो जाता है, उसी प्रकार पृथ्वी के इतिहास की कैलिडोनियन, हरसीनियन और अल्पाइन क्रान्तियों ने अपने समय में भूमण्डल की रूपरेखा ही बदल दी। भूमण्डल का वर्तमान स्वरूप अल्पाइन क्रान्ति की ही देन है।

अध्याय ८

रेडियो-सक्रियता और भौमिक काल

‘ज्ञान प्रतिक्षण मरकर जी रहा है। यह एक ऐसे वृक्ष के समान है जिससे पुरानी सूखी पत्तियाँ झड़ रही हैं और नयी शीपलें निकल रही हैं।’

—सर वाल्टर रैले

पृथ्वी की आयु के सम्बन्ध में भौतिकी और भौमिकी के क्षेत्र में जो विवाद उठ खड़ा हुआ था, उसका समाधान प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान् हैनरी बैकरल की गवेषणाओं से हो जायगा, ऐसी स्वप्न में भी किसी को आशा न थी। स्वयं प्रो० बैकरल को भी यह ज्ञान न था कि प्रयोगशाला में स्फुरदीप्ति^१ क्रिया का अध्ययन करते समय एक ऐसी नयी क्रिया दिखाई पड़ेगी, जो वैज्ञानिक जगत् में उन्हें सदा के लिए अमर बना देगी। बैकरल महोदय की यह नयी खोज थी ‘रेडियो-सक्रियता’^२ जिसका भान उन्हें सहसा ही १८९६ में हुआ।

रेडियो-सक्रियता क्या है? सरल रूप में इसे समझाने के लिए हम प्रो० ए० सी० लाने द्वारा प्रयुक्त द्युतिमान्^३ घड़ी का उदाहरण लेते हैं। हममें बहुतों के पास ऐसी घड़ियाँ होंगी जो अँधेरे में भी चमकती हैं। एक ऐसी घड़ी लेकर हम पहले कम रोशनी वाले कमरे में लगभग १० मिनट बैठें, तदुपरान्त एक मिनट के लिए किसी अँधेरे कमरे में बैठें। इस प्रकार

1. Phosphorescence

2. Radioactivity

3. Luminous

जब हमारी आँखें अधिक सुग्राही^१ हो जायँ तब उस चमकदार घड़ी को हम एक अच्छे आतशी शीशे^२ की सहायता से देखें। घड़ी प्रकाश से काँपती या फड़फड़ाती दिखाई पड़ेगी। यदि हमारा आतशी शीशा अधिक शक्ति-शाली है अर्थात् दसगुना या उससे अधिक बड़ा दिखाता है, तो प्रतीत होगा कि वह अगणित चिनगारियों की बनी हुई है, जैसे कि एक राकेट से विस्फोटन पर चिनगारियाँ निकलती हैं। इनमें से प्रत्येक चिनगारी एक परमाणु^३ के विस्फोटन की द्योतक है। विस्फोटन के फलस्वरूप निकला हुआ कण (हीलियमकण) सुग्राही जिंक सल्फाइड^४ से टकराता है और उसमें चमक आ जाती है।

पर रेडियो-सक्रियता का मर्म समझने के लिए हमें परमाणुओं की कथा संक्षेप में जाननी होगी। परमाणु-विचारधारा अति प्राचीन है। भारतीय दर्शन में अणुओं-परमाणुओं के सम्बन्ध में मौलिक चिंतन किया गया है। ग्रीक दार्शनिकों ने भी पदार्थ की सत्ता परमाणुओं के कारण मानी है। प्रकृतिवाद के अनुसार विश्व भूतों से बना है। भूत अन्त में एक प्रकार के परमाणु हैं या अनेक प्रकार के, यह विवादग्रस्त विषय है। किन्तु मौलिक सिद्धान्त यह है कि सारा विश्व भूतों का बना हुआ है।^५

वैज्ञानिक क्षेत्र में परमाणुवाद को उपस्थित करने का श्रेय ब्रिटिश वैज्ञानिक जान डाल्टन^६ को है। १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में आपने सुलभ उदाहरण प्रस्तुत कर परमाणु की एक इकाई के रूप में स्थापना की। कार्बन और आक्सिजन का योग दो प्रकार से होता है। एक में भार

1. Sensitive 2. Magnifying lens 3. Atom

4. Zinc Sulphide

५. दर्शन-संग्रह—डा० दीवानचन्द्र, १९५८, पृ० ७।

6. John Dalton

के हिसाब से कार्बन के १२ भाग आक्सिजन के ३२ भाग से मिलकर कार्बन डाइ आक्साइड बनाते हैं। दूसरी स्थिति में कार्बन के १२ भाग आक्सिजन के १६ भाग से मिलकर कार्बन-मोनो-आक्साइड बनाते हैं। डाल्टन ने प्रत्येक तत्त्व के कार्बन और आक्सिजन को समान परमाणुओं का बना माना है। इस आधार पर कार्बन-डाइ-आक्साइड का एक अणु^१ कार्बन के एक परमाणु और आक्सिजन के दो परमाणुओं के योग से बना है, तथा कार्बन-मोनो-आक्साइड का एक अणु कार्बन और आक्सिजन दोनों के एक-एक परमाणु के योग से बना है।

इसी प्रकार जल का एक अणु हाइड्रोजन के दो परमाणुओं तथा आक्सिजन के एक-परमाणु के योग से बना है। भार के हिसाब से दो भाग हाइड्रोजन और १६ भाग आक्सिजन के संयोजन से जल की रचना होती है। यदि हाइड्रोजन के एक परमाणु के भार को इकाई मान लिया जाय तो उसी आधार पर आक्सिजन का भार १६ हो जायगा तथा उपरिलिखित उदाहरण से कार्बन का भार १२ हो जायगा। हाइड्रोजन के एक परमाणु-भार को इकाई मानना सुविधाजनक है, क्योंकि यह सब से हलका तत्त्व है।

हमें अब तक ९२ तत्त्व ज्ञात हैं। इनमें हाइड्रोजन सबसे हलका तथा यूरेनियम सबसे भारी है। सबसे भारी तत्त्व यूरेनियम के नामकरण का इतिहास रोचक है। सन् १७८१ में खगोलज्ञ हरशेल ने यूरेनस ग्रह का पता लगाया। लगभग ८ वर्ष बाद सन् १७८९ में क्लापरोथ ने इस तत्त्व को पहचाना। वोडे ने इस नये तत्त्व का नाम हरशेल द्वारा ज्ञात यूरेनस ग्रह के नाम पर यूरेनियम रख दिया।

अणुओं के परस्पर सहयोग से ही सभी प्राकृतिक वस्तुओं की रचना हुई। अणुओं और परमाणुओं की संख्या अनन्त है। यदि हम एक ग्राम-

अणु पानी (अर्थात् १८ ग्राम पानी) लें तो उसमें जल के 6.06×10^{23} अणु होंगे। यह एक बहुत बड़ी संख्या है। वह संख्या पृथ्वी पर वनस्पति के आगम से अब तक उगे गेहूँ और राई के कणों से कई हजार गुने से भी अधिक है।^१

अणु के आकार का ज्ञान कराने के लिए हम इसकी तुलना पृथ्वी के सबसे छोटे शाकाणु^२ से करेंगे। शाकाणु आकार में इतना छोटा है कि हम उसे साधारण अणुवीक्ष^३ से भी नहीं देख सकते। लगभग १००० गुना बड़ा दिखाने वाले अणुवीक्ष की सहायता से ही हम शाकाणुओं का अस्तित्व जान पाते हैं। इनका आकार लगभग ०.०००२ मिलीमीटर होता है। इतने छोटे आकार का शाकाणु भी जल के एक परमाणु की तुलना में एक हजार गुना बड़ा है—अर्थात् सबसे छोटे शाकाणु में भी २०००,०००,००० परमाणु होने हैं। इतनी तो सम्पूर्ण पृथ्वी की प्रायः जनसंख्या है।^४

पानी की तीन बूंदों में विद्यमान जल-अणुओं की यदि एक कड़ी (जंजीर) बनायी जाय तो वह पृथ्वी से सूर्य तक छह बार ले जायी और छह बार वापिस लायी जा सकती है। यह कड़ी लगभग ९,४००,०००,००० किलोमीटर लम्बी होगी।^५

सन् १८१५ में प्राउट ने बताया कि सभी तत्वों के परमाणु हाइड्रोजन के परमाणुओं से बने होते हैं। आक्सिजन का परमाणु हाइड्रोजन के १६ परमाणुओं के पास बंधा होने से बना है। इसी प्रकार कार्बन के एक परमाणु में हाइड्रोजन के १२ परमाणु होते हैं। प्राउट के इस वाद का

1. Geochemistry for Everyone—A. Fersman, 1958, p. 29.

2. Bacterium

3. Microscope

4. Geochemistry for Everyone—A Fersman p. 29

५. वही, पृ० २९।

आधार तत्त्वों का परमाणुभार था। अब तक तत्त्वों का परमाणु भार एक पूर्ण संख्या ज्ञात किया गया था। जैसे, हाइड्रोजन का १, हीलियम का ४, आक्सिजन का १६, आदि। पर जब यह ज्ञात हुआ कि बहुत-से तत्त्वों का परमाणु-भार पूरी संख्या न होकर भिन्न में है, जैसे क्लोरीन का ३५.५, सोने का १९७.२, टिन का ११८.७० आदि, तो प्राउट के वाद को बड़ा धक्का लगा। उस समय यह कोई मानने के लिए तैयार न था कि क्लोरीन के एक परमाणु में हाइड्रोजन के $35\frac{1}{2}$ परमाणु हैं। इस मान्यता का अर्थ होता, 'परमाणु का भी विभाजन', जबकि उस समय परमाणु को अविभाज्य माना जाता था। अतः क्लोरीन आदि तत्त्वों के परमाणु-भार को समझाने में असमर्थ होने के कारण 'प्राउट का वाद' त्याग दिया गया।

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। सर जे० जे० टामसन और डॉ० एफ डब्लू० आस्टन के प्रयोगों के फलस्वरूप यह समस्या सुलझ गयी। आपने शीशे की नली में एक गैस को कम दबाव पर रखकर उसमें विद्युत् विमर्जित की। इस नली में बहुत-सी नयी बातें दिखलाई पड़ीं। दबाव बहुत कम कर देने पर नली में कणिकाँ तीव्र गति में ऋणाग्र भाग से धनाग्र भाग की ओर जाती दिखाई पड़ी। इन्हीं कणिकाओं को अब 'इलेक्ट्रान' नाम से पुकारा जाता है। इलेक्ट्रान अपने साथ ऋण विद्युत् भार ले जाते हैं। अतः यह प्रमाणित हुआ कि परमाणु भी विभाज्य है और पदार्थ की सबसे छोटी इकाई इलेक्ट्रान है। इलेक्ट्रान की संहति हाइड्रोजन परमाणु की संहति की १/१८४० है।

सन् १९१२ में सर जे० जे० टामसन तथा सन् १९१९ में डॉ० आस्टन ने अपने प्रयोगों के आधार पर बताया कि अधिकतर रासायनिक तत्व समस्थानिकों के मिश्रण हैं। उदाहरणार्थ 'नियोन' गैस जिन परमाणुओं

1. Fraction	2. Corpuscle	3. Cathode	4. Anode
5. Electron	6. Isotopes	7. Neon	

से बनी है, वे परमाणु दो प्रकार के हैं। एक प्रकार के परमाणुओं का परमाणु-भार २० है और दूसरे प्रकार के परमाणुओं का परमाणु-भार २२ है। एक तत्व के इन विभिन्न परमाणुओं को ही 'समस्थानिक' कहा गया है। नियोन की रचना बीस परमाणु-भार वाले ९ परमाणुओं तथा २२ परमाणु-भार वाले १ परमाणु के योग से हुई है। तभी नियोन का

$$\text{परमाणु-भार } २०.१८ \text{ है } \left[\frac{२० \times ९ + २२ \times १}{१०} = \frac{२०२}{१०} = २०.२ \right]$$

इसी प्रकार क्लोरीन के भी दो समस्थानिक हैं। इनके परमाणु-भार क्रमशः ३५ और ३७ हैं। क्लोरीन में हलके परमाणुओं की संख्या भारी परमाणुओं की संख्या की अपेक्षा तीन गुनी अधिक है। अतः क्लोरीन का परमाणु-भार, $= \frac{३ \times ३५ + ३७}{४} = ३५.५$ हुआ। टिनके दस समस्थानिक हैं। समस्थानिकों की मान्यता पर सब रासायनिक तत्वों का अणुभार समझाया जा सकता है।

विसर्जन नली^१ में यदि एक धातु की प्लेट को इलेक्ट्रान की धारा के मार्ग से कुछ झुका कर रख दिया जाय तो नली से बड़ी वेधक किरणें बाहर निकलती हैं। आरम्भ में इनके स्वभाव से परिचित न होने के कारण इन्हें बीज गणित के चिन्ह $\times$ (एक्स) के ऊपर एक्स-रे या एक्स-किरण के नाम से संबोधित किया गया। अब यह ज्ञात हो चुका है कि एक्स-किरण एक प्रकार का विकिरण^२ है जिसका तरंग-दैर्घ्य^३ प्रकाश की अपेक्षा बहुत कम है। एक्स-किरणों की वेधक शक्ति इतनी प्रबल होती है कि ये हमारे शरीर में प्रवेश कर जाती हैं। इन्हीं की सहायता से हमारे शरीर के भीतरी भागों के चित्र भी लिये जाते हैं।

कुछ पदार्थों पर एक्स-किरणों का प्रभाव आश्चर्यजनक होता है।

ये पदार्थ एक्स-किरणों के प्रभाव में प्रकाश फेंकना आरम्भ कर देते हैं। इस क्रिया को प्रतिदीप्ति^१ कहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं जो एक्स-किरणों, पार-वैगनी प्रकाश^२ या ताप आदि ऐसे ही किसी स्रोत के पृथक् करने के बाद भी, एक अँधेरे कमरे में कुछ देर तक प्रकाश देते रहते हैं। इन पदार्थों को स्फुर-दीप्ति^३ पदार्थ तथा इस परिवृत्ति को स्फुर-दीप्ति कहते हैं। निष्कर्ष यह कि कुछ पदार्थों में प्रकाश-संचय करने की शक्ति होती है।

हैनरी वैकरल ने विचार किया कि जब एक्स-किरणों के प्रभाव में कुछ पदार्थों में स्फुर-दीप्ति क्रिया उत्पन्न हो जाती है, तब यह भी संभव है कि स्फुर-दीप्ति से एक्स-किरण उपलब्ध हो जाय। अतः वैकरल ने बहुत-से पदार्थों को सूर्य के प्रकाश में विगोपित करने के पश्चात् उन्हें काले कागज से लपेट कर प्रत्येक को एक फोटोग्राफिक प्लेट पर रख दिया। यदि किसी पदार्थ से एक्स-किरण निकलती तो वह काले कागज को पार करके फोटोग्राफिक प्लेट पर अपने चिह्न छोड़ जाती और वह फोटोग्राफिक प्लेट धुंधली हो जाती। वैकरल को अपने प्रयासों में आरम्भ में कोई सफलता नहीं मिली। पर जब उन्होंने विरल धातु यूरेनियम के लवण को सूर्य के प्रकाश में विगोपित कर काले कागज से लपेट कर फोटोग्राफिक प्लेट पर रखा, तो कुछ समय बाद प्लेट धुंधली हो गयी। केवल इतना ही नहीं, हैनरी वैकरल ने इस दिशा में एक और भी महत्वपूर्ण खोज की, जिसने भौतिकी के क्षेत्र में तहलका मचा दिया। आपने बताया कि यूरेनियम के लवण स्वतः ही निरन्तर विकिरण करते रहते हैं। उनके विकिरण के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उन्हें सूर्य या अन्य किसी प्रकाश-स्रोत के प्रभाव में रखा जाय।

वैकरल की इस खोज की ओर विश्व की महान् वैज्ञानिक युगल जोड़ी

का ध्यान आकृष्ट हुआ। यूरेनियम के इस महत्त्वपूर्ण गुण-विकिरण को तो सबने जान लिया था, किन्तु यह विकिरण किस प्रकार का है, इस विकिरण का स्रोत क्या है—कल्पना का विषय ही बना रहा। मन्या स्कोलोडोव्सकी,^१ जिन्हें विश्व मेरी क्यूरी^२ के नाम से जानता है, तथा उनके पति डा० पियरे क्यूरी^३ ने प्रश्न किया कि 'यूरेनियम को यह शक्ति कहाँ से प्राप्त हुई।' इस विकिरण की प्रकृति क्या है?'

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए मेरी क्यूरी और उनके पति को कितना श्रम करना पड़ा, कितनी अमुविधाओं का सामना करना पड़ा तथा वैज्ञानिक क्षेत्र में कितने धीरज से काम लेना पड़ा—यह सभी गवेषकों के लिए आदर्श है। अतः मेरी क्यूरी के श्रम के फलस्वरूप दो नये तत्त्व रेडियम और पोलोनियम की खोज की कथा संक्षेप में बताना अप्रासंगिक न होगा। इस कथा से प्रेरित होकर यदि दो एक विद्यार्थियों में भी मेरी क्यूरी-जैसी प्रेरणा जग उठे, तो किसी भी ग्रन्थ का लिखना सफल माना जायगा।

यूरेनियम खनिजों के विकिरण की प्रकृति को जानने के हेतु मेरी क्यूरी ने भौतिकी के सिद्धान्तों का आश्रय लिया। आपने बताया कि विकिरण भी एक परमाणु गुण है। विकिरण विधि यद्यपि केवल यूरेनियम लवणों में ही देखी गयी है, पर यह शक्ति अन्य खनिजों में भी निहित हो सकती है। अतः मेरी क्यूरी ने सभी ज्ञात रासायनिक पदार्थों की जाँच आरम्भ कर दी। फलस्वरूप थोरियम के लवणों में भी विकिरण दिखाई पड़ा। मेरी क्यूरी ने अब यूरेनियम और थोरियम के लवणों के अध्ययन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। प्रयोगशाला में आपने देखा कि कुछ पदार्थों का विकिरण (रेडियो-सक्रियता) अत्यधिक है, उनका विकिरण भी यूरेनियम और थोरियम की अपेक्षा कहीं अधिक है। मेरी क्यूरी ने विचार किया कि अवश्य ही कोई नया रासायनिक तत्त्व उन लवणों में विद्यमान है।

यूरेनियम अयस्क' पिचब्लैण्ड' में इस अत्यधिक शक्तिशाली नये तत्त्व की विद्यमानता प्रकट हुई। मेरी क्यूरी ने रासायनिक विश्लेषण कर पिचब्लैण्ड के रासायनिक तत्त्वों को पृथक् किया, उनकी रेडियो-सक्रियता मापी। पिचब्लैण्ड के दो भिन्न-भिन्न रासायनिक अंशों में रेडियो सक्रियता अधिक मात्रा में केन्द्रित हुई। अतः अब एक नहीं, वरन् दो नये शक्तिशाली तत्त्वों की सम्भावना प्रकट हुई। इनमें से एक को मेरी ने अपनी जन्मभूमि पोलैण्ड के नाम पर 'पोलोनियम' नाम दिया तथा दूसरे को 'रेडियम'।

रासायनिकी के क्षेत्र में इस घोषणा का स्वागत नहीं किया गया। रासायनशास्त्री कल्पित वस्तु पर विश्वास नहीं करता। किसी वस्तु के प्रति आस्था होने के लिए आवश्यक है कि वह उस वस्तु का वैज्ञानिक निरीक्षण और परीक्षण कर सके—उस वस्तु को देख सके, उसे छू सके, उसका भार जान सके, अम्लों आदि से उसकी जाँच कर सके और अन्ततः उसका परमाणु-भार जान सके। इसलिए मेरी और पियरे क्यूरी के लिए आवश्यक हो गया कि वे इन तत्त्वों को पृथक् करके प्रत्यक्ष रूप में दिखायें।

इन दो तत्त्वों—पोलोनियम और रेडियम को पृथक् करने के लिए की गयी गवेषणाएँ बड़ी रोमांचकारी हैं। अत्यधिक रेडियो-सक्रिय पदार्थों में भी इन नये तत्त्वों की मात्रा अत्यल्प थी। अतः इन तत्त्वों को पृथक् करने के लिए यूरेनियम अयस्कों की विशाल राशि की आवश्यकता थी। इतना अधिक यूरेनियम अयस्क पिचब्लैण्ड कहाँ से और कैसे प्राप्त किया जाय ?

यदि किसी तरह निजी स्वल्प वचन से तथा प्रो० स्वैस और वियना की 'माइंस अकादमी' की सहायता से आस्ट्रिया की सरकार ने इन दो फ्रांसीसी पागलों को एक टन पिचब्लैण्ड देना स्वीकार भी कर लिया, तो समस्या थी एक बड़ी सुव्यवस्थित प्रयोगशाला की, जहाँ पर यह कार्य किया जाता। डा० पियरे क्यूरी 'सौरवोन' की विशाल प्रयोगशालाओं का एक छोटा कमरा

भी अपने खोज-कार्य के लिए प्राप्त न कर सके, और अन्त में उन्हें 'स्कूल आफ फिजिक्स' की जहाँ पर वे अध्यापक थे, शरण में जाना पड़ा। वहाँ जिस झोपड़ी में उन्होंने काम किया, वहाँ न अच्छा फर्श था और न अच्छी छत ही थी। छत से बरसात का पानी बूँद-बूँद करके टपकता था, अतः इन्हें अपने यंत्रों की विशेष सुरक्षा करनी पड़ती थी। गर्मी में अधिक गर्म और सर्दी में अधिक सर्द—इस कमरे में पियरे और मेरी क्यूरी अपने कार्य में तल्लीन रहते थे। डॉ० पियरे क्यूरी पिचब्लैण्ड के भारी बोरे अपनी पीठ पर लाद कर लाते थे। इनमें से एक-एक किलोग्राम पिचब्लैण्ड लेकर ये ही दोनों—पति-पत्नी प्रातः से सायं तक भौमिक और रासायनिक क्रियाओं में व्यस्त रहते थे।

इन प्रतिकूल परिस्थितियों में १८९८ से १९०२, निरंतर चार वर्षों तक मेरी और पियरे ने इन दो नये तत्त्वों को पृथक् करने के लिए घोर तपस्या की। सतत चार वर्षों तक ये स्वयं ही भौतिकी और रासायनिकी के विशेषज्ञ थे, स्वयं ही यंत्रों के निर्माणकर्ता इन्जीनियर थे और स्वयं ही प्रयोगशाला में काम करने वाले मजदूर भी। सन् १९०२ में एक रात को नौ बजे प्रयोगशाला से आकर विश्राम करने के लिए जाती हुई मेरी क्यूरी के हृदय में पुनः प्रयोगशाला में जाने की सहसा अन्तः प्रेरणा जगी। क्यूरी दम्पति प्रयोगशाला के लिए चल दिये। यह अन्तः प्रेरणा ही उनकी तपस्या के सफलीभूत होने का वरदान था। उस झोपड़ी-प्रयोगशाला में रेडियम का पृथक् अस्तित्व स्थापित हो चुका था। वहाँ रेडियम तीव्रता से चमचमा रहा था।

मेरी क्यूरी ने रेडियम का परमाणु भार (२२५) ज्ञात किया। इसकी रेडियो-सक्रियता यूरेनियम की अपेक्षा दस लाख गुनी अधिक है। यह एक विरल तत्त्व है, जिसको पृथक् करना बड़ा कठिन है। यही कारण है कि एक औंस रेडियम का मूल्य १५०,००० पौंड (लगभग २५ लाख रुपया) से अधिक है।

रेडियम की खोज के साथ-साथ पियरे क्यूरी के एक सहयोगी आन्द्रे-

देविरने ने, जो उनके साथ ही रेडियम-सक्रियता पर काम कर रहे थे, सन् १९०० में एक और नये तत्त्व का पता लगाया। इस तत्त्व को 'एक्टिनियम' नाम दिया गया।

रेडियो-सक्रिय तत्त्वों के विकिरण के स्वभाव का पता लगाने का श्रेय लार्ड रदरफोर्ड को है। आपने बताया कि यूरेनियम और थोरियम जनित विकिरण तीन प्रकार की किरणों से बना है। इन किरणों को ग्रीक वर्णमाला के आधार पर 'आल्फा' 'बीटा' और 'गामा' किरणों के नाम से संबोधित किया गया।

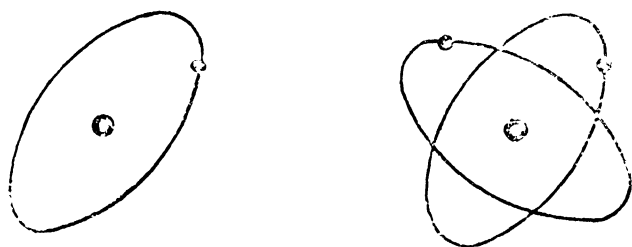
आल्फा-किरणें—ये पदार्थ के वे कण हैं जो अपने साथ धन विद्युत् ले जाते हैं। इन किरणों के प्रत्येक कण धन विद्युत् में दो इकाइयाँ होती हैं तथा प्रत्येक कण का भार हाइड्रोजन के एक परमाणु के भार का चौगुना है। ये कण अपने जनक पदार्थों से विस्फोट के साथ सहस्रों मील प्रति सैकण्ड की गति से बाहर निकलते हैं। वायुमण्डल में व्याप्त परमाणुओं से संघर्ष होने पर इन कणों का वेग समाप्त हो जाता है। इस प्रकार जो ऊर्जा नष्ट होती है, वह वायुमण्डल में ताप-ऊर्जा के रूप में प्रकट होती है। अन्ततः एक आल्फा कण दो इलेक्ट्रान को अपने में ले लेता है। इस प्रकार हीलियम का एक परमाणु बन जाता है, जिसका परमाणु-भार ४ है।

बीटा-किरणें—पदार्थ के ये कण अपने साथ ऋण विद्युत् ले जाते हैं, जिन्हें इलेक्ट्रान कहते हैं। इनका भार हाइड्रोजन के एक परमाणु के भार का $\frac{1}{1800}$ है। इनकी निष्कासन-गति आल्फा-किरणों की अपेक्षा बहुत अधिक है। ये एक सैकण्ड में लगभग एक लाख मील की गति से बाहर निकलते हैं। वायुमण्डल में प्रवेश कर ये कण भी नष्ट हो जाते हैं, पर इन कणों के नष्ट होने की सीमा आल्फा-कणों के नष्ट होने की सीमा से सौ गुनी अधिक है।

गामा-किरणें—इनका स्वभाव एक्स-किरणों की तरह है। ये प्रकाश के समान वेगवती होती हैं।

आल्फा-कणों की सहायता से लार्ड रदरफोर्ड ने परमाणुओं का भेदन

किया और उनके अन्तर्गत का रहस्य जाना। एक परमाणु में एक छोटा धन विद्युत्‌मय बीज-नाभिक होता है, जो अवकाश में चारों ओर इलेक्ट्रानों से घिरा रहता है। ये इलेक्ट्रान अक्षों में घूमते रहते हैं। अक्ष का व्यास नाभिक के व्यास की अपेक्षा अधिक होता है। एक परमाणु की तुलना सौर-परिवार से की जा सकती है। जिस प्रकार सौर-परिवार का केन्द्र सूर्य है तथा ग्रह सूर्य के चारों ओर चक्कर काटते हैं, उसी तरह एक परमाणु में भी नाभिक चारों ओर इलेक्ट्रान अक्षों में चक्कर लगाते रहते हैं। सौर-परिवार का विस्तार उसके सबसे बाहरी ग्रह प्लूटो के अर्धव्यास के आधार पर बताया जाता है, उसी प्रकार परमाणु का विस्तार उसके सबसे बाहरी इलेक्ट्रान के आधार पर बताया जा सकता है। सौर-परिवार के विस्तार की तुलना में सूर्य तथा ग्रहों का विस्तार बहुत कम है। इसी प्रकार परमाणु के नाभिक और इलेक्ट्रान का विस्तार परमाणु द्वारा घिरे अवकाश की तुलना में नगण्य ही है। पर सौर-परिवार और परमाणु में एक विशेष अन्तर है।



चित्र २८—हाइड्रोजन और हीलियम परमाणु

सौर-परिवार की रचना गुप्तवाकर्षण सिद्धान्त पर आधारित है, जबकि परमाणु के गुण उसके वैद्युत-योग पर निर्भर होते हैं।

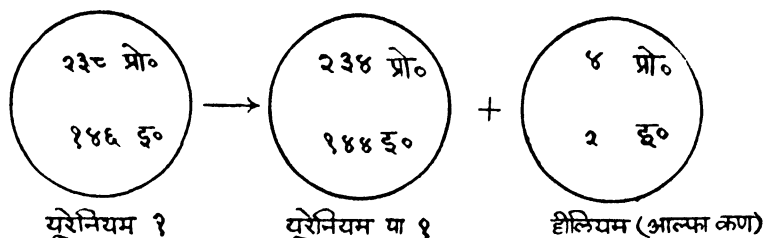
सबसे साधारण परमाणु हाइड्रोजन का है। इसके नाभिक में एक धन

विद्युत् भार है। इसके चारों ओर एक इलेक्ट्रान उसी प्रकार घूमता रहता है जैसे चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमा करता है। हाइड्रोजन के नाभिक को प्रोटान^१ कहते हैं। परमाणु का लगभग सारा भार नाभिक में ही निहित रहता है। हाइड्रोजन के नाभिक में एक धन विद्युत् भार तथा बाहर एक ऋण विद्युत् भार है, अतः हाइड्रोजन का परमाणु विद्युत्-उदासीन^२ है। साधारणतः परमाणु विद्युत्-उदासीन होते हैं। ताप के प्रभाव में परमाणु का विस्तार बढ़ जाता है तथा इलेक्ट्रान भिन्न-भिन्न अक्षों में घूमने लगते हैं। यदि ताप में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है तो इलेक्ट्रान नाभिक का साथ छोड़कर परमाणु से बाहर चले जाते हैं। इस प्रकार परमाणु अस्थायी हो जाता है।

हाइड्रोजन के पश्चात् दूसरा हलका परमाणु हीलियम का है। हीलियम के नाभिक में चार प्रोटान (अर्थात् चार धन विद्युत् भार) तथा दो इलेक्ट्रान (अर्थात् दो ऋण विद्युत् भार) हैं। इसके परमाणु के विद्युत्-उदासीन होने के लिए आवश्यक है कि दो इलेक्ट्रान बाहरी अक्षों में विद्यमान हों। ऊपर के चित्र में हाइड्रोजन और हीलियम के परमाणुओं का स्वरूप दिखाया गया है। इसी प्रकार अन्य परमाणुओं की रचना भी दिखाई जा सकती है।

अब हम एक रेडियो-सक्रिय तत्त्व यूरेनियम १ का उदाहरण लेते हैं। इसका परमाणु-भार २३८ है। इससे ज्ञात है कि इस परमाणु के नाभिक में २३८ धन विद्युत् भार है। इसके अतिरिक्त नाभिक में १४६ इलेक्ट्रान भी हैं। शेष ९२ इलेक्ट्रान बाहर कक्षाओं में परिभ्रमण करते हैं। इस प्रकार धन और ऋण विद्युत् भार बराबर होने के कारण यूरेनियम का परमाणु उदासीन रहता है। पर जब यूरेनियम १ का विघटन होता है तो इसका नाभिक प्रभावित होता है। विघटन के प्रभाव से यूरेनियम १ का नाभिक दो भागों में विभाजित होता है। एक भाग में २३४ प्रोटान तथा १४४

इलेक्ट्रान रहते हैं। इसे यूरेनियम या_१* कहते हैं। दूसरे भाग में ४ प्रोटान और २ इलेक्ट्रान रहते हैं। यही रचना आल्फाकण या हीलियम नाभिक



चित्र २९—यूरेनियम १ के नाभिक में परिवर्तन

की है, अतः इस दूसरे भाग को 'आल्फाकण' या 'हीलियम नाभिक' कहते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि यूरेनियम १ के विघटन पर यूरेनियम या_१ प्राप्त होता है तथा एक आल्फाकण निष्कासित होता है।

आल्फाकण विघटन पर बहुत तीव्र गति से (कई सहस्र मील प्रति सेकण्ड) निष्कासित होता है। यह ऊर्जा उसे यूरेनियम १ के नाभिक से ही प्राप्त होती है। यूरेनियम या_१ के परमाणु का नाभिक भी अस्थायी है। इसका भी विघटन होता है। फलस्वरूप एक बीटा-कण-अर्थात् एक इलेक्ट्रान निष्कासित होता है और यूरेनियम या_१ उपलब्ध होता है। बीटाकण के निष्कासन की ऊर्जा यूरेनियम या_१ के नाभिक से ही प्राप्त होती है।

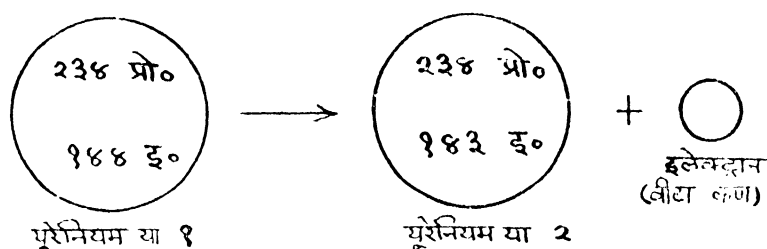
परमाणुओं के नाभिक की उपरिलिखित मान्यताएँ यद्यपि संतोषप्रद प्रतीत होती हैं तथापि ये भी बहुत-सी भौतिक परिवृत्तियों को समझाने में असफल रहीं। प्रोटान और इलेक्ट्रान के अतिरिक्त दो अन्य नये कणों की खोज हुई। ये कण हैं न्यूट्रान^१ और पाजिट्रान।^२ न्यूट्रान की खोज सन् १९३२ में सर जेम्स चैडविक ने की। इस कण में किसी प्रकार का विद्युत

* Uranium $\times_1$ (X=या)

1. Neutron

2. Positron

भार नहीं रहता, पर इसका सामान्य भार प्रोटान के समान है। पाजिट्रान की खोज का श्रेय डॉ० सी० डी० एण्डरसन को है। आपने इस कण की



चित्र ३०—यूरेनियम या_१ के नाभिक में परिवर्तन

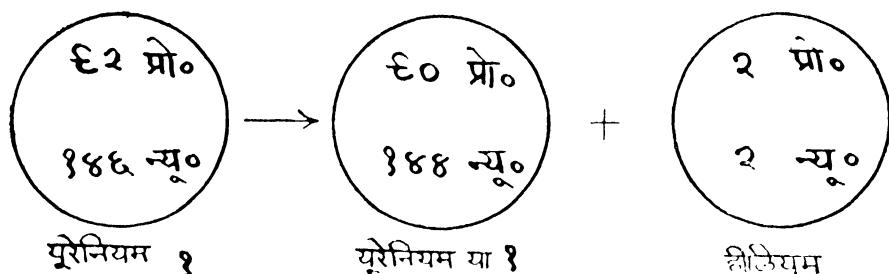
खोज सन् १९३२ में अन्तरिक्ष किरणों का अध्ययन करते समय की। पाजिट्रान 'धन इलेक्ट्रान' है अर्थात् पाजिट्रान और इलेक्ट्रान में केवल इतना अन्तर है कि पहले में धन विद्युत् भार रहता है और दूसरे में ऋण विद्युत् भार। प्रोटान में भी धन विद्युत् भार होता है। प्रोटान और पाजिट्रान में अन्तर भार में है। प्रोटान का भार पाजिट्रान की अपेक्षा अधिक होता है। पाजिट्रान की खोज के साथ दो मुख्य बातें ज्ञात हुई कि पाजिट्रान के साथ एक इलेक्ट्रान भी उत्पन्न होता है तथा पाजिट्रान और इलेक्ट्रान के पुनर्मिलन से एक विकिरण उत्पन्न होता है जो गामा और एक्स-किरण से भी अधिक शक्तिशाली होता है।

परमाणु-संरचना के आधुनिकतम ज्ञान के आधार पर यूरेनियम का विघटन चित्र ३१ में दिखाया गया है। यूरेनियम १ के नाभिक में ९२ प्रोटान और १४६ न्यूट्रान हैं। इस आधार पर भी इसका परमाणु-भार (९२ + १४६) २३८ है। ९२ इलेक्ट्रान यूरेनियम नाभिक के चारों ओर अक्षों में घूमते हैं। इस प्रकार यूरेनियम का परमाणु विद्युत-उदासीन है।

1. Cosmic rays

यूरेनियम १ का विघटन

यूरेनियम १ विघटन के फलस्वरूप यूरेनियम या_१ में परिवर्तित हो जाता है। इस क्रिया में एक आल्फाकण निष्कासित होता है, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।



चित्र ३१—यूरेनियम १ के नाभिक का विघटन

यूरेनियम या_१ भी अस्थायी है। इसके विघटन का अध्ययन रोचक है। विघटन पर इससे एक बीटा-कण अर्थात् एक इलेक्ट्रॉन बाहर निकलता है। पर आधुनिक भौतिकी की मान्यताओं के अनुसार परमाणु के नाभिक में इलेक्ट्रॉन होते ही नहीं। तब यह क्रिया किस प्रकार होती है? विघटन पर यूरेनियम या_१ के नाभिक में विद्यमान एक न्यूट्रॉन, एक प्रोटॉन और एक इलेक्ट्रॉन में परिवर्तित हो जाते हैं। इलेक्ट्रॉन बाहर निकल जाता है तथा प्रोटॉन नाभिक में ही रहता है। इस प्रकार यूरेनियम या_१ के विघटन के कारण यूरेनियम या_१ प्राप्त होता है तथा एक बीटा-कण बाहर निष्कासित होता है। यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है कि यूरेनियम १ से यूरेनियम या_१ के परिवर्तन में परमाणु-भार में कमी हो जाती है। यूरेनियम_१ का परमाणु भार २३८ है जबकि यूरेनियम या_१ का परमाणु भार २३४ है। पर यूरेनियम या_१ के विघटन पर प्राप्त यूरेनियम या_१ के परमाणु-भार में कोई अन्तर नहीं पड़ता। यूरेनियम या_१ और यूरेनियम या_१ दोनों का ही परमाणु-भार २३४ है।

इस प्रकार विघटन क्रिया चालू रहती है और अन्ततः स्थायी पदार्थ सीसा^१ प्राप्त होता है।

अब तक हम ने परमाणु-नाभिक की विघटन-क्रिया के एक भाग की ओर ही आप का ध्यान दिलाया है। परमाणु-नाभिक के अभिहनन^२ के फलस्वरूप जो ऊर्जा निष्कासित होती है, अब उस ओर आपकी दृष्टि केन्द्रित करेंगे। यही ऊर्जा महान् है। यही ऊर्जा परमाणु बम की रचना का मूल है।

भौतिकी के दो महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त हैं—ऊर्जा-संरक्षण का नियम^३ तथा संहति-संरक्षण का नियम।^४ पहले नियम के अनुसार ऊर्जा अविनश्वर है तथा दूसरे नियम के अनुसार संहति अविनश्वर है। इसी को 'सन्तुलन-सिद्धान्त' भी कहते हैं। इन सिद्धान्तों के आधार पर संहति और ऊर्जा का स्वतंत्र अस्तित्व माना जाता रहा है।

किन्तु सन् १९०५ में विश्वविश्रुत दार्शनिक वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टाइन ने बताया कि संहति भी एक प्रकार की ऊर्जा ही है। संहति और उसके तुल्य ऊर्जा को एक साधारण सूत्र से व्यक्त किया जा सकता है— $[ऊ सं प्र]$ ^५। इसमें 'ऊ' ऊर्जा है जो पदार्थ में निहित है, 'सं' संहति है। 'प्र' प्रकाश का वेग है जो लगभग १८६००० मील प्रति सेकण्ड है। संहति में जो ऊर्जा निहित है वह संहति और प्रकाश के वेग के वर्ग के गुणनफल के बराबर है।

आइंस्टाइन के इस वाद के विस्तार में न जाकर इस नये वाद के अन्तर्गत हम रेडियो-सक्रिय पदार्थों के विघटन का विवेचन करेंगे। उदाहरणतः यूरेनियम १ के विघटन पर एक आल्फा-कण निष्कासित होता है और यूरे-

1. Lead

2. Bombardment

3. Law of Conservation of Energy

4. Law of Conservation of mass

5. $[E=Mc^2]$

नियम या_१ बन जाता है। २३८ परमाणु भार वाले यूरेनियम १ के विघटन पर २३४ परमाणु भार वाला यूरेनियम या_१ तथा ४ परमाणु-भार वाला हीलियम नाभिक (आल्फा-कण) प्राप्त होता है।

$$\begin{array}{lll} \text{यूरेनियम १} \rightarrow & \text{यूरेनियम या}_1 & + \text{ आल्फाकण} \\ \text{पा० भा० २३८} & २३४ & ४ \end{array}$$

उपरिलिखित विघटन संहति-संरक्षण नियम के अनुकूल है। किन्तु विघटन के कारण गतिज-ऊर्जा भी उत्पन्न होती है, जिसके कारण आल्फा-कण लगभग ७००० मील प्रति सेकण्ड के वेग से निष्कासित होता है। अतः संहति-संरक्षण का विवेचन करते समय हमें इस गतिज-ऊर्जा के तुल्य संहति को भी ध्यान में रखना चाहिए।

$$\begin{array}{l} \text{यूरेनियम १ नाभिक की संहति} = \text{यूरेनियम या}_1 \text{ के नाभिक की संहति} + \\ \text{आल्फा-कण की संहति} + \text{आल्फा-कण} \\ \text{की गतिजऊर्जा के तुल्य संहति।} \end{array}$$

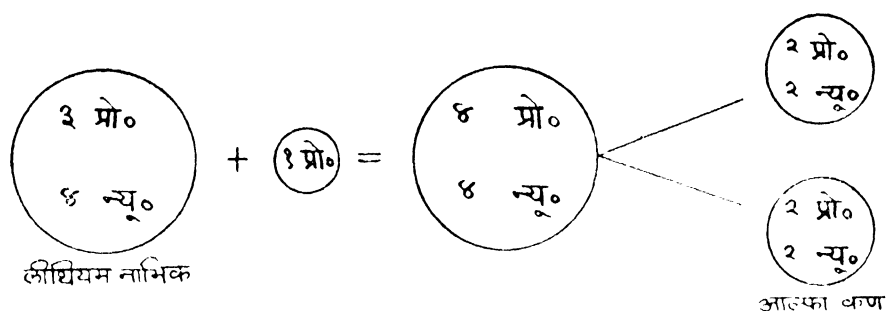
किन्तु जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कुछ तत्त्वों के परमाणु-भार पूर्ण संख्यक न होकर विषम संख्यक हैं। अतः यदि हम तत्त्वों के यथातथ^२ अर्थात् ठीक-ठीक परमाणु-भार लें तो यूरेनियम १, यूरेनियम या_१ तथा आल्फा-कण का परमाणु भार क्रमशः

$$\begin{array}{lll} \text{यूरेनियम १} \rightarrow & \text{यूरेनियम या}_1 & + \text{ आल्फाकण} \\ \text{यथातथ पा० भार २३८.०७} & २३४ & + ४.००३ \text{ है।} \end{array}$$

इस प्रकार यूरेनियम १ का भार यूरेनियम या_१ और आल्फाकण के सम्मिलित भार से .०६७ अधिक है। यही अधिक भार आल्फाकण की गतिज-ऊर्जा के तुल्य संहति के बराबर है।

आधुनिक भौतिकी में 'संहति-संरक्षण नियम' की मान्यता नहीं है, मान्यता है 'ऊर्जा-संरक्षण नियम की'। ऊर्जा के अन्तर्गत संहति, गतिज ऊर्जा, ताप-ऊर्जा तथा अन्य सभी प्रकार की ऊर्जाएँ आ जाती हैं। लीथियम का उदाहरण लेकर हम 'ऊर्जा संरक्षण नियम' की विवेचना करते हैं।^१

लीथियम का नाभिक प्रोटान द्वारा अभिहनन के फलस्वरूप दो आल्फा-कणों में विभाजित हो जाता है। ऊर्जा-संरक्षण के नियम के अनुसार हीलियम नाभिक और प्रोटान की संयुक्त ऊर्जा दोनों आल्फाकणों की संयुक्त ऊर्जा के बराबर होनी चाहिए। पर संहति-वर्णक्रमलेखी^२ की सहायता से ज्ञात भार के अनुसार लीथियम और प्रोटान का सम्मिलित भार दोनों अल्फाकणों के सम्मिलित भार से ०.०१८५ अधिक है।



चित्र ३२—लीथियम नाभिक का अभिहनन

अर्थात् इस परिवर्तन के फलस्वरूप संहति में ०.०१८५ कमी हो जाती है। लगभग इसी कमी के तुल्य गतिज ऊर्जा से आल्फाकण गतिमान होते हैं।

1. The Origin of the Earth—W. M. Smart, 1955, pp. 141-2.

2. Mass spectrograph

यह ज्ञात हुआ है कि अभिहनन (प्रोटान द्वारा) में जितनी ऊर्जा प्रयुक्त की जाती है उसकी लगभग १५० गुनी ऊर्जा आल्फाकणों को प्राप्त होती है। यह बिल्कुल इसी प्रकार है जैसे १ मन कोयले को जलाकर १५० मन के तुल्य ताप ऊर्जा प्राप्त करना। यही आधार परमाणु-बम की रचना का है। उपरिलिखित उदाहरणों में तो केवल १५० गुनी अधिक ऊर्जा उपलब्ध हुई। पर यदि यूरेनियम (५० भा० २३५) का न्यूट्रान द्वारा अभिहनन किया जाय तो सैकड़ों गुनी अधिक ऊर्जा उपलब्ध होती है। यह ऊर्जा कितनी अधिक है—इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि एक पौंड यूरेनियम (५० भा० २३५) की ऊर्जा १२०० टन कोयले से प्राप्त ताप ऊर्जा के बराबर होती है। इसके अतिरिक्त यूरेनियम २३५ में एक और भी विशेषता है, इसके विघटन के परिणामस्वरूप बहुत-से न्यूट्रान निष्कासित होते हैं। ये न्यूट्रान दूसरे यूरेनियम नाभिक का अभिहनन करते हैं। इस प्रकार यह क्रिया निरन्तर चलती रहती है जब तक कि यूरेनियम २३५ की मात्रा समाप्त न हो जाय।

यूरेनियम-माला

बताया जा चुका है कि यूरेनियम सब से भारी तत्त्व है। इसका परमाणु-भार २३८ है। वस्तुतः यूरेनियम तीन समस्थानिकों, जिनके परमाणु भार २३८, २३५, २३४ हैं, का सम्मिश्रण है। इनमें से २३८ परमाणु-भार वाले समस्थानिक की मात्रा अन्य की अपेक्षा अधिक है। इसे यूरेनियम^१ के नाम से संबोधित किया जाता है। यूरेनियम १ तत्त्वों के बड़े कुटुम्ब का जनक है, जैसा कि पृ० १६९ की तालिका में दिखाया गया है। तालिका के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जायगा कि किस प्रकार यूरेनियम १ के विघटन से भिन्न-भिन्न तत्त्व उपलब्ध होते हैं। किन्तु यह विघटन-क्रिया बहुत ही मन्दगति से होती है। इस तालिका के अन्तिम खाने 'आधा जीवन काल' से यह तथ्य स्पष्ट है—

तत्त्व	परमाणु भार	परमाणु संख्या	निष्कासित कण	आधा जीवन काल
१. यूरेनियम १	२३८	९२	आल्फा	४ $\frac{1}{2}$ अरब वर्ष
२. यूरेनियम या _१	२३४	९०	बीटा	२४ दिन
३. यूरेनियम या _२	२३४	९१	बीटा	१ $\frac{1}{4}$ मिनट
४. यूरेनियम २	२३४	९२	आल्फा	३४०,००० वर्ष
५. आयोनियम	२३०	९०	आल्फा	८२,००० वर्ष
६. रेडियम	२३६	८८	आल्फा	१६०० वर्ष
बीटा, गामा				
७. रेडान	२२२	८६	आल्फा	३ $\frac{1}{4}$ दिन
८. रेडियम का	२१८	८४	आल्फा	३ मिनट
९. रेडियम खा	२१४	८२	बीटा, गामा	२७ मिनट
१०. रेडियम गा	२१४	८३	बीटा, गामा	२० मिनट
११. रेडियम 'गा'	२१४	८४	आल्फा	एक सेकंड का १० लाखवाँ भाग
१२. रेडियम घा	२१०	८२	बीटा, गामा	२२ वर्ष
१३. रेडियम डा	२१०	८३	बीटा, गामा	५ दिन
१४. (रेडियम चा)	२१०	८४	आल्फा	१४० दिन
पोलोनियम				
१५. (रेडियम छा)	२०७	८२	स्थायी पदार्थ	सीसा

‘आधा जीवन काल’ से तात्पर्य उस समय से है जिसमें उस पदार्थ के आधे परमाणुओं का तो विघटन हो जाय और आधे अपरिवर्तित रह जायँ। उदाहरण के लिए, यदि हम यूरेनियम १ के २००० परमाणु लें तो ४.५ अरब वर्ष में यूरेनियम १ के १००० परमाणुओं में से १००० आल्फाकण निष्कासित होने पर यूरेनियम या_१ के १००० परमाणु उपलब्ध होंगे और शेष १००० परमाणु अपरिवर्तित ही रहेंगे।

विघटन दो प्रकार से होता है। इसके अधिक परमाणु बीटा कण निष्कासित कर रेडियम 'गा' में परिवर्तित हो जाते हैं और रेडियम 'गा' से आल्फाकण निकल जाने पर रेडियम 'घा' बन जाता है। रेडियम गा के कुछ परमाणु पहले आल्फाकण निष्कासित करते हैं और फिर बीटाकण और इस प्रकार भी रेडियम घा बन जाता है। रेडियम गा की आयु तो एक सेकण्ड भी नहीं है। रेडियम गा के आधे परमाणु १ सेकण्ड के दस लाखवें भाग के भीतर ही विघटित हो जाते हैं। इनमें आल्फाकण निष्कासित होता है और २१० परमाणुभार वाला रेडियम घा बन जाता है। रेडियम घा का आधा जीवन काल २२ वर्ष है। इससे बीटा और गामा कण के निष्कासन पर रेडियम डा प्राप्त होता है। पाँच दिन में ही रेडियम डा के आधे परमाणु विघटित होकर बीटा और गामा-कण निष्कासित करते हैं और पोलोनियम (परमाणु-भार २१०) उपलब्ध होता है। पोलोनियम का आधा जीवनकाल १४० दिन है। पोलोनियम को रेडियम चा भी कहते हैं। इससे आल्फाकण के निष्कासन पर यूरेनियम परिवार का स्थायी तत्त्व सीसा प्राप्त होता है। इस यूरेनियम सीसे का परमाणु भार २०६ है। साधारण सीसे से पृथक् इंगित करने के लिए ही इसे यूरेनियम सीसा कहते हैं। यह सीसा रेडियम छा के नाम से भी संबोधित किया जाता है।

यूरेनियम के सदृश थोरियम और एक्टिनो यूरेनियम भी रेडियम जन्य तत्त्वों के जनक हैं। तालिकाओं में थोरियम और एक्टिनो यूरेनियम की विघटन क्रियाएँ दिखायी गयी हैं।

थोरियम-परिवार

	परमाणु भार	निष्कासित कण	जीवनकाल
थोरियम	२३२	आल्फा	13000×10^4 वर्ष
मैसोथोरियम १	२२८		६. ७ वर्ष
मैसोथोरियम २	२२८		६. १३ घंटे
रेडियो थोरियम	२२८	आल्फा	१. ९ वर्ष

थोरियम परिवार (क्रमागत)

	परमाणु भार	निष्कासित कण	जीवनकाल
थोरियम या	२२४	आल्फा	३.६४ दिन
थोरियम इमेनेशन	२२०	आल्फा	५.४५ सेकंड
थोरियम का	३१६	आल्फा	०.१४ सेकंड
थोरियम खा	२१२		१०.६ घंटे
थोरियम गा	२१२		६०.६ मिनट
थोरियम गा'	२१२	आल्फा	१०.११ सेकंड
थोरियम गा	२०८		३.२ मिनट
थोरियम घा	२०८		स्थायी
अथवा			
थोरियम सीसा			

एक्टिनियम-परिवार

तत्त्व	परमाणु-भार	निष्कासित कण	आधा जीवन काल
एक्टिनो यूरेनियम	२३५	आल्फा	
यूरेनियम रा	२३१		२३ घंटे
प्रोटेक्टिनियम	२३१	आल्फा	२०,००० वर्ष
एक्टिनियम	२२७		१३.४ वर्ष
रेडियो एक्टिनियम	२२७	आल्फा	१९ दिन
एक्टिनियम या	२२३	आल्फा	११.२ दिन
„ इमेनेशन	२१९	आल्फा	३.९२ सेकंड
„ का	२१५	आल्फा	०.००२ सेकंड
„ खा	२११		३६.१ मिनट
„ गा	२११		२.१६ मिनट
„ गा'	२११	आल्फा	०.००५ सेकंड
„ गा''	२०७		४.७१ मिनट
„ घा	२०७		स्थायी
अथवा			
एक्टिनियम सीसा			

थोरियम परिवार (क्रमगत)

	परमाणु भार	निष्कासित कण	जीवनकाल
थोरियम या	२२४	आल्फा	३.६४ दिन
थोरियम इमेनेशन	२२०	आल्फा	५.४५ सेकंड
थोरियम का	२१६	आल्फा	०.१४ सेकंड
थोरियम खा	२१२		१०.६ घंटे
थोरियम गा	२१२		६०.६ मिनट
थोरियम गा'	२१२	आल्फा	१०.११ सेकंड
थोरियम गा''	२०८		३.२ मिनट
थोरियम घा	२०८		स्थायी
अथवा			
थोरियम सीसा			

एक्टिनियम-परिवार

तत्त्व	परमाणु-भार	निष्कासित कण	आधा जीवन काल
एक्टिनो यूरेनियम	२३५	आल्फा	
यूरेनियम रा	२३१		२३ घंटे
प्रोटेक्टिनियम	२३१	आल्फा	२०,००० वर्ष
एक्टिनियम	२२७		१३.४ वर्ष
रेडियो एक्टिनियम	२२७	आल्फा	१९ दिन
एक्टिनियम या	२२३	आल्फा	११.२ दिन
„ इमेनेशन	२१९	आल्फा	३.९२ सेकंड
„ का	२१५	आल्फा	०.००२ सेकंड
„ खा	२११		३६.१ मिनट
„ गा	२११		२.१६ मिनट
„ गा'	२११	आल्फा	०.००५ सेकंड
„ गा''	२०७		४.७१ मिनट
„ घा	२०७		स्थायी
अथवा			
एक्टिनियम सीसा			

इन तीन रेडियो-सक्रिय तत्त्वों के अतिरिक्त अन्य दो तत्त्वों में भी रेडियो-सक्रियता देखी गयी है। पर इनकी रेडियो-सक्रियता इतनी कम है कि दीर्घकाल तक इसका भान ही न हो सका। सन् १९०७ में प्रथम बार एन० आर० कैम्पबैल ने ही बताया कि पोटेशियम और रूबीडियम भी रेडियो-सक्रिय तत्त्व हैं। सेमेरियम तत्त्व भी अल्प रेडियो-सक्रिय हैं। पोटेशियम और रूबीडियम से इलेक्ट्रान तथा सेमेरियम से आल्फाकण निष्कासित होते हैं, यह विशेषता इन तत्त्वों के विरल समस्थानिकों में ही पायी जाती है।

रेडियो-सक्रिय पदार्थों में इस प्रकार दीर्घ काल से विघटन हो रहा है। विघटन के फलस्वरूप इन मात्राओं के जनक, उदाहरणतः यूरेनियम १, एक्टिनो यूरेनियम, थोरियम की मात्रा शनैः-शनैः कम होती जाती है और इनके स्थायी पदार्थ हीलियम (जो कि आल्फा-कणों के निष्कासन से प्राप्त होता है) तथा सीसा जमा होते जाते हैं। शिलाओं या खनिजों में इन्हीं स्थायी पदार्थों की मात्रा के आधार पर उनकी आयु ज्ञात की जाती है।

रेडियो-सक्रियता पर आश्रित ये विधियाँ विश्वसनीय हैं, क्योंकि भौतिक तथा रासायनिक वातावरण के परिवर्तन का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उच्च तापमान, उच्च दाब, तथा शक्तिशाली चुम्बकीय प्रभाव से इस क्रिया में कोई अन्तर नहीं आता, इसके परमाणुओं की विघटन-गति में भी कोई परिवर्तन नहीं होता। एक पुराने परमाणु का नये परमाणु की अपेक्षा अधिक क्षय नहीं होता। क्वांटम सिद्धान्त^१ इन तथ्यों के पक्ष में प्रमाण उपस्थित करता है। किसी भी परमाणु के बाहरी भाग के विद्यमान इलेक्ट्रान का विस्थापन संभव है, पर परमाणु के बीज का विघटन अति दुरुह है। रेडियो-सक्रिय परमाणु के बीज से ही संबंधित है। अतः तत्त्वों के रेडियो-सक्रिय गुणों में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन संभव नहीं। यदि बीज को

प्रभावित ही करना हो तो बीज के समान शक्तिशाली विकिरण या ऊर्जा द्वारा ही संभव है। किन्तु यह विकिरण अति उच्च है। यह विकिरण लगभग ६ अरब अंश सेंटीग्रेड तापमान के तुल्य है। पृथ्वी के अन्तर्भाग के वर्णन में हमने बताया है कि वहाँ का अधिक से अधिक तापमान कुछ सहस्र अंश सेंटीग्रेड है। अतः पृथ्वी के अन्तर्भाग में व्याप्त दशाएँ रेडियो-सक्रियता को प्रभावित करने में पूर्णतः असमर्थ हैं।

जौली की धारणा कि भूतकाल में वर्तमान की अपेक्षा यूरेनियम का विघटन अधिक तीव्र गति से होता था—निर्मूल सिद्ध हो चुकी है। आपकी धारणा परिवर्त्य प्रभामण्डलों^१ के अध्ययन पर अवलंबित थी, किन्तु आपने विभिन्न कालों के प्रभामण्डलों का अध्ययन किया था। एक में आपने यूरेनियम, द्वारा बने चक्र को नापा था और दूसरे में यूरेनियम २ द्वारा बने चक्र को। प्रभामण्डलों का विस्तृत वर्णन आगे दिया जायगा। विघटन गति पर ऊँचाई, निचाई तथा विकिरण का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

डॉ० डब्लू० डी० डरी ने अपने प्रयोगों से इस धारणा को भी निर्मूल प्रमाणित कर दिया है कि रेडियो-सक्रिय पदार्थों का विघटन अंतरिक्ष किरणों (विशिष्ट परमाणुओं पर किये गये अभिहनन द्वारा होता है) के प्रभाव में होता है। आपने रेडियो-सक्रिय पदार्थों—पोलोनियम (जिसका नामकरण मेरी क्यूरी ने अपनी मातृभूमि के नाम पर किया था) की रेडियो-कार्य-शक्ति को धरातल पर तथा धरातल से ११५० फुट नीचे ले जाकर मापा। किन्तु इन मापों में कोई अन्तर न था। अंतरिक्ष-किरणों का प्रभाव धरातल पर तो संभव था। लेकिन खदान में गहराई तक उनका पहुँचना सरल न था, क्योंकि ऊपर की चट्टानें ही इन किरणों का शोषण कर लेती हैं। यदि अन्तरिक्ष किरणें प्रभावकारी थीं तो इन दोनों परिणामों में विशेष अन्तर होना चाहिए था। निष्कर्ष यह है कि रेडियो-सक्रिय तत्त्व आरंभकाल से ही समान गति से विघटित हो रहे हैं।

रेडियो-सक्रिय तत्त्व एक घड़ी के समान है। चाबी भरने पर घड़ी चलती रहती है, उसमें टिक-टिक की ध्वनि होती है जो घड़ी के चलने की सूचक है। उसी प्रकार रेडियो-सक्रिय तत्त्व में प्रकृति से ही चाबी (ऊर्जा) भरी हुई है। इस चाबी के प्रभाव में ही इसका विघटन होता रहता है। इस घड़ी की टिक-टिक हमें सुनाई नहीं पड़ती, वरन् उसका स्थायी अभिलेख उसके विघटित पदार्थों—हीलियम और सीसे—के रूपमें एकत्र होता रहता है। इनके उत्पादन की दर जान लेने पर हम उन तत्त्वों की आयु जान सकते हैं। अतः प्रत्येक रेडियो-सक्रिय खनिज एक काल-मापक है। इन खनिजों में विद्यमान हीलियम और सीस की मात्रा के आधार पर हम उनकी आयु जान सकते हैं। इस प्रकार रेडियो-सक्रियता के आधार पर हम भौतिक काल का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। अगले दो अध्यायों में हीलियम और सीस विधियों का पृथक्-पृथक् विस्तृत विवेचन किया गया है।

अध्याय ९

हीलियम विधि

‘अपने वादों की निर्दयता से आलोचना करो।’

हीलियम वायुमण्डल की एक विरल^१ गैस है। शुष्क वायु के दो लाख में एक भाग हीलियम गैस का है। हीलियम तत्व की खोज सन् १८६८ में हुई, जबकि सूर्यग्रहण के समय लौक्यर ने सूर्य में इस तत्व को देखा। स्थलीय पदार्थों में इसकी उपस्थिति सन् १८९५ में ज्ञात हुई। उस वर्ष रेमजे ने रेडियो-सक्रिय यूरेनियम और थोरियम खनिजों के रश्मि-चित्रों में इस तत्व को पहचाना। सन् १९०२ में रदरफोर्ड और सौडी ने रेडियो-सक्रिय तत्वों और हीलियम का सम्बन्ध बताया। एक वर्ष के उपरान्त रेमजे और सौडी ने रेडियम से हीलियम की उत्पत्ति को प्रत्यक्ष रूप में देखा। आप लोगों ने रेडियम का एक पदार्थ लिया जिसमें हीलियम नाम मात्र को भी न थी। किन्तु कुछ महीनों में इस पदार्थ में बहुत-सी हीलियम गैस उत्पन्न हो गयी। तत्पश्चात् यूरेनियम तथा अन्य रेडियो-सक्रिय पदार्थों से भी, जिनमें आल्फाकण निष्कासित होते हैं, हीलियम गैस का निकलना प्रमाणित किया गया। अन्ततः सन् १९०९ में रदरफोर्ड और रोयड्स ने तथ्य स्थापित किया कि निष्कासित आल्फाकणों के एकत्र होने से ही हीलियम गैस प्राप्त होती है।

गत अध्याय में हमने रेडियो-सक्रिय तत्वों का तथा उनकी विघटन-

मालाओं का अध्ययन किया है। यूरेनियम के विघटन पर ऐसे आठ पदार्थ प्राप्त होते हैं, जिनसे आल्फाकण निष्कासित होते हैं। ये आठ पदार्थ हैं—यूरेनियम १, यूरेनियम २, आयोनियम, रेडियम, रेडान, रेडियम का, रेडियम गा और पोलोनियम। रेडियो-सक्रिय तत्त्व थोरियम के विघटन पर आल्फाकण वाले छह पदार्थ प्राप्त होते हैं—थोरियम, रेडियो थोरियम, थोरियम या, थोरियम इमेनेशन, थोरियम का, थोरियम गा। इसी प्रकार एक्टीनियम परिवार में भी आल्फाकण वाले सात पदार्थ हैं—एक्टीनो-यूरेनियम, प्रोटेक्टिनियम, रेडियो एक्टीनियम, एक्टीनियम या, एक्टीनियम इमेनेशन, एक्टीनियम का, एक्टीनियम गा। अतः यूरेनियम, थोरियम और एक्टीनियम के विघटन पर क्रमशः आठ, छह और सात आल्फाकण (अर्थात् हीलियम) निष्कासित होते हैं।

आल्फाकण ही हीलियम बीज है। इस ओर भी पिछले अध्याय में इंगित किया जा चुका है। आल्फाकण दो प्रोटान (धन विद्युत) और दो न्यूट्रान (विद्युत्-उदासीन) सघन-मिश्रण से बने होते हैं। हीलियम परमाणु के बीज की रचना भी ऐसी ही है। अतः हीलियम बीज और आल्फाकण परस्पर समान हैं।

रेडियो-सक्रिय पदार्थों के विघटन पर हीलियम ही नहीं, बरन् सीसा भी उपलब्ध होता है। ये दोनों पदार्थ स्थायी हैं और अपने जनक पदार्थों में संकलित होते रहते हैं। रेडियो-सक्रिय पदार्थों की मात्रा विघटन के फलस्वरूप शून्य-शून्य घटती जाती है और उनसे उत्पादित हीलियम और सीसा की मात्रा बढ़ती रहती है —

$$\begin{aligned} \text{यूरेनियम १} &= \text{हीलियम} + \text{यूरेनियम सीसा} + \text{ऊर्जा} \\ \text{थोरियम} &= \text{हीलियम} + \text{थोरियम सीसा} + \text{ऊर्जा} \\ \text{एक्टीनो-यूरेनियम} &= \text{हीलियम} + \text{एक्टीनियम सीसा} + \text{ऊर्जा} \end{aligned}$$

ऊपर समीकरण में यूरेनियम १, थोरियम और एक्टीनो-यूरेनियम का विघटन के फलस्वरूप अन्ततः परिणाम दिखाया गया है। एक्टीनो-यूरे-

नियम को पृथक् तत्त्व के रूप में मान्यता नहीं है। इसे यूरेनियम का ही एक समस्थानिक^१ कहा जाता है।

यदि हम रेडियो-सक्रिय पदार्थों की हीलियम उत्पादन-गति जान लें, तो रेडियो-सक्रिय पदार्थ की मात्रा ज्ञात होने पर उस शिला या खनिज की, जिसमें वह रेडियो-सक्रिय पदार्थ विद्यमान है, आयु सरलता से जान सकते हैं।

मान लीजिए कि एक ग्राम यूरेनियम से दस लाख वर्ष में १/सी' हीलियम उपलब्ध होती है, तो 'यू' प्रतिशत यूरेनियम वाले खनिज से, जो कि टी दस लाख वर्ष पुराना है, कितनी हीलियम प्राप्त होगी।^२

१ ग्राम से दस लाख वर्ष में प्राप्त हीलियम की मात्रा = १/सी'

१ ग्राम से टी दस लाख वर्ष में प्राप्त हीलियम की मात्रा = $\frac{\text{टी}}{\text{सी}}$

यू ग्राम से टी दस लाख वर्ष में प्राप्त हीलियम की मात्रा = $\frac{\text{टी} \times \text{यू}}{\text{सी'}}$

$$\therefore \text{टी} = \frac{\text{ही}^\circ}{\text{यू}^\circ} \text{सी} \times \text{दस लाख वर्ष}$$

उपर्युक्त सूत्र से एक खनिज या शिला की आयु ज्ञात की जा सकती है। पर इस सूत्र में बहुत सी बातों पर विचार नहीं किया गया। इनमें सबसे मुख्य है यूरेनियम का क्षय। यूरेनियम की मात्रा सदा समान नहीं रहती। समय के साथ उसमें कमी होती रहती है। यूरेनियम के क्षय के साथ-साथ उससे प्राप्त हीलियम की मात्रा भी प्रति वर्ष कम होती जायगी।

1. Isotope

2. End Products and their application to Age determination—'Age of the Earth' Bull. National Research Council No. 80, June 1931, p. 197.

पर सभी व्यावहारिक गणनाओं के लिए (अर्थात् कई करोड़ वर्ष) यूरेनियम को अक्षय माना जा सकता है, और खनिज की आयु उसमें विद्यमान हीलियम की मात्रा के आधार पर निम्नलिखित सूत्र से जानी जा सकती है।

$$\text{आयु} = \frac{\text{ही०}}{\text{यू०}} \times ८८ \text{ लाख वर्ष}^1$$

$$\text{आयु} = \frac{\text{या}}{३} \frac{\text{ही०}}{\text{रे०}} \text{ वर्ष}$$

$\frac{\text{ही०}}{\text{यू०}}$ और $\frac{\text{ही०}}{\text{रे०}}$ को साधारणतः हीलियम निष्पत्ति कहा जाता है।

थोरियम का प्रभाव

उपर्युक्त सूत्र में शिलाओं या खनिजों में विद्यमान यूरेनियम को ही मान्यता दी गयी है। किन्तु अधिकतर रेडियो-सक्रिय खनिज ऐसे हैं, जिनमें यूरेनियम और थोरियम दोनों ही विद्यमान हैं। ऐसी दशा में उपर्युक्त सूत्र में थोरियम की मात्रा के आधार पर कुछ संशोधन करना आवश्यक है।

यूरेनियम की अपेक्षा थोरियम की हीलियम उत्पादन-गति एक-तिहाई है। ०.२७ ग्राम यूरेनियम से उतनी ही हीलियम उपलब्ध होती है जितनी कि एक ग्राम थोरियम से। अतः हमारा सूत्र निम्नलिखित हो जायगा—

$$\text{आयु} = \frac{\text{ही०}}{\text{यू०} + ०.२७ \text{ थो०}} \times ८८ \text{ लाख वर्ष}$$

१. सूत्र निकालने की विधि Age of the Earth—Bull. National Research Council Washington, 1931 में विस्तार से दी हुई है।

एक्टिनो-यूरेनियम का प्रभाव

खनिजों में विद्यमान यूरेनियम, थोरियम की ओर तो हमने ध्यान दिया है, पर एक और तथ्य की ओर भी हमें आपका ध्यान आकृष्ट करना है। यूरेनियम के समस्थानिक हैं—यूरेनियम १, यूरेनियम २, एक्टिनो-यूरेनियम। एक तत्त्व के समस्थानिक रासायनिक दृष्टि से बिल्कुल समान होते हैं तथा इन्हें पृथक् भी नहीं किया जा सकता। अतः जब हम शिलाओं में यूरेनियम की मात्रा ज्ञात करते हैं, तो वस्तुतः हम यूरेनियम १, यूरेनियम २ और एक्टिनो-यूरेनियम की मात्रा ही मापते हैं। उपरिलिखित सूत्रों में केवल यूरेनियम १ को ही ध्यान में रखा गया है। यूरेनियम में यूरेनियम २ की मात्रा इतनी कम है कि उसमें गणना में कोई विशेष अन्तर नहीं आता पर एक्टिनो-यूरेनियम के आधार पर गणनाओं में मंशोधन आवश्यक है। यूरेनियम की चार प्रतिशत रेडियो-सक्रियता एक्टिनो-यूरेनियम के कारण है। किन्तु एक्टिनो-यूरेनियम का 'आधा जीवनकाल' यूरेनियम के आधे, जीवन-काल का केवल १/१० है। अतः वर्तमान काल में यूरेनियम में ९९.६ प्रतिशत यूरेनियम १ तथा ०.४ प्रतिशत एक्टिनो-यूरेनियम है। इसलिए हम यूरेनियम १ के आधे जीवनकाल को ही यूरेनियम का आधा जीवनकाल मान सकते हैं।

एक अन्य तथ्य भी इस सम्बन्ध में विचारणीय है। एक्टिनो-यूरेनियम का यूरेनियम १ की अपेक्षा दस गुने अधिक वेग से क्षय हो रहा है। इसलिए भौमिक काल के आरंभ में एक्टिनो-यूरेनियम की मात्रा अत्यधिक रही होगी। अतः अधिक पुरानी शिलाओं में अपेक्षाकृत अधिक हीलियम एक्टिनो-यूरेनियम के विघटन से बनी होगी। एक्टिनो-यूरेनियम प्रभाव के फल-स्वरूप आयु में जो शोधन करना चाहिए, वह नीचे की तालिका में उल्लिखित है—^१

आयु (वर्षों में)

एक्टिनो-यूरेनियम के प्रभाव के फल
स्वरूप शोधित आयु (वर्षों में)

१००,०००,०००	९६,५००,०००
२००,०००,०००	१९३,०००,०००
३००,०००,०००	२८९,०००,०००
४००,०००,०००	३८४,०००,०००
५००,०००,०००	४७८,०००,०००
६००,०००,०००	५७१,०००,०००
७००,०००,०००	६६३,०००,०००
८००,०००,०००	७५४,०००,०००
९००,०००,०००	८४४,०००,०००
१०००,०००,०००	९३३,०००,०००
११००,०००,०००	१०२१,०००,०००
१२००,०००,०००	११०७,०००,०००
१३००,०००,०००	११९१,०००,०००
१४००,०००,०००	१२७२,०००,०००
१५००,०००,०००	१३५०,०००,०००
१६००,०००,०००	१४२५,०००,०००
१७००,०००,०००	१४९९,०००,०००
१८००,०००,०००	१५७०,०००,०००

ऊपर की तालिका से ज्ञात होता है कि ज्यों-ज्यों हम अतीत में प्रवेश करते जाते हैं त्यों-त्यों आयु का अन्तर भी बढ़ता जाता है। कम आयु वाले खनिजों या शिलाओं में तो भौमिक दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। अधिक आयु वाले खनिजों में यह अन्तर स्पष्ट हो जाता है। जैसे यदि किसी खनिज की आयु एक अरब वर्ष है, तो एक्टिनो-यूरेनियम संशोधन से उसकी आयु केवल ८३ करोड़ ३० लाख वर्ष हो जाती है। इसी प्रकार एक अरब ८०

करोड़ वर्ष की आयु संशोधन के उपरान्त एक अरब ५७ करोड़ रह जाती है। अर्थात् आयु में २३ करोड़ वर्ष का अन्तर हो जाता है।

यदि शिला या खनिज में यूरेनियम के अतिरिक्त थोरियम भी विद्यमान है तो इस शोधित आयु में भी यूरेनियम-थोरियम अनुपात के आधार पर संशोधन कर दिया जाता है।

उपर्युक्त समस्त गणनाओं तथा सूत्र-निर्धारण में यह मान लिया गया है कि

१. पदार्थ, जिसका विश्लेषण किया गया, आरम्भ में हीलियम-रहित था।

२. पदार्थ में विघटन के फलस्वरूप जो कुछ भी हीलियम उत्पादित हुई, सुरक्षित रही।

३. विघटन सर्वदा समान गति से होता रहा है।

इनमें से विघटन विधि पर गत अध्याय में विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला जा चुका है। पृथ्वी के बाह्य और भीतरी भाग में व्याप्त परिस्थितियाँ रेडियो-सक्रिय पदार्थों की विघटन-गति को प्रभावित करने में पूर्ण रूप से असफल रही हैं। अतः विघटन गति को भौमिक काल के आरम्भ से अब तक समान माना जा सकता है।

आरम्भ में खनिज तथा शिलाएँ हीलियम रहित थीं; यह मान्यता भी उपयुक्त है। तरल पाषाणीय पदार्थ (मैग्मा)^१ के जमने पर जब खनिजों और शिलाओं की रचना हुई, तापमान इतना अधिक था कि यदि वहाँ कुछ हीलियम विद्यमान थी भी, तो वह उच्च तापमान के प्रभाव में लुप्त हो गयी।

पदार्थों में रेडियो-सक्रिय खनिजों के विघटन के फलस्वरूप जो हीलियम उत्पादित होती है, सदा सुरक्षित नहीं रहती। खनिजों से हीलियम कई

प्रकार से लुप्त हो जाती है। इसी कारणवश हीलियम विधि द्वारा ज्ञात आयु को उस शिला या खनिज की न्यूनतम आयु माना जाता है।

खनिजों से हीलियम का लोप तीन प्रकार से होता है। प्रथम, खनिजों के विगोपन^१ या अपावरण पर उनमें विद्यमान हीलियम वायुमण्डल में चली जाती है। अभिनव^२ न्यादर्शों^३ की अपेक्षा ऋतु-क्षारित^४ न्यादर्शों की हीलियम शीघ्रता से लुप्त होती है। दूसरे, विश्लेषण करने के लिए जब खनिजों को पीसा जाता है, हीलियम का लोप हो जाता है। खनिजों को जितना अधिक महीन पीसा जायगा, उतनी अधिक हीलियम उनमें से निकल जायगी। तीसरे, ताप के प्रभाव में हीलियम का द्रुत विसरण^५ होता है। हीलियम ही एक ऐसी गैस है जिसका साधारण तापमान पर भी शीशे में विसरण सम्भव है। तापमान-वृद्धि के साथ-साथ इसकी विसरण-गति भी बढ़ जाती है। तापमान अत्यधिक हो जाने पर हीलियम पूर्णतः लुप्त हो जाती है। विमुवियस और अन्य ज्वालामुखियों के लावा-परीक्षण में हीलियम नाम मात्र को भी नहीं मिली।

प्रयोगशाला में तापमान-वृद्धि के साथ-साथ हीलियम निष्कासन-मात्रा का अध्ययन किया गया। मोनाजाइट और थोरियानाइट को चूरा करके गर्म किया गया। तीन-सौ और चार-सौ अंश तापमान तक बहुत कम हीलियम गैस बाहर निकली। तत्पश्चात् नौ सौ अंश तापमान तक अत्यधिक मात्रा में हीलियम प्राप्त हुई। मोनाजाइट के एक न्यादर्श को ७२० अंश सेंटीग्रेड तक गर्म करने पर उसमें विद्यमान हीलियम का ६८ प्रतिशत भाग लुप्त हो गया। एक दूसरे न्यादर्श से ९०० अंश सेंटीग्रेड पर ८८.५ प्रतिशत तथा १००० अंश सेंटीग्रेड पर ९८.३ प्रतिशत हीलियम बाहर निकली।

1. Exposure

2. Fresh

3. Samples specimens

4. Weathered

5. Diffusion

थोरियानाइट के एक न्यादर्श से तो १००० अंश तापमान पर उसमें विद्यमान सभी हीलियम का लोप हो गया।

अपावृत खनिजों की हीलियम स्वतः ही वायुमण्डल में चली जाती है। पर जो खनिज गोपित हैं या नीचे गहराई पर हैं, उनकी हीलियम भी तापमान-वृद्धि के कारण विसरित होकर दरारों या संछिद्रों द्वारा बाहर आ जाती है और वायुमण्डल में विलीन हो जाती है।

इसके विपरीत कई बार खनिजों द्वारा हीलियम-शोषण की क्रिया भी होती है। अल्प रेडियो-सक्रिय खनिज विसरित हीलियम का अपने में शोषण कर लेते हैं। इस प्रकार उनकी हीलियम-मात्रा वास्तविक भाग से कहीं अधिक हो जाती है, जैसा कि हमें वैरिल, सिल्वान्, कानोलाइट आदि के कुछ न्यादर्शों में देखने को मिलता है।

खनिजों एवं शिलाओं में हीलियम

सर्वप्रथम रैमजे ने खनिजों में हीलियम को देखा। किन्तु हीलियम-युक्त खनिजों का विस्तृत विवरण स्ट्रुट ने, जो बाद को लार्ड रैले के नाम से विख्यात हुए, किया। उन्होंने ज्ञात किया कि हीलियम प्रायः सभी खनिजों में पायी जा सकती है। भिन्न-भिन्न काल की आग्नेय शिलाओं में विद्यमान ज़रकन, स्फीन आदि खनिजों का विश्लेषण करके आपने रेडियम, थोरियम और हीलियम की मात्रा ज्ञात की। इनकी हीलियम-निष्पत्ति के आधार पर आपने विभिन्न खनिजों की आयु बताया। कुछ मुख्य पदार्थों की हीलियम-निष्पत्ति नीचे की तालिकाओं में दी गयी है^१—

1. Age of the Earth—Bulletin of the National Research Council Washington, 1931 Based on tables from pp. 400-403, 407, 408.

(१)

पदार्थ	स्थान	युग	हीलियम-निष्पत्ति ही०/यू०
फास्फेटिक पिण्ड	कैम्ब्रिज, इंग्लैण्ड	खटी	०. ३३१
फास्फेटिक पिण्ड	नैपवैल, कैम्ब्रिज, इंग्लैण्ड	महासरट	०. ११०
फास्फेटिक पिण्ड (चूना पत्थर)	वाला के निकट, नार्थवेल्स	अवर प्रवालादि	५. ५८

(२)

खनिज	स्थान	युग	ही०/यू० + ०. २७ थो०
ज़रकन	मौटेसोमा, विमुवियस, इटली	अभिनव	०. ०१२
ज़रकन	उ० पू० तस्मानिया	महासरट	४. ४७
ज़रकन	ब्रैविक, द० नार्वे	मत्स्य	५. १९
ज़रकन	सेवास्टोपूल, ओन्टोरिया	मध्य या निम्न त्रिखण्ड	६४. ४४

(३)

खनिज	स्थान	युग	ही०/यू० + ०. २७ थो०
स्फीन (टाइटेनाइट)	लाचेर सी	परम नूतन	०. ०१
"	लैविस का०, न्यूयार्क	पूर्व त्रिखण्ड	५४. १
"	रैनफू का०, ओन्टोरियो	पूर्व त्रिखण्ड	६७. ७
"	अरेन्डाल, नार्वे	पूर्व त्रिखण्ड	३९. ५

(४)

लौह धातु के	स्थान	युग/कल्प	ही०/यू० + ०.२७ थो०
स्फैरोसिडराइट	नीडरप्लीस, राइन प्रांत	आदि नूतन	०.८३
हैमेटाइट	एन्ट्रिम का०, आयरलैण्ड	आदि नूतन— उच्च प्रादि नूतन	२.८८
हैमेटाइट	कौनफोर्थ के निकट, कंवरलैण्ड	उत्तर पुराकल्प	१३.७५
लिमोनाइट	फारेस्ट आफ डीन, इंग्लैण्ड	उत्तर अंगार	१५.२८
हैमेटाइट	केन, फ्रांस	मत्स्य	१३.५२

(५)

यूरेनियम धातु के	स्थान	युग	ही०/यू० + ०. २७ थो०
पिचब्लैण्ड	कोलोरडो	पूर्व तृतीयक	०.४५
पिचब्लैण्ड	जांयाचिमस्थल	उत्तर पुराकल्प	०.१६
पिचब्लैण्ड	सेंट स्टीफैंस खदान कार्नेवाल	उत्तर पुराकल्प	०.५६
पिचब्लैण्ड	कटांगा	उच्च त्रिखण्ड पूर्व	४.७६

(६)

थोरियम धातु के	स्थान	युग	ही०/यू० + ०. २७ थो०
थोरियानाइट	लंका (सीलोन)	उच्च पूर्व त्रिखण्ड	२५.५६
"	"	" "	२७.५०
मोनाजाइट	इशीकावा जि०, जापान	महासरट	५.२८
"	शौकुजान, कोरिया	?	४.३८

उपर्युक्त प्रथम चार तालिकाओं में उल्लिखित पदार्थों का विश्लेषण स्ट्रट ने किया था। पाँचवीं के पहले तीन न्यादर्शों का विश्लेषण भी उन्होंने ही किया, किन्तु कटांगा से प्राप्त पिचव्लैण्ड का विश्लेषण सी० डब्लू० डेविस ने किया। छठी तालिका के थोरियानाइड-न्यादर्शों के विश्लेषक भी स्ट्रट ही हैं। मोनाजाइट न्यादर्श जे० ससाकी द्वारा विश्लेषित किये गये थे।

तालिकाओं में वर्णित निष्पत्ति के सूत्र के आधार पर (आयु = हीलियम निष्पत्ति $\times ८८$ लाख वर्ष) ८८ लाख से गुणा करने पर उन पदार्थों की आयु ज्ञात की जा सकती है।

इस प्रकार ज्ञात आयु अधिक पुष्ट विधियों द्वारा ज्ञात आयु की अपेक्षा बहुत कम है। उपर्युक्त अध्ययन से यह भी पता चलता है कि फास्फेटिक पदार्थ तथा लौह धातु के पदार्थ साधारण शिलाओं की अपेक्षा अधिक रेडियो-सक्रिय हैं।

खनिजों के सदृश शिलाओं से हीलियम बाहर निकल सकती है। वे शिलाएँ जिनके कण छितराये रहते हैं, हीलियम को शीघ्र तथा अधिक मात्रा में खो देती हैं। इसके विपरीत जिन शिलाओं के कण महीन तथा एक दूसरे से सटे रहते हैं, उनसे हीलियम का लोप नहीं हो पाता, और यदि होता भी है तो अल्प मात्रा में। इस दृष्टि से बेसाल्ट, डोलराइट, फैंसाइट आदि शिलाएँ अपेक्षाकृत हीलियम के अच्छे भण्डार हैं। किन्तु रेडियो-सक्रिय खनिजों की तुलना में इन शिलाओं में भी हीलियम की मात्रा बहुत कम होती है। यदि रेडियो-सक्रिय खनिजों में हीलियम प्रति सौ ग्राम में १० से १००० घन सेंटीमीटर होती है, तो बेसाल्ट और डोलराइट में अपेक्षाकृत १० से १ लाख गुनी तक कम होती है। आधुनिक उपकरणों^१ के द्वारा अल्प मात्रा में विद्यमान हीलियम की मात्रा भी सरलता से जानी जा सकती है।

1. Apparatus

यह लिखते हुए हमें गर्व होता है कि शिलाओं की हीलियम मात्रा ज्ञात करने में हमारे देश के भूविद डॉ० विद्यासागर दुबे का भी योग था। आपने पृथ्वी की आयु पर कार्य करनेवाले सर्वप्रमुख प्रो० आरथर होम्स के साथ काम किया। डॉ० दुबे ने सौराष्ट्र प्रदेश की पावागढ़ पहाड़ी से तथा ग्वालियर श्रेणी—मोरार वर्ग—से शिला-न्यादर्श प्राप्त किये थे। हीलियम की मात्रा जानने के लिए आपने बर्लिन में प्रो० पैनेथ की प्रयोगशाला में डॉ० गुन्थर और के० डब्लू० पीटरसन के साथ काम किया था। यूरेनियम और थोरियम की मात्रा ज्ञात करने के लिए आप वियेना भी गये। वहाँ आपने 'टैक्विशे हाकशूले' में प्रो० एच० मारवे की प्रयोगशाला में निःसृति विधि^१ से यूरेनियम और थोरियम की मात्रा ज्ञात की।^२

भौमिक आयु या काल	शिलानाम	स्थान	ही०/ यू० + ०.२७ थो०	आयु (हीलि- यम निष्पत्ति से) १० लाख वर्षों में
अल्प नूतन	अम्ल फ़ैल्साइट	पावागढ़ पहाड़ी का प्लग चोटी से सौ फुट नीचे	०.६२	५
अल्प नूतन	" "	... चोटी से	०.६७	५.९
प्रारंभिक	बेसाल्ट, डैकन ट्रैप	... १४००	४.१९	३७
आदि नूतन		फुट नीचे		
उत्तरपूर्व	बेसाल्ट (महीन कण वाला)	वैलाकी वौरी,	५६.७	५००
त्रिखंड		मोरार वर्ग		
" " "	डोलाराइट सिल	सन्टोवा टेमक	४४.२	३८९
" " "	" "	मोरार वर्ग		
(अपेक्षाकृत मोटे कण वाली)			पैनियर, मोरार वर्ग	२३.१
				२०३

1. Emanation method

2. Age of the Earth, Bull. National Research Council,
Washington, 1931, pp. 413, 415.

उपर्युक्त तालिका का आलोचनात्मक अध्ययन करने पर निम्नोक्त तथ्य प्रकट होते हैं —

१. एसिड फ़ैल्साइट के न्यादर्शों से ज्ञात आयु ५० लाख या ५९ लाख वर्ष अल्प-नूतन काल की मान्य आयु (तीन करोड़ वर्ष) की अपेक्षा कम है। यह कदाचित् शिलाओं के गुप्त स्फाटीय गठन^१ के कारण है। यह गठन हीलियम संग्रह के लिए उपयुक्त नहीं है।

२. तीसरे न्यादर्श बेसाल्ट की हीलियम विधि से ज्ञात आयु ३७ करोड़ वर्ष है। दक्षिणी भूबंध^२, की जहाँ से यह न्यादर्श प्राप्त किया गया, आयु भी लगभग यही है। अतः ये परिणाम एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं।

३. चौथे, पाँचवें व छठे न्यादर्श के अध्ययन से हमें दो मुख्य बातों का पता चलता है। पहली, हीलियम संग्रह के लिए महीन कण वाली शिलाएँ मध्यम कण वाली शिलाओं की अपेक्षा तथा मध्यम कण वाली मोटे कण वाली शिलाओं की अपेक्षा अधिक उपयुक्त हैं। दूसरी, महीन कण वाली बेसाल्ट शिला की हीलियम विधि से ज्ञात आयु ५० करोड़ वर्ष—उत्तर-पूर्व त्रिखण्ड युग की मान्य आयु के लगभग बराबर ही है।

हीलियम विधि पर डॉ० डब्लू० डी० डरी का कार्य विशेष रूपसे उल्लेख्य है। आपने 'भौमिक काल नापने के लिए गठित समिति' के तत्वावधान में संयुक्त राज्य अमेरिका की 'मैसाचूसेट्स इन्स्टीट्यूट आफ टेक्नालाजी' में महत्वपूर्ण कार्य किया। बेसाल्ट तथा अन्य समानीय शिलाओं के न्यादर्शों का विश्लेषण कर आपने बताया कि—

१. सूक्ष्म कणीय बेसाल्ट शिलाओं में हीलियम की मात्रा लुप्त नहीं होती। यदि होती है तो वह नगण्य है।

२. इन शिलाओं को पीसने या चूरा करने में भी हीलियम की मात्रा नष्ट नहीं होती।

३. बेसाल्ट शिलाएँ बाह्य हीलियम का शोषण नहीं करतीं।

४. कायान्तरित शिलाएँ हीलियम विधि से आयु ज्ञात करने के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

५. शिला के एक ही न्यादर्श के विश्लेषण से रेडियम (यूरेनियम), थोरियम और हीलियम की मात्रा ज्ञात करनी चाहिए, यह अत्यन्त आवश्यक है।

नीचे की तालिका में एक ही शिला के चार न्यादर्शों से उपलब्ध परिणाम दिये गये हैं। ये न्यादर्श मिशगिन की डोलराइट भित्ति से लिये गये हैं। पहला न्यादर्श अवशीत किनारे^१ से, दूसरा और तीसरा लगभग चार फुट दूरी से एवं चौथा लगभग छः फुट दूरी से लिया गया है।^२

	ही० × १० ^५	रे० × १० ^{१३}	थो० × १० ^६	आयु १०
	घन से० प्रति	ग्राम प्रतिग्राम	ग्राम प्रतिग्राम	लाख वर्षों
	ग्राम			में
पहला न्यादर्श	६.५०	२.१७	१.३०	५५० ± २५
दूसरा न्यादर्श	२१.१४	२.०२	९.५६	५६० ± १५
तीसरा न्यादर्श	२१.२०	२.४४	८.६०	५८० ± २५
चौथा न्यादर्श	१४.८१	३.५०	४.२८	५७० ± १५

उपर्युक्त निष्कर्षों के अतिरिक्त डॉ० डरी ने बेसाल्ट तथा अन्य सूक्ष्म-कणीय शिलाओं के विश्लेषण के आधार पर जो काल-क्रम तैयार किया है, उसे नीचे की तालिका में दिया गया है। इसमें वर्णित हीलियम विधि से ज्ञात आयु अन्य विधियों द्वारा ज्ञात आयु के लगभग समान ही है।^३

1. Chilled margin

2. Age of the Earth. A Holmes 1937. p. 121.

३. वही, पृ० १२४-१२५ से (संक्षिप्त करके)।

युग	शिला	स्थान	आयु (लाख वर्षों में)
अति नूतन	बेसाल्ट	स्टीस पर्वत, ओरेगां	१३० ± १०
अल्प नूतन	"	पिक्चर गार्ज, ओरेगां	१८० ± १५
उत्तर आदि नूतन	"	हरमांसडोर्फ, लोअर साइलेशिया जर्मनी	३४० ± २०
आरम्भ प्रादिनूतन या			
उत्तर खटी	एनहाइड्राइट	साउथ लेक, फ्लोरिडा	७१० ± ६०
आरम्भ खटी	बेसाल्ट	लिटिल हैचेट पर्वत, न्यूमैक्सिको	८५० ± ३०
उत्तर महासरट	ग्रैनोडायोटाइट	नेवेदां	११०० ± ५०
रक्ताश्म	डोलराइट	वैस्ट राक सिल, न्यू हावेन कनेक्टिकट	१७०० ± १२०
आरंभगिरि या उत्तर अंगार	बेसाल्ट	ब्राइटन, मैसाचूसेट्स	२३०० ± १५०
उत्तर अंगार	"	टिटरस्टनक्ली, शौपशायर	२४०० ± १००
मत्स्य	ज्वालामुखी शिला	राउले, मैसाचूसेट्स	३००० ± १००
उत्तर अवर प्रवालादि	डोलराइट	वंकर पहाड़ी कैनिक्ट, पैसिलेवेनिया	३७५० ± १५०
त्रिखण्ड	बेसाल्ट	टिनेसी, डेमेसकस के निकट वरजीनिया	४६५० ± ३००
उत्तर पुरा त्रिखण्ड	केवीनावन बेसाल्ट	कालुमर काग्लोमरेट के नीचे	५३०० ± ३५०
पुरा त्रिखण्ड	एंडीसाइट	कीवाटिन (कदाचित्)	१०९०० ± ९००

परिवर्त्य प्रभामण्डल^१

परिवर्त्य प्रभामण्डलों का वर्णन किये बिना हीलियम विधि का वर्णन अपूर्ण रहेगा। सन् १८७३ में अण्वीक्ष से शिलाओं का अध्ययन करते समय कुछ खनिजों में छोटे छोटे गोल धब्बे दिखाई पड़े। इन धब्बों में रंग एक केन्द्र के चारों ओर चक्र रूप में व्यवस्थित रहते हैं। इन्हें ही परिवर्त्य प्रभामण्डल कहते हैं। इन धब्बों की प्रकृति तथा उत्पत्ति दीर्घकाल तक कल्पना का विषय रही। उस समय यह ज्ञात न था कि इन धब्बों का सम्बन्ध उन खनिजों में ही विद्यमान रेडियो-सक्रिय तत्त्वों से है तथा इनका अध्ययन उन खनिजों की आयु बताने में सहायक होगा।

सर्वप्रथम १९०७ में विख्यात भूशास्त्री जौली ने बताया कि यह प्रभामण्डल रेडियो-सक्रिय पदार्थों के कारण है। जिन खनिजों में ये प्रभामण्डल पाये जाते हैं, उनमें रेडियो-सक्रिय खनिज छोटे-छोटे कणों के रूप में विद्यमान हैं। प्रभामण्डल के केन्द्र में इन रेडियो-सक्रिय खनिजों को पहचाना जा सकता है, पर इसके लिए उच्च शक्ति वाले अण्वीक्ष की आवश्यकता होती है।

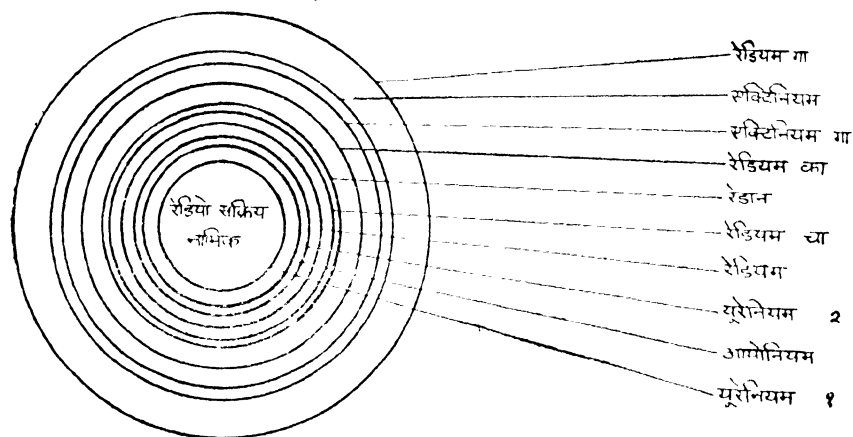
परिवर्त्य प्रभामण्डल कृष्णाभ्रक^२ (बायोटाइट), क्लोराइट, टूरमेलीन, कोरंडीराइट, फ्लोराइट आदि खनिजों में देखे गये हैं। इन खनिजों में ज़िरकन, अल्लानाइट, स्फीन इत्यादि रेडियो-सक्रिय खनिजों के छोटे-छोटे कण विद्यमान रहते हैं। रेडियो-सक्रिय होने के कारण इन छोटे-छोटे खनिज-कणों का विघटन होता है। फलस्वरूप आल्फा कण निष्कासित होते हैं। ये आल्फा कण अपनी सीमा के भीतर अपना प्रभाव दिखाते हैं। आल्फा कण वाले विभिन्न तत्त्वों का प्रभावक्षेत्र भिन्न है। यूरेनियम १ का प्रभावक्षेत्र २.६ सेंटीमीटर तथा रेडियम गा' का प्रभाव क्षेत्र ६.९७ सेंटीमीटर है। इसी प्रकार थोरियम-माला में थोरियम की प्रभावसीमा २.९०

तथा थोरियम गा' की प्रभावसीमा ८.६१७ सेंटीमीटर है। उपर्युक्त प्रभावक्षेत्र वायु-माध्यम में है। ठोस माध्यम में प्रभावक्षेत्र की सीमा कम हो जाती है और यह सीमा ठोस के घनत्व तथा अवरोधक शक्ति पर निर्भर रहती है। निष्कासित आल्फा कणों के भिन्न-भिन्न वेगों के कारण केन्द्र के चारों ओर चक्र बन जाते हैं। इन चक्रों की रचना का वर्णन नीचे किया जाता है।

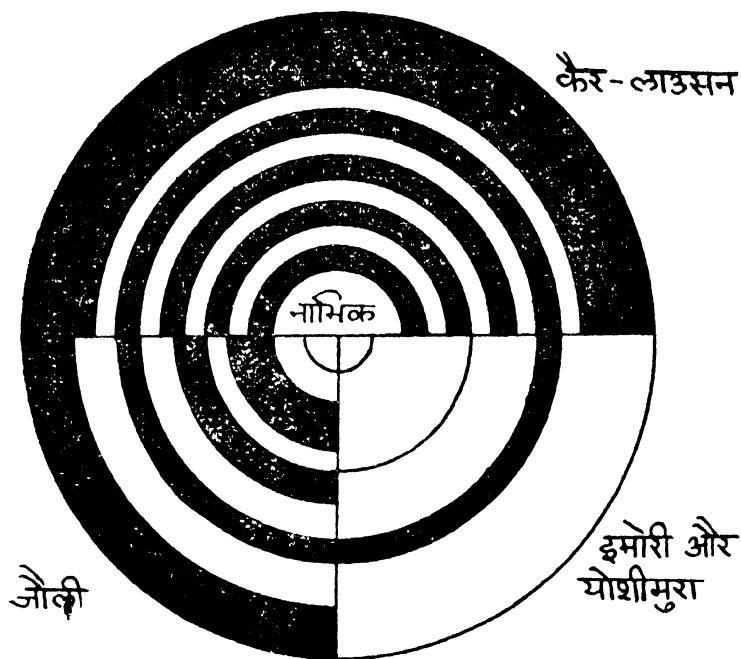
यूरेनियम प्रभामण्डल

भिन्न-भिन्न रेडियो-सक्रिय तत्त्वों से निकले आल्फा कणों का वेग भिन्न-भिन्न होता है, पर एक रेडियो-सक्रिय तत्त्व से निष्कासित आल्फा कणों का वेग सभी दिशाओं में समान रहता है। आल्फा कण अपने प्रभावक्षेत्र के भीतर अयनन^१ (आयनीकरण) कर देते हैं। यह ज्ञात हुआ है कि कण की विश्रामावस्था में आने के पूर्व अयनन क्रिया अधिक तीव्र रूप में होती है। यूरेनियम १ से निष्कासित आल्फा कण अभ्रक को ०.०१२५ मिलीमीटर दूरी तक वेध सकते हैं। विश्रामावस्था में आने से पूर्व अर्थात् लगभग ०.०१२५ मिलीमीटर दूरी पर ये अधिकतम विद्युत्-प्रभार^२ छोड़ते हैं। यह प्रभार सभी दिशाओं में समान रूप से विसर्जित होगा। अतः आल्फा-कण निष्कासन-केन्द्र के चारों ओर प्रभार के प्रभाव में एक वृत्त-सतह बन जायगी। रेडियम से निष्कासित आल्फा कणों का वेग यूरेनियम १ द्वारा निष्कासित आल्फा कणों के वेग की अपेक्षा अधिक होता है। फलस्वरूप ये अभ्रक को अधिक दूरी तक वेध सकते हैं, इनके प्रभाव से एक दूसरी वृत्त-सतह बन जाती है। इसी प्रकार रेडियम गा' से भी एक नये वृत्त की रचना होती है। सर्वाधिक प्रभावशील होने के कारण रेडियम गा' का वृत्त सबसे बाहर की ओर होता है। अन्य वृत्त इसके भीतर होते हैं। यूरेनियम

कुटुम्ब के मित्त सदस्यो वदारा रचित वृत्तों को नीचे के चित्रों में दिखाया गया है ।



चित्र ३३—यूरेनियम तथा उसके परिवर्तित पदार्थों द्वारा बने परिवर्त्य प्रभामंडल



चित्र ३४—यूरेनियम प्रभामंडल की आदर्श रचना:एँ

पहले चित्र में कुछ वृत्त इतने पास-पास हैं कि इन्हें एक ही वृत्त माना जा सकता है। इस प्रकार हमें छः मुख्य वृत्त प्राप्त होते हैं। इनमें से पाँच यूरेनियम १ परिवार के सदस्यों के तथा एक एक्टिनियम परिवार का है।

दूसरे चित्र में कैर-लाउसन, जौली तथा इमोरी-योशीमुरा द्वारा ज्ञात-वृत्त पृथक्-पृथक् रूप में दिखाये गये हैं। इन विद्वानों द्वारा वायोटाइट में ज्ञात प्रभामण्डलों की औसत नाप नीचे की तालिका में उल्लिखित^१ है —

जौली (पुराकल्प)	कैर लाउसन (त्रिखण्ड पूर्व)	इमोरी-योशीमुरा (पुराकल्प)
चौथा { बाहरी ... ३२.८ भीतरी ... २८.२	रा { ३३.०	परिवलय ^२ ३२.८
तीसरा { बाहरी ... २१.७ अक्षीय ... २०.४ भीतरी ... १८.६	र _३ { २२.० र _३ { २०.९	अधःपरिवलय ^३ २२.५
दूसरा { बाहरी ... १८.६ अक्षीय ... १७.२ भीतरी ...	र _२ { १८.६ र _२ { १७.१	प्युपिल ^४ २०.६
पहला { बाहरी ... १४.२ भीतरी ... १०.५	र _१ { १५.४ र _१ { १४.० र _० { १२.३	भीतरी वलय ^५ १६.२

1. Age of the Earth, Bull. National Research Council, Washington 1931, p. 167.

2. Corona

3. Subcorona

4. Pupil

5. Inner ring

फ्लोराइट खनिज में भी यूरेनियम प्रभामंडल देखे गये हैं। सर्वप्रथम १९११ में लैक्रोइक्स ने इनको फ्लोराइट के अन्दर पहचाना। तत्पश्चात् मुगे, गोडेन और शिलिंग ने भी इनका अध्ययन किया। इस खनिज की विशेषता यह है कि आल्फा कणों के प्रभावक्षेत्र के भीतर यह नीरंजित या श्वेतित^१ हो जाता है तथा बाहरी भाग का रंग गहरा हो जाता है। फ्लोराइट में यूरेनियम प्रभामण्डलों की नाप गुडेन के अनुसार नीचे दी गयी है।^२

आल्फाकण वाले	वलयों का अर्धव्यास
यूरेनियम १	१४.०
यूरेनियम २	१४.४
आयोनियम	१५.८
रेडियम	१६.९
रेडियम चा	१९.५
रेडियम निःमृति (इमेनेशन)	२०.५
रेडियम का	२३.५
रेडियम गा'	३४.५

नीरंजन-क्रिया,^३ जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, कभी-कभी अन्य खनिजों में भी देखने में आती है। आल्फाकणों के अति-विगोपन^४ से कुछ वलय-भागों का गहरा रंग हलका हो जाता है। जौली ने स्वीडन से प्राप्त कृष्णाभ्रक के न्यादर्श में इस क्रिया का अच्छा उदाहरण दिखाया है। अब तो प्रयोगशाला में भी यह परिवर्तन देखा जा चुका है और यह सत्य पूर्णतः

1. Bleached 2. Age of the Earth, Bull. National Research Council, Washington 1931, p. 163.

3. Bleaching

4. Over-exposure

स्थापित हो चुका है कि दीर्घकाल तक आल्फाकणों के प्रभाव से वलयों का रंग परिणत हो जाता है।

थोरियम प्रभामण्डल

थोरियम प्रभामंडल यूरेनियम प्रभामंडल की अपेक्षा अधिक बड़े होते हैं, इसलिए इन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है। थोरियम प्रभामंडल के सबसे बाहरी वलय का अर्धव्यास ४० अणुम^१ है, जबकि यूरेनियम प्रभामंडल के बाहरी वलय का अर्धव्यास ३३ अणुम है। थोरियम प्रभामंडल में सर्वप्रथम दो सकेन्द्रिक वलय r_4 और r_5 दिखाई पड़ते हैं। r_4 के भीतरी भागों में रंग गहरा होता है। फिर तीसरा वलय r_3 दिखाई पड़ता है। भीतरी भाग में रंग और गहरा हो जाता है तथा r_4 अस्पष्ट हो जाता है। तत्पश्चात् सबसे बाहरी वलय 'रा' मन्द-मन्द दृष्टिगत होता है। धीरे-धीरे यह एक पट्टी का रूप धारण कर लेता है। जौली के अनुसार नीचे की तालिका में प्यूपिल की परिधि को ही ' r_4 ' से संबोधित किया गया है —

कृष्णाभ्रक में थोरियम प्रभामंडल की नाप^२

वलय	अर्धव्यास अणुम (माइक्रोन्स) में
रा	३८.५ — ४२.२
r_4	२३.१ — २८.१
r_3	२१.९ —
r_2	१६.३ — १७.६
r_1	{ ११.० — ११.९ १०.० — १०.६

1. Microns

2. Age of the Earth, Bull.

National Research Council, Washington 1931, p. 182.

यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि खनिजों में एक्टिनियम वलय पृथक् रूप में नहीं देखा गया है। एक्टिनियम का वलय सदा यूरेनियम प्रभामंडलों में ही दृष्टिगोचर हुआ है।

इसके विपरीत खनिजों में कुछ ऐसे प्रभामंडल मिले हैं, जिनके स्रोत का अभी पता नहीं चला। विद्वानों ने इन प्रभामंडलों के विभिन्न नाम रखे हैं तथा इनकी उत्पत्ति के विषय में भी विविध विचारधाराएँ प्रचलित हैं। जौली ने अज्ञात उद्गम वाले प्रभामंडलों को 'या प्रभामंडल' और 'हावरनियम प्रभामंडल' कहा है। हावरनियम नाम आपने एक कल्पित और अज्ञात तत्त्व को दिया है। इमोरी और योशीमुरा ने कतिपय अज्ञात प्रभामंडलों को 'ला' प्रभामंडल कहकर संबोधित किया है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि 'या' और 'ला' प्रभामंडल पूर्णतः या अंशतः एक्टिनियम के कारण हैं।

कृष्णाभ्रक और हार्नब्लैण्ड में कुछ इतने बड़े प्रभामंडल मिले हैं जो कदाचित् किसी नये पर अभी तक अज्ञात रेडियो-सक्रिय पदार्थों के कारण हैं। यह धारणा एक नवीन रेडियो-सक्रिय तत्त्व की खोज की ओर इंगित करती है।

ताप का प्रभाव

जे० एच० जे० यूल द्वारा किये गये प्रयोगों के आधार पर हमें ज्ञात है कि लगभग ५०० अंश सेंटीग्रेड तक प्रभामंडलों पर ताप का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। इससे अधिक तापमान पर प्रभामंडल के चारों ओर के अभ्रक का विबंधन आरंभ हो जाता है तथा अभ्रक का रंग गहरा होता जाता है, यहाँ तक कि अभ्रक का रंग प्रभामंडल के गहरे भागों के समान

हो जाता है और प्रभामंडल अदृश्य हो जाता है। भिन्न भिन्न न्यादर्शों में यह परिवर्तन ६०० अंश से ७०० अंश सेंटीग्रेड तापमान तक होता है। तापमान-वृद्धि के फलस्वरूप कृष्णाभ्रक में विद्यमान जल धीरे धीरे कम होता जाता है तथा रंग गहरा होता जाता है। इसी प्रकार आल्फा-कणों के द्वारा खनिजों में प्रभामण्डलों की रचना होती है (ताप एक प्रकार की ऊर्जा है और आल्फाकणों में भी ऊर्जा है)। आल्फाकण कृष्णाभ्रक में विद्यमान जल का विच्छेदन कर देते हैं, फलस्वरूप विजलीयन^१ हो जाता है। अभ्रक में विद्यमान लोहस^२ आक्सीकरण के कारण लोहिक^३ में बदल जाता है और अभ्रक का रंग गहरा हो जाता है। इस विषय में विद्वान् एकमत हैं कि प्रभामण्डलों का रंग-परिवर्तन लोह की दशा में परिवर्तन होनेके कारण होता है। कदाचित् यही कारण है कि प्रभामंडल उन्हीं खनिजों में पाये जाते हैं जिनके योग में लोह विद्यमान रहता है। लोह-रहित खनिज, जैसे क्वार्ट्ज, फेल्सपार, श्वेताभ्रक आदि में प्रभामंडल नहीं दिखलाई पड़े हैं।

प्रभामंडलों के विशद अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि भिन्न भिन्न वलयों के अर्धव्यास नियत हैं। प्रभामंडलों की आयु से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। वलयों के अर्धव्यास निष्कासित आल्फाकणों की सीमा के अनुरूप होते हैं। आल्फाकणों के प्रभावक्षेत्र (या सीमाएँ) नियत हैं। आल्फाकणों की सीमाएँ उस रेडियो-सक्रिय पदार्थ की विघटन-गति पर निर्भर हैं। अतः रेडियो-सक्रिय पदार्थों की विघटन-गति भी नियत है। समय के साथ भी उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। यदि ऐसा न होता तो समय के साथ-साथ रेडियो-सक्रिय खनिजों की विघटन-गति में परिवर्तन होने के कारण आल्फाकणों की सीमाएँ बदलती रहतीं तथा इनसे निर्मित वलय भी स्थायी न होते। सारांश यह कि रेडियो-सक्रिय पदार्थों की विघटनगति नियत है, उसमें कभी कोई परिवर्तन नहीं होता।

प्रभामण्डलों की आयु

प्रभामण्डलों की आयु जानने का प्रथम प्रयास भी जौली और रदर-फोर्ड ने किया। आपने आयरलैंड के कारलो काउंटी से प्राप्त लाइन्सर-ग्रेजाइट के कृष्णाभ्रक में विद्यमान परिवर्त्य प्रभामण्डलों का अध्ययन किया। प्रभामण्डल का रंग निष्कासित आल्फाकणों की संख्या पर निर्भर रहता है। आल्फाकणों का निष्कासन खनिज में विद्यमान भीतरी पदार्थ की रेडियो-सक्रियता तथा आयु पर अवलम्बित है। प्रकृति में प्रभामण्डलों की रचना अल्प-रेडियो-सक्रिय पदार्थों के दीर्घकाल तक प्रभाव के कारण होती है। किन्तु जौली और रदरफोर्ड ने अपेक्षाकृत अधिक रेडियो-सक्रियता के प्रभाव में अल्पकाल में ही कृष्णाभ्रक में कृत्रिम प्रभामण्डल उत्पन्न किये जिनका रंग प्राकृतिक प्रभामण्डलों के समान था। अब यदि हम कृष्णाभ्रक में विद्यमान केन्द्रीय अन्तर्वस्तु की रेडियो-सक्रियता (जिसके प्रभाव में प्रभामण्डल बने) जान लें तो गणना करके यह भी ज्ञात कर सकते हैं कि कितने समय में वे कृष्णाभ्रक पर अपना प्रभाव दिखा रहे हैं। यह काल ही उन प्रभामण्डल की आयु होगा। प्रभामण्डल की आयु ही उस रेडियो-सक्रिय अन्तर्वस्तु की आयु होगी तथा यही आयु उस यजमान खनिज की भी होगी, जिसमें वह रेडियो-सक्रिय अन्तर्वस्तु विद्यमान है।

यजमान खनिज में विद्यमान अन्तर्वस्तु को उच्च शक्ति वाले अण्वीक्ष की सहायता से पहचाना जा सकता है। किन्तु इस अन्तर्वस्तु को यजमान खनिज से पृथक् करना कठिन है। अतः प्रत्यक्ष रूप से उस अन्तर्वस्तु में उपस्थित यूरेनियम की मात्रा नापी नहीं जा सकती। पर बहुत से यजमान खनिजों, यथा जरकन, स्फीन आदि का विश्लेषण कर उनमें विद्यमान रेडियो-सक्रिय पदार्थ की प्रतिशतता ज्ञात की गयी है। उदाहरणार्थ जरकन खनिज के भिन्न भिन्न न्यादशों का विश्लेषण कर ज्ञात किया गया है कि इनमें अधिक

से अधिक दस प्रतिशत यूरेनियम विद्यमान रहता है। यही खनिज अधिकतर कृष्णाभ्रक में अन्तर्वस्तु के रूप में विद्यमान रहता है। अतः यदि हम दस प्रतिशत को आधार मानकर प्रभामंडलों की आयु ज्ञात करें तो हल्के रंग वाले प्रभामण्डलों की आयु कम निकलेगी तथा गहरे रंग वालों की आयु लगभग ठीक आयेगी।

रदरफोर्ड ने इस आधार पर लाइन्सटर ग्रेनाइट की आयु ज्ञात की। कम से कम आयु पाँच करोड़ वर्ष तथा अधिक से अधिक आयु सैंतालीस करोड़ वर्ष ज्ञात हुई। इन शिलाओं की वास्तविक आयु लगभग ३० करोड़ वर्ष है। जरकन में दस प्रतिशत यूरेनियम मानकर सैंतालीस करोड़ वर्ष की आयु निकाली गयी है। यदि यूरेनियम की मात्रा बीस प्रतिशत मानी जाय तो लाइन्सटर ग्रेनाइट की आयु केवल २४ करोड़ वर्ष होगी। यदि यूरेनियम की मात्रा केवल पाँच प्रतिशत मानी जाय तो इनकी आयु सौ करोड़ वर्ष होगी। उचित आयु का मान अन्तर्वस्तु में विद्यमान रेडियो-सक्रिय पदार्थ की ठीक ठीक मात्रा के बोध पर निर्भर है। किन्तु, जैसा कि हम कह चुके हैं, यह बड़ा दुरूह कार्य है।

हीलियम विधि के आधार पर हम प्राचीनतम शिलाओं की आयु नहीं जान सकते। प्राचीनतम शिलाएँ तापमान तथा सम्पीडन के प्रभाव में विरूपित हो गयी हैं, उनका कायान्तरण हो गया है। उनमें जो कुछ भी हीलियम थी, कायान्तरण-क्रिया के समय ही लुप्त हो गयी होगी। अतः हीलियम को भूविद् का अत्यधिक उपयोगी अस्त्र नहीं कह सकते। 'नीर-क्षीर-विवेक' के लिए हमें 'सीसा विधि' की शरण में जाना होगा।

अध्याय १०

सीस विधि

“प्रकृति अपरिमित ज्ञान का भण्डार है, उसके पत्ते-पत्ते में शिक्षापूर्ण पाठ हैं, परन्तु उनसे लाभ उठाने के लिए अनुभव आवश्यक है।”

—हरिऔध

सीस विधि से पृथ्वी की आयु ज्ञात करनेवालों में वी० वी० बोल्टवुड अग्रणी थे। सर्वप्रथम सन् १९०५ में आपने बताया कि यूरेनियम का अन्ततः विघटित पदार्थ सीस है। आपने खनिजों में विद्यमान यूरेनियम और सीस का अध्ययन करके बताया कि जिन खनिजों में सीस की मात्रा अधिक है, वे अपेक्षाकृत अधिक पुराने हैं। बोल्टवुड का यही सिद्धान्त सीस विधि का आधार है। किन्तु बोल्टवुड ने खनिजों में विद्यमान सीस की सम्पूर्ण मात्रा को रेडियो-सक्रिय पदार्थों के विघटन से बना हुआ माना है। यह मान्यता वास्तविकता से परे है। यह तथ्य पूर्णतया स्थापित हो चुका है कि प्राथमिक सीस रेडियो-सक्रिय पदार्थों द्वारा जनित सीस से भिन्न है। इसका परमाणु भार भी भिन्न है।

डॉ० एफ० डब्लू० आस्टन, जे० एल० रोज, आर० के० स्ट्रानेथन आदि ने विभिन्न विधियों से सीस का अध्ययन करके बताया कि सीस के बहुत से समस्थानिक हैं। डॉ० आस्टन ने संहति-वर्णक्रम लेखी की सहायता से सीस का विश्लेषण करके बताया कि सीस के आठ समस्थानिक हैं, जिनके परमाणु भार २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१० हैं। जे० एल० रोज और आर० के० स्ट्रानेथन के निष्कर्ष भी डॉ० आस्टन के

परिणामों से मेल खाते हैं। किन्तु चुम्बकी-प्रकाशीय-विधि^१ द्वारा सीस के १६ समस्थानिक ज्ञात हुए हैं। इनकी संख्या २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६ है। साधारण सीस में, जो हमें गैलेना आदि धातुओं द्वारा प्राप्त होता है, तीन समस्थानिक प्रधान हैं। आधिक्य-क्रम से ये २०८, २०६, २०७ हैं। यूरेनियम सीस में आधिक्य-क्रम है २०६, २०७, २०८। सीस में ये तीन समस्थानिक इतनी अधिक मात्रा में विद्यमान हैं कि साधारण परिकलन के लिए अन्य समस्थानिकों की मात्रा पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है।

यूरेनियम और थोरियम के विघटन के परिणामस्वरूप सीस और हीलियम प्राप्त होते हैं। यूरेनियम का निर्माण दो अवियोज्य रासायनिक समस्थानिकों से हुआ है। उनमें एक यूरेनियम १ (५० भार २३८) तथा दूसरा एक्टिनो-यूरेनियम (५० भार २३५) है। वर्तमान काल में इसकी निष्पत्ति $\frac{\text{एक्टिनो-यूरेनियम}}{\text{यूरेनियम}} = \frac{१}{१.३९}$ ज्ञात की गयी है। जैसा कि पिछले अध्याय में बताया जा चुका है, एक्टिनो-यूरेनियम यूरेनियम १ की अपेक्षा दस गुने अधिक वेग से क्षय होता है, अतः भूतकाल में इनकी निष्पत्ति अधिक रही होगी। इनके परमाणवीय रूपान्तरण का परिणाम नीचे दिखाया गया है—

यूरेनियम →	सीस	+	हीलियम
२३८	२०६		८×४
यूरेनियम →	सीस	+	हीलियम
२३५	२०७		७×४
थोरियम →	सीस	+	हीलियम
२३२	२०८		६×४

1. Magneto-optic method

उपरिलिखित तथ्यों से विदित है कि प्रत्येक अवस्था में सीस का एक विशेष समस्थानिक उत्पादित होता है। साधारण सीस भी इन्हीं तीन समस्थानिकों का मिश्रण है, पर इसमें एक अन्य समस्थानिक सीस २०४ भी विद्यमान रहता है। अतः यदि किसी रेडियो-सक्रिय खनिज से सीस पृथक् किया जाय और संहति-वर्णक्रमलेखी की सहायता से उसका विश्लेषण करने पर उसमें सीस २०४ की विद्यमानता पायी जाय, तो इस सीस की मात्रा के आधार पर शिला में मूलतः विद्यमान साधारण सीस की मात्रा का अनुमान लगाया जा सकता है।

ऊपर के समीकरण से यह भी स्पष्ट है कि २३८ भाग यूरेनियम से एक ही समय में २०६ भाग सीस तथा ३२ भाग हीलियम प्राप्त होता है। यूरेनियम की हीलियम-उत्पादन गति हमने पिछले अध्याय में ज्ञात की थी। यदि हमें रेडियो-सक्रिय पदार्थों की वर्तमान सीस-उत्पादन गति भी ज्ञात हो जाय तथा हम शिलाओं में विद्यमान रेडियो-सक्रिय पदार्थों की मात्रा को जान लें, तो उन खनिजों या शिलाओं की, जिनमें वह खनिज है, आयु जान सकते हैं। रेडियो-जनित सीस-उत्पादन की वर्तमान गति हमें मालूम है। एक लाख ग्राम यूरेनियम से एक वर्ष में 6.6×10^{-6} ग्राम सीस उत्पादित होता है। अतः यदि किसी यूरेनियम खनिज में यू प्रतिशत यूरेनियम है तथा सीस यू प्रतिशत यूरेनियम सीस है, तो इस सीस के एकत्र होने में लगनेवाला समय निम्नांकित सूत्र से दर्शाया जा सकता है।

$$\text{समय} = \frac{66000 \text{ सीस यू}}{\text{यूरेनियम}} \cdot \text{लाख वर्ष}$$

इसी प्रकार एक लाख ग्राम थोरियम से एक वर्ष में 2.11×10^{-6} ग्राम थोरियम-सीस प्राप्त होता है। यदि किसी खनिज में थो प्रतिशत थोरियम तथा सीस थो प्रतिशत थोरियम सीस है, तब समय

$$\begin{aligned} &= \frac{211000 \text{ सीस थो}}{\text{थो}} \cdot \text{लाख वर्ष} \\ &= \frac{66000 \text{ सीस थो}}{36 \text{ थो}} \cdot \text{लाख वर्ष} \end{aligned}$$

किन्तु यदि किसी खनिज में यूरेनियम और थोरियम दोनों ही उपस्थित हैं और सम्पूर्ण सीस 'सीस' प्रतिशत हैं, तो समय को निम्नोक्त सूत्र द्वारा बताया जा सकता है —

$$\text{समय} = \frac{\text{सीस}}{\text{यू} + .३६ \text{ थो}} \times ७६००० \text{ लाख वर्ष}$$

$\frac{\text{सीस}}{\text{यू} + .३६ \text{ थो}}$ को सीस-निष्पत्ति भी कहते हैं।

उपर्युक्त सूत्रों को पूर्ण मानने से पूर्व हमें निम्नलिखित बातों पर विचार करना होगा—

१. शिला में प्राथमिक सीस विद्यमान था या नहीं। यदि विद्यमान था तो इस आधार पर ज्ञात आयु में संशोधन करना होगा।

२. स्फाटन क्रिया के उपरान्त खनिज से सीस का अल्प भाग भी बाहर तो नहीं गया है और न बाह्य स्रोत से खनिज में सीस की मात्रा में वृद्धि हुई है।

३. जनक तत्त्व अक्षय हैं या नहीं, अर्थात् जनक तत्त्व समय के साथ-साथ घिसते हैं या नहीं। यदि जनक तत्त्व घिसते हैं तो उनकी गति क्या है? क्या यूरेनियम और थोरियम का समस्त भौमिक काल में समान गति से विघटन हुआ है?

पहले प्रश्न पर विचार करने से ज्ञात होता है कि कुछ खनिज ऐसे हैं जिनमें रेडियो-जनित सीस अत्यधिक है और कुछ खनिज ऐसे हैं जिनमें साधारण सीस बहुलता में है। साधारणतः आग्नेय शिलाओं में सीस की मात्रा उन शिलाओं में यूरेनियम की मात्रा के आधार पर अपेक्षित सीस की मात्रा से कहीं अधिक है। उदाहरणार्थ 'जायंट कौसवे' के बेसाल्ट में विद्यमान सीस का केवल $1/10$ ही यूरेनियम से संबद्ध है। इसी प्रकार किम्बर-लाइट शिला में, जिसमें हीरा उपलब्ध होता है, सीस की मात्रा अपेक्षित मात्रा से चार सौ गुनी अधिक है। आग्नेय शिलाओं में विद्यमान सीस का अल्पांश ही रेडियो-सक्रिय खनिजों के विघटन से बना है, शेष प्राथमिक

अथवा साधारण सीस है। अनुभव से ज्ञात हुआ है कि अधिकतर यूरेनियम खनिजों में प्राथमिक सीस विद्यमान रहता है। यूरेनियम खनिजों में प्राथमिक सीस की उपस्थिति सीस (२०४) की विद्यमानता से जानी जा सकती है। थोरियम-रहित खनिजों में प्राथमिक सीस की उपस्थिति सीस २०८ से भी जानी जा सकती है।

भाग्यवश रेडियो-सक्रिय खनिजों में साधारण सीस की मात्रा अत्यल्प है। जिन शिलाओं से रेडियो-सक्रिय खनिज, जैसे यूरेनिनाइट, मोना-जाइट आदि प्राप्त होते हैं, उनमें साधारण सीस की धातुक^१ गैलेना नहीं मिलती, और यदि मिलती है तो नाम मात्र को। ये शिलाएँ मुख्यतः पैग-मेटाइट हैं, जिनके कण बड़े होते हैं। किन्तु धातुक (अयस्क) —अण्वीक्ष की सहायता से यूरेनिनाइट के न्यादर्शों में भी गैलेना के सूक्ष्म कण देखे गये हैं। यूरेनियम खनिज पिचब्लैण्ड की कुछ किस्में साधारण सीस-धातुक गैलेना के साथ प्राप्त होती हैं। ऐसी दशा में पिचब्लैण्ड का कोई भी ऐसा न्यादर्श मिलना कठिन हो जाना है, जिनमें गैलेना न हो। किन्तु परमाणु-भार के आधार पर इन खनिजों में विद्यमान साधारण सीस और यूरेनियम सीस की मात्रा पृथक्-पृथक् जानी जा सकती है।

कुछ यूरेनिनाइट न्यादर्शों के विश्लेषण पर उनका परमाणुभार लगभग २०६ ज्ञात हुआ है, उनमें साधारण सीस (५० भार २०७.२) अनुपस्थित है, अर्थात् उनमें साधारण सीस आरम्भ से ही नहीं था। कुछ न्यादर्शों में साधारण सीस प्राप्त हुआ है, पर उसकी मात्रा इतनी कम है कि उससे उन खनिजों की आयु पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। अधिकतर खनिजों से उपलब्ध रेडियो-जनित सीस का परमाणु-भार २०६ से कुछ अधिक होता है। इसका कारण यह है कि यूरेनियम के प्रायः सभी खनिजों में थोरियम भी वर्तमान रहता है। कुछ यूरेनियम खनिजों के परमाणु-भार ये हैं —°

1. Ore, अयस्क
2. Age of the Earth, an introduction to Geological Ideas—A. Holmes 1927, p. 61.

खनिज	विश्लेषक	परमाणु-भार
पिचब्लैण्ड, कटांगा	होनिंग्समिड और विरकेनवाश	२०६.०४८
यूरेनिनाइट, मोरोगोरो	होनिंग्समिड और होटोविट्ज	२०६.०४६
ब्रोगराइट, नार्वे	होटोविट्ज	२०६.०६
यूरेनिनाइट, द० डकोटा	हाल और रिचार्ड्स	२०६.०७
क्लीवेआइट, नार्वे	रिचार्ड्स और व्हाडस्वर्थ	२०६.०८
ब्रोगराइट, नार्वे	रिचार्ड्स वाडस्वर्थ	२०६.१२

विश्व की प्रसिद्ध जोयाविमस्थल खदानों से प्राप्त यूरेनियम खनिज पिचब्लैण्ड में थोरियम विद्यमान नहीं है, किन्तु यह धातुक (अयस्क)-गैलेना के साथ मिलती है। थोरियम सीस की विद्यमानता से उत्पन्न जटिलता यहाँ नहीं है तो साधारण सीस-धातुक-गैलेना की उपस्थिति आपत्तिजनक है। इस पिचब्लैण्ड के सीस का परमाणुभार २०६.५९ ज्ञात हुआ है। यह संख्या २०६ और २०७.२ के बीच है, अर्थात् सीस की मात्रा का आधा भाग रेडियो-सक्रिय उद्गम का है। साधारणतः जब यूरेनियम खनिज थोरियम-रहित होते हैं, तब उनमें साधारण सीस की मात्रा मुलभूत से जानी जा सकती है। थोरियम की उपस्थिति में, विशेष कर जब कि थोरियम की मात्रा अधिक हो, सीस का विश्लेषण कठिन हो जाता है। थोरियम-सीस के प्रभाव में साधारण सीस एवं समस्त परमाणु-भार दोनों ही बढ़ जाते हैं। यह कठिनाई तभी दूर हो सकती है जब कि सीस के विभिन्न समस्थानिकों की आनुपातिक मात्रा तथा यूरेनियम सीस (रेडियम छा) और एक्टिनियम सीस (एक्टिनिडम घा) की निष्पत्ति ज्ञात हो।

दूसरी मान्यता है कि खनिज सदा पवित्र रहे हैं। उनमें से यूरेनियम, थोरियम और सीस के अल्पांश का भी लोप नहीं हुआ और न किसी बाह्य उद्गम से सीस खनिज में प्रविष्ट हुआ है। इस मान्यता का परीक्षण सरल है। यदि समान भौमिक आयु की शिलाओं से उपलब्ध ताजे प्राथमिक न्यादर्शों से समान सीस-निष्पत्ति ज्ञात होती है, तो यह अधिक संभव है

कि खनिजों से न तो सीस का लोप हुआ है और न उनमें सीस बाहर से प्रविष्ट हुआ है। क्योंकि यदि ऐसा हुआ होता तो अलग-अलग स्थानों पर इनका प्रभाव भिन्न होता और परिणामस्वरूप इनकी सीस-निष्पत्ति भी भिन्न होती।

परिवर्तन का प्रभाव अन्य खनिजों की भाँति रेडियो-सक्रिय खनिजों में भी देखने को मिलता है। पहले खनिज के बाहरी भाग परिवर्तित होते हैं, क्रमशः यह क्रिया भीतरी भागों को भी प्रभावित करती है। अन्ततः पूरा खनिज परिवर्तित हो जाता है। एल्सवर्थ^१ ने एक यूरेनिनाइट के न्या-दर्श का अध्ययन किया, जिसमें परिवर्तन के कारण चार भिन्न-भिन्न भाग स्थापित किये जा सकते हैं। इस न्यादर्श का आन्तरक सबसे कम प्रभावित हुआ है। इसका रंग भी काला है। इसकी सीस-निष्पत्ति ०.१५७ है। आन्तरक के ऊपर वाले भाग का रंग भी काला है, पर इसमें कोई चमक नहीं है। इसकी सीस-निष्पत्ति ०.१६० है। इससे ऊपर वाले भाग का रंग परिवर्तन क्रिया से गहरे लाल रंग^२ का हो गया है तथा इस में मोम की सी चमक है। इसकी सीस-निष्पत्ति .२६३ है। सर्वाधिक परिवर्तित बाहरी भाग है, जो अति मुलायम एवं पीले रंग का है। परिवर्तन-क्रिया के साथ-साथ सिलिका और जल की मात्रा बढ़ती जाती है। यूरेनियम डाइ-आक्साइड,^३ यूरेनियम ट्राइ-आक्साइड^४ में परिणत हो जाता है। आक्सिजन की मात्रा अधिक बढ़ने पर खनिज से सीस की अपेक्षा यूरेनियम के अधिक मात्रा में निकल जाने की संभावना रहती है। अतः परिवर्तन के फलस्वरूप यूरेनियम खनिजों की सीस-निष्पत्ति बढ़ जाती है।

1. Age of the Earth—A. Holmes 1937 p. 169.
2. Scarlet
3. Uranium dioxide (UO₂)
4. Uranium trioxide (UO₃)

नार्वे के ताजे और परिवर्तित यूरेनिनाइट की निष्पत्ति दी गयी है^१ —

खनिज	यू०	थो०	सीस	सीस यू + ०.३८ थो०
अरेन्डल, नार्वे				
१. यूरेनिनाइट	६१.२७	३.६५	१०.१६	०.१६२
२. यूरेनिनाइट (परिवर्तित)	५५.०५	३.२२	९.७८	०.१७२

किन्तु जिन खनिजों में थोरियम की मात्रा अधिक होती है, उन पर यह नियम लागू नहीं होता। थोराइट, थोरियानाइट आदि थोरियम खनिजों की बहुत सी किस्में पानी को शीघ्र ही सोख लेती हैं। परिणाम-स्वरूप उनकी आन्तरिक स्फाटीय संरचना नष्ट हो जाती है। इस अवस्था में ये शीघ्र परिवर्तित हो जाते हैं और शिलाओं से रिसकर बाहर निकल जाते हैं। अधिकांश दशाओं में इन खनिजों की सीस-निष्पत्ति बहुत कम हो जाती है। श्रीलंका से प्राप्त कुछ न्यादर्शों की सीस-निष्पत्ति नीचे दी गयी है^२—

खनिज	यू०	थो०	सीस	सीस यू + ०.३८ थो०
पिचब्लैंड	७१.४०	७.८६	४.७५	०.०६६
थोराइट	४.५७	६२.८	१.२८	०.०४५
थोराइट	३.५०	५९.२	०.७८	०.०२९
थोराइट	१.६२	५४.४	०.३६	०.०१६
थोराइट	१.८८	६५.४	१.७१	०.०६४

1. The Age of the Earth—An Introduction to Geological Ideas. A. Holmes 1927 p. 62. २. वही, पृ० ६३।

आर्थर होम्स ने यूरेनियम और थोरियम खनिजों की इस भिन्नता के कारणों पर प्रकाश डाला है। आपने बताया है कि जब सीस यूरेनियम और आक्सिजन से सम्बन्धित रहता है तो वह यूरेनेट बन जाता है, जो अपेक्षाकृत अघुलनशील है। अतः यूरेनियम खनिजों से यूरेनियम अधिक रिस-कर^१ निकल जाता है और इस प्रकार सीस-निष्पत्ति बढ़ जाती है, पर जब सीस थोरियम, आक्सिजन तथा सिलिकन से संवद्ध रहता है तो सीस के घुलनशील यौगिक बनते हैं। अतः सीस अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में खनिज से बाहर निकल जाता है और परिणामस्वरूप सीस-निष्पत्ति कम हो जाती है।

आर्थर होम्स ने एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। एक ही पैगमेटाइट के खनिजों की सीस-निष्पत्ति भिन्न भिन्न हो सकती है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इन खनिजों के न्यास विश्वसनीय नहीं हैं। बहुत से पैगमेटाइट भूपटल में मैग्मा के एक बार के प्रवेश से ही नहीं बने हैं, वरन् उनमें बाद में भी धीरे धीरे परिवर्तन होता रहा है। मैग्मा के अन्य प्रवेशों के परिणामस्वरूप मूल पैगमेटाइट में परिवर्तन हुए हैं। परिवर्तन पैगमेटाइट के सम्पूर्ण भाग में समान रूप से नहीं होते हैं। अतः एक ही पैगमेटाइट के भिन्न भिन्न भागों के खनिजों की सीस-निष्पत्ति भिन्न-भिन्न हो सकती है। उदाहरणार्थ एक पैगमेटाइट में आरम्भ में पोटेशियम फेल्सपार, आर्थोक्लेस में घना हो सकता है। कुछ काल पश्चात् पोटेशियम फेल्सपार का सोडियम फेल्सपार द्वारा पुनःस्थापन हो सकता है, तदुपरान्त उसके स्थान पर कोई अन्य खनिज आ सकता है।

एक ही पैगमेटाइट में दो या दो से अधिक बार खनिजीकरण^२ संभव है। इस पैगमेटाइट की आयु उसमें विद्यमान सबसे पुराने रेडियो-सक्रिय खनिज की आयु के बराबर ही होगी। पर इसमें कुछ नये रेडियो-सक्रिय खनिज

भी हो सकते हैं, जो पश्चात्-खनिजीकरण के परिणामस्वरूप पैगमेटाइट को प्राप्त हुए हों।

उपरिलिखित तीनों परिवारों, अर्थात् यूरेनियम १, एक्टिनो यूरेनियम तथा थोरियम की एक सदस्या गैस है। यूरेनियम १ के विघटन-क्रम में रेडान गैस प्राप्त होती है, जिसका अर्ध जीवनकाल ३.७५ दिन है। एक्टिनियम-निस्सृति^१ तथा थोरियम-निस्सृति का आधा जीवन-काल क्रमशः ३.५ तथा ५४.५ सेकंड है। यदि इस निस्सृति या गैस का खनिज से लोप हो जाय तो उसके तुल्य सीस की मात्रा में कुछ कमी हो जायगी। एक्टिनो यूरेनियम तथा थोरियम निस्सृति का आधा जीवन-काल कुछ ही सेकंड है, अतः इनमें गैस के लोप होने की संभावना कम है। किन्तु यूरेनियम १ की निस्सृति का आधा जीवन-काल ३.७५ दिन है, यहाँ गैस के विसर्जन की संभावना अधिक है।

अब रही तीसरी मान्यता। इस पर रेडियो-सक्रियता और भौतिक काल नामक अध्याय में विस्तारपूर्वक विचार हो चुका है। रेडियो-सक्रिय तत्वों पर भौतिक और रासायनिक वातावरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस सम्बन्ध में लार्ड रैले ने सन् १९२१ में ब्रिटिश एसोसिएशन की एक सभा में कहा था—‘हम प्रयोगशाला में ऐसा कोई ताप या दाब उत्पन्न नहीं कर सकते, जो रेडियो-सक्रिय तत्वों की विघटन-गति को प्रभावित कर सके। भूपटल का ताप और दाब भी इस दिशा में प्रभावशाली नहीं है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यूरेनियम का विघटन आज भी उसी गति से हो रहा है जैसा कि भूतकाल में होता था।’

किसी खनिज में एक्टिनो-यूरेनियम की उपस्थिति भी उसकी सीस-निष्पत्ति को प्रभावित करती है। एक्टिनो-यूरेनियम यूरेनियम का ही एक समस्थानिक माना गया है। यह यूरेनियम १ की अपेक्षा शीघ्र विघ-

टित होता है। किन्तु खनिजों में एक्टिनो-यूरेनियम अल्पमात्रा में ही पाया गया है। प्राचीन शिलाओं में इसकी मात्रा अधिक रही होगी। अतः उनकी आयु में इस आधार पर संशोधन करना आवश्यक है। 'हीलियम विधि' अध्याय में इस विषय पर विस्तार से कहा जा चुका है तथा वहाँ पर आयु में संशोधन करने के लिए तालिका भी दी गयी है।

किसी भी खनिज की सीस-निष्पत्ति निकालने से पूर्व हमें उसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। खनिज अपरिवर्तित होना चाहिए। समान भौमिक आयु वाले खनिजों में यदि कुछ यूरेनियम के धनी हैं तथा कुछ में थोरियम की मात्रा अधिक है तथा दोनों ही वर्गों के खनिजों की आयु समान आती है, तो इन परिणामों को पूर्णतः विश्वसनीय माना जा सकता है।

रेडियो-सक्रिय विधि से पृथ्वी की आयु जानने के लिए अमेरिका में 'नेशनल रिसर्च कौंसिल' के अन्तर्गत निर्मित भौमिक काल-मापन समिति का कार्य विशेष रूपेण उल्लेख्य है। विश्व के विभिन्न भागों में पाये जाने-वाले रेडियो-सक्रिय खनिजों की सीस-निष्पत्ति ज्ञात की गयी है। यूरे-शिया में इन खनिजों के न्यादर्श नार्वे, स्वीडन, फिनलैंड, चेकोस्लोवाकिया, स्काटलैंड, पुर्तगाल, स्विट्जरलैंड, जापान, बोर्नियो आदि देशों में उपलब्ध किये गये। उत्तरी अमेरिका में रेडियो-सक्रिय खनिज कनाडियन वर्म, टैक्सास, डकोटा, कोलोरडो, उटाह, इडाहो आदि भागों से प्राप्त किये गये। इनके अतिरिक्त द० आस्ट्रेलिया, प० आस्ट्रेलिया, मोज़ाम्बीक, मोरोगोरो, ब्राजिल, कटांगा, लंका आदि से प्राप्त यूरेनियम, थोरियम खनिजों का विश्लेषण कर सीस-निष्पत्ति ज्ञात की गयी। भारतवर्ष में रेडियो-सक्रिय खनिज बंगलोर, राजस्थान और बिहार से प्राप्त किये गये। बिहार के गया जिले में पैगमेटाइट शिलाएँ इस दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण रही हैं। इनसे केवल यूरेनिनाइट ही नहीं, वरन् टौरवरनाइट, समर्सकाइट, गेडोलिनाइट, कोलम्बाइट आदि अन्य खनिज भी प्राप्त हुए हैं। थोरियम खनिज मोनाजाइट का तो हमारा देश प्रमुख उत्पादक है। भारतवर्ष के पश्चिमी तट पर क्वीलन से कुमारी अन्तरीप तक लगभग ११० मील

लम्बी पट्टी की समुद्री बालू में मोनाजाइट खनिज पाया जाता है। मोनाजाइट की मात्रा कहीं अधिक है और कहीं कम, पर सर्वत्र वह औसतन पाँच प्रतिशत मानी जा सकती है। नीचे की तालिका में सीस-निष्पत्ति के आधार पर ज्ञात आयु दी गयी है^१ —

खनिज	स्थान	भौमिक काल	आयु (करोड़ वर्षों में)
पिचब्लैंड	कोलोरडो	तृतीयक का आरम्भ	५.८
पिचब्लैंड	बोहिमिया	उत्तर अंगार काल	२१.
समर्सकाइट	कनैक्टिकट	मत्स्यकाल का अन्त	२५.५
सिरटोलाइट	न्यूयार्क	अवर प्रवालादि का अन्त	३५.०
कोल्म	स्वीडन	उत्तर (कैम्ब्रियन त्रिखण्ड)	४४.०
यूरेनिनाइट	मोरोगोरो, टांगानियका	पूर्व कैम्ब्रियन (त्रिखण्ड)	६१.५
पिचब्लैंड	कटांगा, बेल्जियन कांगो	„	६३.०
यूरेनिनाइट	राजस्थान, भारत	„	७५.५
„	गया, भारत	„	९५.५
„	गोरडोनिया, द०अफ्रीका	„	१०२.५
„	विलवरफोर्स, ओंटे- रियो	„	१०३.५

1. The Age of the Earth, W.A. Holmes. The Crust of the Earth edited by Samuel Rapport & Hellen Wright, 1955. p. 167.

खनिज	स्थान	भौमिक काल	आयु (करोड़ वर्षों में)
क्लीवेआइट	औस्ट अगडर, द० नार्वे	पूर्व कैम्ब्रियन (भिखंड)	१०९.०
पिचब्लैंड	ग्रेट वियर लेक, कनाडा	,,	१४०.०
डेविडाइट	रेडियम हिल, आस्ट्रेलिया	,,	१५४.०
पिचब्लैंड	मार्टिन लेक अथावस्का	,,	१६५.०
पिचब्लैंड	रैक्स, ग्रेट स्लेवलेक	,,	१८५.०
मोनाजाइट	बंगलोर, भारत	,,	२३०.०
यूरेनिनाइट	मनीटोबा	,,	२४७.५
मोनाजाइट	मनीटोबा	,,	२५९.०
मोनाजाइट	द० रोडेशिया	,,	२६५.०

द० रोडेशिया से प्राप्त मोनाजाइट सबसे अधिक पुराना खनिज है। इस खनिज की आयु दो अरब पैंसठ करोड़ वर्ष है। संभव है, इससे भी अधिक पुराने खनिज प्रकाश में आयें और उनकी आयु इस खनिज से अधिक हो। उसी वर्ग के पैगमेटाइट के अन्य रेडियो-सक्रिय खनिजों के विश्लेषण से भी मोनाजाइट की २६५ करोड़ वर्ष की आयु की पुष्टि हो गयी है। भौमिकीज्ञों ने ज्ञात किया कि पैगमेटाइट का यह वर्ग आद्यकल्प की तीसरी (अन्तिम) गिरिजन क्रिया के अन्त समय में निर्मित हुआ। अफ्रीका के इस भाग की प्राचीनतम शिलाएँ (२६५ करोड़ + ६० करोड़ आद्यकल्प के तीन गिरिजन काल) तीन अरब वर्ष से भी अधिक पुरानी हैं। अतः पृथ्वी की न्यूनतम आयु तीन अरब वर्ष मानी जा सकती है।

पृथ्वी की अधिकतम आयु जानने के लिए हम यह मान लें कि आरम्भ में पृथ्वी में सीस समस्थानिक २०७ बिल्कुल नहीं था। भूपटल पर जो कुछ भी सीस २०७ शिलाओं में हमें मिलता है, यूरेनियम २३५ के विघटन से प्राप्त हुआ है। कितने समय में यह सीस २०७ उपलब्ध हुआ? वैज्ञानिकों ने गणना करके यह काल ५ अरब ४० करोड़ वर्ष बताया है, अतः पृथ्वी की आयु तीन अरब और ५ अरब ४० करोड़ वर्ष के बीच है।

रुबिडियम-स्ट्रॉन्शियम विधि

रुबिडियम एक विरल तत्त्व है। यह सोडियम और पोटेशियम के समान है। भूपटल की आग्नेय शिलाओं में भार के हिसाब से इसकी मात्रा ०.०३५ प्रतिशत है। रुबिडियम के दो समस्थानिक ज्ञात हैं, इन्हें क्रमशः रुबिडियम ८७ तथा रुबिडियम ८५ कहते हैं। रुबिडियम में इन दोनों समस्थानिकों का अनुपात २७ और ७३ है। टामसन ने ज्ञात किया कि रुबिडियम ८७ रेडियो-सक्रिय है। इसके विघटन पर एक बीटा कण निष्कासित होता है और यह समान परमाणु-भार के स्ट्रॉन्शियम ८७ में परिवर्तित हो जाता है।

आग्नेय शिलाओं में स्ट्रॉन्शियम की मात्रा भार के हिसाब से ०.०२२ प्रतिशत है। यह रुबिडियम की अपेक्षा कम है। रुबिडियम के समस्थानिक ८७ की विघटनगति अत्यल्प है। इसका आधा जीवनकाल ६० अरब वर्ष है, इस विधि का यह एक लाभ है। इतना अधिक जीवन काल होने से जनक तत्त्व का लोप इतना कम होगा, उसको ध्यान में न रखने से गणना में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा। पर इस विधि में एक असुविधा भी है, रुबिडियम से उपलब्ध रेडियो-सक्रिय स्ट्रॉन्शियम की मात्रा इतनी अल्प है कि उसका मापना बड़ा कठिन है। किन्तु एहरेन्स और मटौख^१ आदि के परिश्रम के

फलस्वरूप अल्प मात्रा में विद्यमान समस्थानिकों की मात्रा भी जानी जा सकती है।

रुबिडियम-स्ट्रॉंशियम विधि से आयु ज्ञात करने के लिए वेही खनिज अधिक उपयुक्त हैं जिनमें रुबिडियम की मात्रा अधिक हो तथा उनमें अरेडियो-सक्रिय^१ स्ट्रॉंशियम अनुपस्थित हो। इस दृष्टि से अभ्रक वर्ग का खनिज लेपिडोलाइट महत्त्वपूर्ण है। इसमें रुबिडियम की प्रतिशत मात्रा १.५ है तथा साधारणतः इस खनिज का अपक्षण^२ नहीं होता है। लैपिडोलाइट के अतिरिक्त वायोटाइट आदि खनिज भी रुबिडियम-स्ट्रॉंशियम निष्पत्ति जानने के लिए महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। एहर्सेस के अनुसार रुबिडियम-स्ट्रॉंशियम निष्पत्ति के आधार पर ज्ञात आयु तालिका में दी गयी है—^३

स्थान	भौमिक आयु	रु०/स्ट्रॉं० के आधार पर ज्ञात आयु
पाला, कैलिफोर्निया, सं० रा० अमेरिका	उत्तर सरट (ज्यूरेसिक) या खटी (क्रिटेसियस)	१७ करोड़ वर्ष
नार्वे, मैयन, सं० रा० अमेरिका	मत्स्य (डिबोनियन)	३० करोड़ वर्ष
कारीबिव, द० प० अफ्रीका	पुरा कैम्ब्रियन (त्रिखण्ड)	९० करोड़ वर्ष
ओमासस, द० प० अफ्रीका	„ „ „	१२५ करोड़ वर्ष
कुबुता, स्वाजीलैंड	„ „ „	२१० करोड़ वर्ष

इस विधि से ज्ञात आयु सीस-विधि द्वारा ज्ञात आयु के लगभग समान ही है। रुबिडियम-स्ट्रॉंशियम विधि के समान-आरगन, पोटेशियम विधि तथा अन्य सामीय विधियों से भी पृथ्वी की आयु ज्ञात की जा सकती है।

1. Non-radioactive

2. Weathering

3. Dating the Past—F. E. Zeuner 1952, p. 334

आशा है, निकट भविष्य में हमें इन विधियों का सम्पूर्ण ज्ञान उपलब्ध हो सकेगा तथा हीलियम, सीस आदि विधियों में जो कुछ भी कमियाँ रह गयी हैं, वे दूर हो जायँगी।

रेडियो कार्बन विधि

इस विधि का आधार जैविक पदार्थों में रेडियो-सक्रिय कार्बन (कार्बन १४) की विद्यमानता है। साधारण कार्बन का परमाणु-भार १२ है। इसी का एक समस्थानिक कार्बन १४ है। रासायनिक दृष्टि से यह साधारण कार्बन के समान है। पृथ्वी के उच्च वायुमंडल में अन्तरिक्ष विकिरण के प्रभाव में न्यूट्रान कण उत्पन्न होते हैं। साधारण नाइट्रोजन (५० भा० १४) से न्यूट्रान का सम्पर्क होने पर एक प्रोटान निष्कासित होता है और कार्बन १४ बन जाता है। कार्बन १४ से एक इलेक्ट्रान के निष्कासित होने पर पुनः नाइट्रोजन प्राप्त होती है (इस चक्र का विस्तृत वर्णन 'खगोल प्रमाण' के अन्तर्गत दिया गया है)। इस प्रकार वायुमण्डल की कार्बन डाइ-आक्साइड में कार्बन १४ भी विद्यमान रहता है, किन्तु इसकी मात्रा बहुत कम होती है। साधारण कार्बन के प्रति ग्राम पर रेडियो कार्बन की मात्रा केवल १० ग्राम रहती है। जैविक पदार्थ वायुमंडल से ही कार्बन-डाइ-आक्साइड प्राप्त करते हैं, अतः उनमें भी रेडियो कार्बन की मात्रा वायुमंडल के रेडियो-कार्बन की मात्रा के समान ही होगी। जब तक पदार्थ में जीवन होता है, रेडियो-कार्बन की मात्रा बढ़ती रहती है, पर जीवन का अन्त होते ही रेडियो-सक्रिय कार्बन की मात्रा की वृद्धि बन्द हो जाती है।

रेडियो-सक्रिय कार्बन का आधा जीवन-काल ५७०० वर्ष है, अर्थात् मृत जैविक पदार्थ में ५७०० वर्षों के बाद केवल आधा कार्बन ही शेष रहेगा। ११४०० वर्षों के उपरान्त उसका केवल एक-चौथाई भाग बचेगा। अतः

1. Cosmic radiation

यदि हम उस जैविक पदार्थ में साधारण कार्बन अर्थात् कार्बन १२ और कार्बन १४ का अनुपात जान लें तो हम उस जैविक पदार्थ की आयु जान सकेंगे। किन्तु क्योंकि रेडियो कार्बन की मात्रा अत्यल्प होती है तथा इसका आधा जीवन-काल अपेक्षाकृत कम है, अतः इस विधि द्वारा हम केवल २० से ३० हजार वर्ष तक की आयु सरलता से जान सकते हैं। यह विधि पुराविद्या के विशेषज्ञों के लिए विशेष उपयोगी है। भौमिकीज्ञ तो केवल इस विधि से आधुनिक काल के ही उपविभाग कर सकते हैं।

उल्का-पत्थरों की आयु

दूसरे अध्याय में उल्का-पत्थरों का संक्षिप्त वर्णन किया गया है तथा उनके उद्गम की ओर भी संकेत किया गया है। विद्वानों के विचार में लगभग ७० प्रतिशत उल्काएँ सौर-परिवार के परे जन्मी हैं, शेष सौर-परिवार की ही अंग हैं। अतः हमें उल्का-पत्थरों के रूप में अन्तरिक्ष पदार्थ उपलब्ध हैं। इन पत्थरों की आयु का अध्ययन सौर-परिवार की आयु जानने में सहायक होगा।

उल्का-पत्थरों की आयु ज्ञात करने का श्रेय प्रो० एफ० ए० पैनेथ तथा उनके सहयोगियों; डब्लू० जे० आरोल, आर० वी० जैकोबी आदि को है। . . . उल्का-पत्थरों की आयु उनमें विद्यमान हीलियम के आधार पर ही ज्ञात की गयी उल्का-पत्थरों में विद्यमान यूरेनियम की अल्प-मात्रा को मापने के उचित साधन हमें पहले उपलब्ध नहीं थे। किन्तु गवेपणा के परिणामस्वरूप अब उल्का-पत्थरों में विद्यमान यूरेनियम ही नहीं, प्रत्युत थोरियम की अल्प मात्राओं की नाप भी संभव हो सकी है।

उल्का-पत्थरों में विद्यमान हीलियम की ठीक-ठीक मात्रा जानना बड़ा कठिन है। कई घंटे तक १००० अंश तापमान पर गर्म करने पर भी बहुत से न्यादर्शों से केवल पाँच प्रतिशत हीलियम ही प्राप्त हो सकी। अतः अब उल्का-पत्थरों से हीलियम निकालने के लिए उल्का-पत्थरों को

अम्ल^१ में घुलाया जाता है तथा उपकरण^२ को वायु के सम्पर्क से पृथक् रखा जाता है। यह आवश्यक है कि जिस न्यादर्श की हीलियम-मात्रा जानी जाय उसी न्यादर्श की यूरेनियम और थोरियम मात्रा ज्ञात की जाय, क्योंकि एक ही उल्का-पत्थर के विभिन्न न्यादर्शों में अन्तर हो सकता है। लौह उल्का पत्थरों में एक विशेषता है कि इनसे हीलियम या रेडान स्थानान्तरित नहीं होता। अतः यदि विभिन्न उल्का-पत्थरों में हीलियम की मात्रा भिन्न है तो इसका तात्पर्य है कि वे उल्का-पत्थर भिन्न-भिन्न आयु के हैं।

नीचे की तालिका में कुछ लौह-पत्थरों की आयु दी गयी है। इनमें से प्रत्येक के कई-कई न्यादर्शों का विश्लेषण किया गया था^३—

उल्का-पत्थर का नाम	यूरेनियम (१० ^{-८} ग्राम/ ग्राम)	थोरियम (१० ^{-८} ग्राम/ ग्राम)	हीलियम (१० ^{-६} घ० से०/ ग्राम)	आयु करोड़ वर्षों में व्यक्तिगत औसत नाम के रेडियो अनुसार सक्रियता के अनुसार	
१. वैथानी, गोयामस द० अफ्रीका	१	४	०.१५	६	७.५
२. सान, मार्टिन, चिली	०.६	८	१.६	५०	८०
३. वैथानी अमलिया	१	४	३.०	११०	१५०
४. कारथेज	०.५	४	२५	६५०	५८०
५. थुंडा, क्वीन्सलैंड	०.८	४	२८	६१०	६२०
६. माउंट एलिफ, द० अफ०	०.४	२	४०	७६०	६८०

1. Acid

2. Apparatus

3. Meteorites and age of the Solar System—W. J. Arrol,
R. B. Jacobi and Prof. F. A. Paneth—Nature, Vol.
149, 1942 p. 236.

पिछले पृष्ठ की तालिका में वर्णित आयु में संशोधन आवश्यक है। यूरेनियम में एक्टिनो-यूरेनियम भी सम्मिलित है। इस आधार पर तथा लौह-उल्काओं की अल्प रेडियो-सक्रियता के कारण प्रयोगात्मक त्रुटियों के आधार पर तालिका में दी हुई आयु में अधिक से अधिक एक अरब वर्ष का अन्तर पड़ सकता है।

उल्का-पत्थरों की अधिकतम आयु लगभग ७ अरब वर्ष ज्ञात हुई है। खगोल-विधि के अनुसार विश्व की आयु १० अरब वर्ष से अधिक नहीं है। यदि उल्का-पत्थर सौर-परिवार के सदस्य हैं तो सौर-परिवार की आयु ७ अरब वर्षों से अधिक ही होगी। संभव है पृथ्वी के किसी कोने में ऐसे लौह-उल्का-पत्थर मिलें, जिनमें हीलियम की मात्रा अत्यधिक हो और इस आधार पर हमें सौर-परिवार की आयु में संशोधन करना पड़े। किन्तु उस दशा में भी सौर-परिवार की आयु १० अरब वर्ष से कम ही होगी। हमारी पृथ्वी भी सौर-परिवार की सदस्या है, अतः उल्का-पत्थरों के आधार पर पृथ्वी की आयु भी १० अरब वर्ष से कम होगी।

अध्याय ११

खगोल-प्रमाण

‘मनुष्य ने आकाश में कुछ ही सहस्रों वर्षों से देखना आरम्भ किया है और सूक्ष्मदर्शी यन्त्र तो अभी सौ दो सौ वर्ष के भीतर ही बने हैं। इसलिए विश्व के सम्बन्ध में स्थिर रूप से कुछ कहना दुःसाहस की सीमा तक पहुँच जाता है।’

—डा० सम्पूर्णानन्द

खगोलज्ञों ने पृथ्वी की आयु सूर्य, चन्द्र और विश्व की आयु के आधार पर ज्ञात की है। पृथ्वी की उत्पत्ति सूर्य से है, अतः पृथ्वी की आयु सूर्य की अपेक्षा कम होगी। चन्द्रमा पृथ्वी का ही एक अंश है, इसलिए पृथ्वी की आयु चन्द्रमा की आयु से अधिक होगी। सूर्य और चन्द्र की आयु के आधार पर पृथ्वी की अधिकतम और न्यूनतम आयु जानी जा सकती है। विश्व की आयु के आधार पर भी पृथ्वी की आयु का अनुमान लगाया जा सकता है। पृथ्वी अखिल विश्व का ही एक भाग है, अतः पृथ्वी की आयु विश्व की आयु से अधिक नहीं हो सकती। सर्वप्रथम हम विश्व की आयु पर विचार करेंगे।

विश्व की आयु

विश्व क्या है? इस प्रश्न का उत्तर पहले अध्याय में ही ‘विश्व का रहस्य’ के अन्तर्गत दिया जा चुका है। वहाँ पर यह भी बताया गया है कि नीहारिकाएँ आकाश में तीव्र गति से भागी जा रही हैं। ज्यों-ज्यों वे दूर भागती जाती हैं, उनकी गति बढ़ती जाती है। इस आधार पर अनुमान

लगाया गया है कि लगभग एक अरब चालीस करोड़ वर्षों में विश्व का व्यास दुगुना हो जायगा। विश्व का प्रसार हो रहा है—आपेक्षिकतावाद के सिद्धान्त से भी यह प्रमाणित हो चुका है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भूतकाल में विश्व सीमित रहा होगा, लगभग दो-तीन अरब वर्ष पूर्व यह अधिक संकुचित रहा होगा। किन्तु संकोचन की भी एक सीमा होती है जिसके परे और संकोचन सम्भव नहीं है। इस आधार पर विश्व की आयु कुछ अरब वर्ष (लगभग १० अरब वर्ष) ही मानी जा सकती है।

विद्वानों ने पहले पहल विश्व की आयु लगभग ७० खरब वर्ष बतायी थी।^१ प्रसार-वाद की दृष्टि से यह उचित नहीं। किन्तु भारतीय धर्म-ग्रन्थों में विश्व की आयु (ब्रह्मा की आयु) लगभग १ नील ५८ खरब वर्ष बतायी गयी है। विश्व की आयु मापने की आधुनिक विधियाँ भी पूर्ण नहीं हैं। अतः विश्व की आयु के विषय में कोई निर्णीत संख्या बताना कठिन है। संभव है, भविष्य में वैज्ञानिक विचारधारा में कोई नया मोड़ आ जाय, मूलभूत सिद्धान्तों में परिवर्तन हो और उसी भित्ति पर वैज्ञानिक विश्व की दीर्घ आयु को मान्यता दें। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हम गत अध्यायों में देख चुके हैं। १९वीं शताब्दी में लार्ड कैल्विन ने गणित और भौतिकी के सिद्धान्तों के आश्रय पर पृथ्वी की आयु १० करोड़ वर्ष बतायी थी। किन्तु रेडियो-सक्रियता की खोज के उपरान्त पृथ्वी की आयु दो अरब वर्ष प्रमाणित हुई। भारतीय धर्मग्रन्थों में भी पृथ्वी की यही आयु बतायी गयी थी।

कल्पना के सागर में गोते न लगाकर यहाँ हम वर्तमानवादों—आपेक्षिकतावाद आदि के आधार पर ज्ञात विश्व की आयु को ही मान्यता देंगे। इस दृष्टि से कुछ अरब वर्ष पूर्व ही विश्व का विकास आरम्भ हुआ। कदाचित् उसी समय आकाशगंगा, तारामंडलों, ग्रहों आदि का निर्माण हुआ। इनकी

रचना चाहे किसी भी प्रकार हुई हो, पर अब तक संचित ज्ञान के आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि सूर्य, तारे, पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों की आयु कुछ अरब वर्षों से अधिक नहीं है।

तारों की आयु

सूर्य आकाश में व्याप्त असंख्य तारों में एक तारा है। जो प्रमाण और बाद सूर्य पर लागू होते हैं, वे ही सब अन्य तारों पर भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं। अतः हम अन्य तारों के विस्तृत विवरण की ओर न जाकर सूर्य की आयु पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

लार्ड कैल्विन ने सूर्य की ऊर्जा का उद्गम सूर्य के संकुचन को माना है। आपके विचार में सूर्य धीरे-धीरे सिकुड़ रहा है, इसी से सूर्य में ताप और ऊर्जा उत्पन्न होती है। संकुचनवाद के आधार पर, जैसा कि चौथे अध्याय में बताया गया है, लार्ड कैल्विन ने सूर्य की आयु १० करोड़ वर्ष बतायी है। आधुनिक गवेषणाओं के फलस्वरूप ऊर्जा के अन्य स्रोतों का पता चला है। अतः संकुचनवाद पर आधारित सूर्य की आयु संदिग्ध है।

संकुचनवाद पर विचार करने से पूर्व तारों की दीप्ति^१ का अध्ययन आवश्यक है। तारों की दीप्ति नापने के लिए सूर्य की दीप्ति को मानक माना जाता है, अर्थात् हम तारों की दीप्ति सूर्य की दीप्ति की तुलना में ही बतायेंगे। आकाश में तारे हमसे भिन्न भिन्न दूरियों पर हैं। अतः भिन्न-भिन्न तारों की दीप्ति की तुलना करते समय आवश्यक है कि हम उनकी दूरियों को ध्यान में रखें। यह तो दूसरे अध्याय में ही बताया जा चुका है कि तारे हमसे जितनी अधिक दूर होंगे, उनका अपेक्षाकृत कम प्रकाश हम तक पहुँच सकेगा और वे हमको अपेक्षाकृत कम चमकीले दिखाई देंगे।

1. Luminosity

खगोलज्ञों ने ज्ञात किया है कि दीप्ति की सीमा बड़ी व्यापक है। आकाश में कुछ ऐसे तारे हैं जिनकी दीप्ति सूर्य की तुलना में दस हजार गुनी अधिक है। इसके विपरीत कुछ ऐसे भी तारे हैं, जिनकी दीप्ति सूर्य की अपेक्षा दस लाख गुनी कम है। कम दीप्ति वाले तारों को हम 'बौना तारा'^१ कहते हैं और अधिक दीप्तिमान् तारे 'दैत्य तारे'^२ कहलाते हैं। इस दृष्टि से हमारा सूर्य भी एक 'बौना तारा' है।

आकाश में बहुत-से घटने-बढ़ने वाले तारे भी हैं। इन्हें चमकीले तारे 'डेल्टा सेफाई'^३ के नाम पर सेफीड कहते हैं। डेल्टा-सेफाई की चरता^४ (घटने-बढ़ने) का पता सन् १७८४ में एक युवा वैज्ञानिक जान गुडरिक ने लगाया था। गुडरिक जन्म से ही गूंगे और बहरे थे, दुर्भाग्यवश २२ वर्ष की अवस्था में ही उनका देहावसान हो गया। किन्तु इस अल्प जीवनकाल में ही आपने खगोल विद्या के क्षेत्र में जो कार्य किया, वह चिरस्मरणीय रहेगा। आपने केवल डेल्टा-सेफाई की चरता ही नहीं ज्ञात की, अपितु यह भी बताया कि इनकी सहायता से "स्थिर तारों" का विशद ज्ञान (योग आदि) उपलब्ध हो सकेगा। इसके अतिरिक्त आपने प्रसिद्ध चर तारे 'अल्गौल' का आवर्तत्व^५ ज्ञात किया और साथ ही प्रकाशचरता का कारण बताया कि जिस प्रकार सूर्य का आंशिक ग्रहण चन्द्रमा के कारण होता है, उसी प्रकार चमकीले तारे के प्रकाश में परिवर्तन उसके चारों ओर घूमनेवाले एक अन्य तारे के सामने आने से होता है। आपके कार्य की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इतने अल्प जीवनकाल में आप 'रायल सोसाइटी के फ़ैलो' चुने गये थे। किन्तु विधि की विडम्बना, उसके १५ दिन उपरान्त ही आपकी मृत्यु हो गयी।

1. Dwarf stars
3. Delta Cephei
5. Periodicity

2. Giant stars
4. Variability

सेफीड-तारे तालबद्ध^१ रूप में बढ़ते और सिकुड़ते हैं। इसी परिवर्तन क्रम में प्रकाश में भी परिवर्तन होता है। तारे की स्पन्दन-अवधि^२ उसके घनत्व पर निर्भर है। यदि तारे का घनत्व कम है तो उसकी स्पन्दन-अवधि अधिक होगी। तारों की दीप्ति और संहति^३ में भी निकट सम्बन्ध है। इसके आधार पर तारे की दीप्ति ज्ञात होने पर उसकी संहति जानी जा सकती है और संहति ज्ञात होने पर दीप्ति परिकलित की जा सकती है। एक तारा जितना अधिक संहत होगा, उसकी दीप्ति भी उतनी अधिक होगी। सूर्य की अपेक्षा डेल्टा-सेफाई की दीप्ति औसतन सात-सौ गुनी अधिक है तथा संहति साढ़े दस गुनी अधिक। डेल्टा-सेफाई का औसत घनत्व सूर्य के औसत घनत्व का लगभग २५००वाँ भाग है। इसका अर्धव्यास सूर्य की तुलना में पच्चीस गुना अधिक है, अर्थात् लगभग ११० लाख मील है।

डेल्टा सेफाई के उपरिवर्णित न्यास^४ और तथ्यों^५ को ध्यान में रखकर ही हम लार्ड कैलविन के संकुचनवाद पर दृष्टि डालेंगे। कैलविन के अनुसार यदि तारे में केवल संकुचन होगा तब उसका औसत घनत्व क्रमशः बढ़ता ही जायगा और इस तरह स्पन्दन-अवधि घटती जायगी। उदाहरणतः, यदि डेल्टा सेफाई में केवल संकुचन-क्रिया होती है, तब यह प्रति वर्ष चालीस हजार में एक भाग के हिसाब से सिकुड़ता जायगा, अर्थात् यह प्रति वर्ष २७५ मील संकुचित होता जायगा। इसी आधार पर तारे का औसत घनत्व प्रति वर्ष चालीस हजार में तीन भाग बढ़ जायगा। घनत्व और अवधि के सम्बन्ध द्वारा यह भी ज्ञात किया गया है कि इसकी अवधि प्रति वर्ष सत्रह सेकंड की गति से कम होनी चाहिए। किन्तु १८४० में डेल्टा-सेफाई की स्पन्दन-अवधि पाँच दिन आठ घंटे सैंतालीस मिनट सैंतीस सेकण्ड ज्ञात की गयी थी। सन्

1. Rhythmically

2. Period of pulsation

3. Mass

4. Data

5. Facts

१९३३ में डब्लू० एम० स्मार्ट ने इसकी अवधि पाँच दिन आठ घंटे सैंतालिस मिनट अट्ठाईस सैकंड ज्ञात की थी। इस प्रकार ९३ वर्षों में स्पन्दन-अवधि में नौ सैकंड का अन्तर पड़ा, अर्थात् यह प्रति वर्ष $1/10$ सैकंड कम हुई। अतः निष्कर्ष निकलता है कि एक वर्ष में डेल्टा-सेफार्ड का अर्द्धव्यास सत्तर-लाख में एक भाग कम होता है, अर्थात् संकुचन-गति डेढ़ मील प्रति वर्ष है। इस आधार पर यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि संकुचनवाद प्रकाश-चरता के आवर्तत्व^१ को ठीक ढंग से बताने में असमर्थ है। अतः तारे की विकिरण-ऊर्जा^२ केवल संकुचन-क्रिया के कारण नहीं है।^३ हमें इस ऊर्जा के अन्य स्रोतों का भी पता चलाना होगा।

तारों की ऊर्जा

तारों की ऊर्जा का स्रोत जानने के लिए हमें उनके योग और भौतिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त करना होगा। तारा गैस का एक बहुत बड़ा गोला है, जो बाहर की ओर विकीर्ण-ऊर्जा फेंकता है। तारों के केन्द्र का तापमान तारों की सतह की अपेक्षा अधिक होता है। सूर्य के केन्द्रीय भाग का तापमान दो करोड़ अंश सेंटीग्रेड ज्ञात हुआ है। इस प्रकार अन्य तारों में भी बहुत उच्च तापमान व्याप्त है। इतने उच्च तापमान पर रासायनिक योगों के अणु परमाणुओं की अवस्था में ही पाये जाते हैं। परमाणु भी अपने अक्षों में सीमित नहीं रहते। ये कण-परमाणु बीज या विद्यदणु के रूप में तारों में तीव्र वेग से चक्कर लगाते रहते हैं।

यह हमारा दैनिक अनुभव है कि गर्म होने पर पानी भाप बन जाता है। इसी प्रकार उच्च तापमान पर तारों में ऊर्जा रहती है, जो केन्द्रीय

1. Change in the period of light variation
2. Radiant Energy
3. The Origin of the Earth—W. M. Smart 1955 pp. 156

भाग से प्रवाहित होती रहती है। इस ऊर्जा का एक ही स्रोत हो सकता है और वह है अणु के बीज में निहित ऊर्जा। यह ऊर्जा किस प्रकार उपलब्ध होती है? इसके उत्तर के लिए हमारा ध्यान सहसा रेडियो-सक्रियता की ओर जाता है। रेडियो-सक्रिय पदार्थों का स्वतः ही विघटन होता रहता है और उनसे ऊर्जा उपलब्ध होती है। इस आधार पर यदि हम सूर्य को पूर्णरूपेण रेडियो-सक्रिय तत्त्व यूरेनियम से निर्मित मान लें, तो भी उससे उत्पादित ऊर्जा सूर्य की ऊर्जा की तुलना में अत्यन्त अपर्याप्त है।

कुछ विद्वानों के विचार में तारों की ऊर्जा का स्रोत पदार्थ का परिशून्यन^१ या क्षय है। इस विचारधारा के अनुसार तारका-पदार्थ एक दूसरे प्रकार से विकीर्ण ऊर्जा में परिणत हो रहा है, जो अन्ततः शून्य में विलीन हो जाती है, इस प्रकार कालान्तर में तारे की संहति कम होती जाती है। इस संहति को खोकर वह ऊर्जा प्राप्त करता है और एक दीप्तिमान् काय के रूप में क्रियाशील रहता है। कदाचित् संहति के पूर्णतः व्यय होने से तारे का अन्त हो जायगा। यह धारणा आधुनिक सिद्धान्तों से मेल नहीं खाती। क्योंकि प्रमाणित किया जा चुका है कि ऊर्जा और संहति अक्षय है। यदि हम परिशून्यन क्रिया को तारों में विद्यमान प्रोटान और इलेक्ट्रान तक ही सीमित रखें तो कदाचित् तारों की ऊर्जा को समझा सकें।

तारों में इलेक्ट्रान और प्रोटान (हाइड्रोजन बीज) तीव्रगति से इधर-उधर दौड़ रहे हैं। एक इलेक्ट्रान और एक प्रोटान के परस्पर टकरा जाने से उनके पदार्थ-रूप का अन्त हो जाता है। उनकी संहति विकीर्ण-ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। सूर्य के विकिरण के आधार पर हम सरलता से ज्ञात कर सकते हैं कि किस गति से सूर्य की संहति विकीर्ण ऊर्जा में परिवर्तित हो रही है। यह गति सूर्य से वायुमंडल में निष्कासित प्रकाश और ताप-ऊर्जा की गति के समान ही होगी। इस आधार पर ज्ञात किया गया

है कि सूर्य की संहति प्रति क्षण चालीस लाख टन की गति से कम होती जा रही है। सूर्य की सम्पूर्ण संहति है—

२०००, ००००००, ००००००, ००००००, ०००००० टन। अतः यदि वर्तमान गति से भी सूर्य की संहति का क्षय होता रहा तो भी सूर्य १६ नील (१६,००००००, ००००००) वर्षों तक हमें प्रकाश प्रदान करता रहेगा। ज्ञात हुआ है कि ज्यों-ज्यों सूर्य की संहति कम होती जा रही है, यह गति भी कम हो रही है। इस दृष्टि से परिशून्यतावाद के अनुसार सूर्य की आयु ७० खरब वर्षों से अधिक ही है।^१

प्रयोगशाला में किये गये प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि इलेक्ट्रान और प्रोटान का परस्पर विलोपन^२ सम्भव नहीं है। परिशून्यतावाद के विपक्ष में यह प्रभावशाली प्रमाण है। आगे दिये गये प्रमाणों से यह और भी स्पष्ट हो जायगा कि सूर्य की इतनी लम्बी आयु की कल्पना संदेहयुक्त ही नहीं वरन् असम्भव भी है।

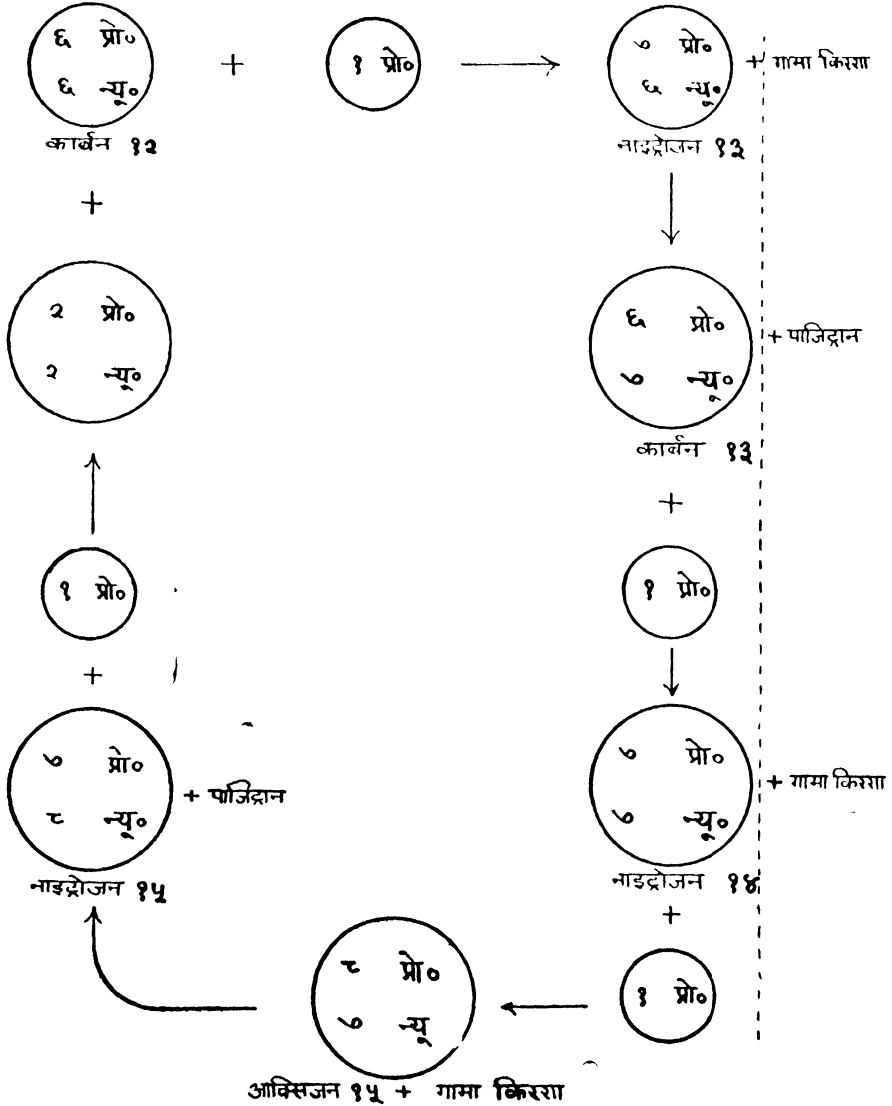
तारों की ऊर्जा का संभाव्य स्रोत उनमें विद्यमान हाइड्रोजन से अन्य तत्त्वों की रचना है। यह निर्विवाद रूप से मान्य है कि तारों के योग में हाइड्रोजन का महत्त्वपूर्ण हाथ है। वर्णपट आदिकी सहायता से यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान सूर्य की संहति का एक-तिहाई भाग हाइड्रोजन है तथा यही सबसे साधारण तत्त्व है। इसका बीज एक प्रोटान का बना होता है। हाइड्रोजन के बाद हीलियम तत्त्व आता है। हीलियम-निर्माण के हेतु हाइड्रोजन के चार प्रोटानों की आवश्यकता पड़ती है। हाइड्रोजन का लगभग सारा भार बीज अर्थात् प्रोटान में ही निहित रहता है। संहति-वर्णक्रम लेखी^३

1. The Origin of the Earth—W. M. Smart 1955 p. 164.

2. Mutual Cancellation

3. The Origin of the Earth—W. M. Smart 1955, pp. 166-168.

से हाइड्रोजन का परमाणुभार १.००७६ है। हीलियम का परमाणु भार ४.००२८ ज्ञात हुआ है। हाइड्रोजन के चार परमाणुओं का भार 4×1 .



चित्र ३५—कार्बन-नाइट्रोजन चक्र

$0.0076 = 4.00208$ हुआ। अतः हाइड्रोजन से हीलियम बननेमें $4.00208 - 4.0026 = 0.00052$ भार का लोप हो जाता है। यही विकीर्ण ऊर्जा के

रूप में परिणत होता है। परिशून्यन विधि की तुलना में यह संहति-परिवर्तन नगण्य सा है।

हाइड्रोजन से हीलियम की रचना कुछ काल पूर्व काल्पनिक ही थी, पर इस शताब्दी में प्रयोगशालाओं में एक तत्त्व से दूसरे तत्त्वों का निर्माण प्रत्यक्ष रूप में किया जा चुका है। इसी आधार पर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के डॉ॰ हान्स बेथे और जर्मनी के डॉ॰ फौन वाइज़सैकर ने सूर्य की ऊर्जा का केन्द्र कार्बन-नाइट्रोजन चक्र माना है। यह चक्र चित्र ३५ में दिखाया गया है।

मान लीजिए कि सूर्य में विद्यमान कार्बन-बीज की तीव्र गति से घूमते हुए प्रोटान से मुठभेड़ हुई। कार्बन-बीज द्वारा इस प्रोटान के हरण करने पर नाइट्रोजन के एक समस्थानिक (परमाणुभार १३) का निर्माण होता है और इस क्रिया में गामाकिरण निष्कासित होती है। नाइट्रोजन का यह समस्थानिक अस्थिर होता है। इससे एक पाजिट्रान^१ निकलने पर कार्बन का एक समस्थानिक (परमाणुभार १३) बन जाता है।

कार्बन के इस समस्थानिक की भी किसी एक अन्य प्रोटान से मुठभेड़ होती है। जिसके फलस्वरूप गामाकिरण के निष्कासन पर साधारण नाइट्रोजन (परमाणुभार १४) निर्मित होता है। तत्पश्चात् नाइट्रोजन के इस बीज से एक तीसरे प्रोटान की टक्कर होती है। गामाकिरण बाहर निकलती है और ऑक्सिजन का एक समस्थानिक (परमाणुभार १५) उपलब्ध होता है, जिसके विघटन से एक पाजिट्रान निष्कासित होता है और नाइट्रोजन का एक स्थायी समस्थानिक (परमाणु भार १५) प्राप्त होता है।

नाइट्रोजन के इस स्थायी बीज से एक चौथे प्रोटान का संघर्ष होता है जिसके फलस्वरूप साधारण कार्बन (परमाणुभार १२) तथा हीलियम

का बीज उपलब्ध होता है। यह साधारण कार्बन उसी कार्बन के समान है जिससे हमारा यह चक्र आरम्भ हुआ था।

यदि सूर्य में नाइट्रोजन के बीज का आधिक्य है तो भी यह चक्र इसी प्रकार चलेगा। चित्र में लिखित क्रियाएँ पहली सीढ़ी से आरम्भ न होकर तीसरी सीढ़ी से आरम्भ होंगी और दूसरी सीढ़ी पर आकर समाप्त होंगी। दोनों ही दशाओं में चार प्रोटानों की आवश्यकता है। इन्हीं के अभिहनन के फलस्वरूप यह चक्र पूरा होता है और हीलियम-बीज प्राप्त होता है। इस प्रकार हाइड्रोजन से हीलियम की रचना में . ०२७६ अर्थात् प्रोटान की संहति का $2\frac{3}{4}$ भाग ऊर्जा में परिणत होगा। साथ ही इस चक्र में निष्कासित गामा-किरण और पाजिट्रान से भी कुछ ऊर्जा प्राप्त होगी।

कार्बन-नाइट्रोजन चक्र की सफलता के लिए सूर्य में यथोचित मात्रा में कार्बन या नाइट्रोजन, या दोनों की ही विद्यमानता आवश्यक है। साथ ही हाइड्रोजन का विशाल भंडार इस क्रिया के लिए अपरिहार्य है। सूर्य में ये दोनों ही आवश्यक परिमाण में विद्यमान हैं, यह प्रमाणित हो चुका है। साथ ही केन्द्रीय भाग में अत्यन्त उच्चतम ताप या ऊर्जा (लगभग २ करोड़ अंश सेंटीग्रेड) होने के कारण प्रोटान तीव्र गति से इधर-उधर घूमते हैं। अतः यह चक्र तब तक चलता रहेगा जब तक कि सूर्य के हाइड्रोजन का भंडार खाली न हो जाय। इस आधार पर सूर्य अभी अरबों वर्ष तक जीवित रहेगा।

एक अन्य प्रश्न है कि सूर्य हमें कितने वर्षों से प्रकाश प्रदान कर रहा है? यदि सूर्य की उत्पत्ति ठण्डे गैसीय पदार्थ से है तो प्रारम्भिक अवस्था में निस्संदेह इसका संकुचन हुआ और तापमान में वृद्धि हुई। कुछ समय बाद ही सूर्य का केन्द्रीय तापमान कुछ लाख अंश हो गया होगा। यह तापमान कार्बन-नाइट्रोजन चक्र की रचना के लिए अपर्याप्त है। इस तापमान पर कदाचित् दूसरी नाभिकीय प्रतिक्रिया^१ हुई। लीथियम, वैरीलियम

आदि हलके तत्त्वों पर प्रोटान के अभिहनन के फलस्वरूप ऊर्जा उपलब्ध हुई। धीरे-धीरे इन हलके तत्त्वों का भंडार कम होता गया। इस तथ्य की सत्यता इस बात से ज्ञात होती है कि सूर्य के वायुमण्डल में ये तत्त्व अत्यल्प मात्रा में विद्यमान हैं। पृथ्वी की शिलाओं में भी ये हलके तत्त्व स्वल्प परिमाण में मिलते हैं। इससे प्रतीत होता है कि कदाचित् पृथ्वी का जन्म सूर्य से उस समय हुआ, जब कि हलके तत्त्व प्रायः समाप्त हो रहे थे।

एक लीथियम-डीज और एक प्रोटान के पारस्परिक संघर्ष के फलस्वरूप प्रोटान की लगभग २ प्रतिशत संहति ऊर्जा में परिवर्तित होती है। यह ऊर्जा प्रकाश और ताप ऊर्जा के रूप में प्रकट होकर शून्य में विलीन हो जाती है। सूर्य की संहति इस प्रकार एक निश्चित मात्रा में धीरे-धीरे कम होती जायगी। ज्ञात किया गया है कि लीथियम और हाइड्रोजन के हीलियम-परिवर्तन में लगभग दो अरब वर्ष का समय लगेगा।

लीथियम क्रिया के पूरा होने पर अर्थात् हलके तत्त्वों के भंडार के रिक्त होने पर सूर्य में पुनः संकुचन होगा। इस संकुचन क्रिया में केवल कुछ लाख वर्ष ही लगेंगे। परिणामस्वरूप ताप में वृद्धि होगी। तापमान में जब लगभग २ करोड़ अंश सेंटीग्रेड के लगभग होगा, तब कार्बन-नाइट्रोजन चक्र आरम्भ होगा। कार्बन-नाइट्रोजन चक्र के परिणामस्वरूप एक प्रोटान की संहति का २.७५ प्रतिशत भाग कम होता है। इस आधार पर सूर्य की संहति में जो कमी होगी, गणना करके जानी जा सकती है। सूर्य में विद्यमान हाइड्रोजन के आश्रय पर यह कहा जा सकता है कि यह चक्र छह अरब वर्षों से गतिशील है। कार्बन-नाइट्रोजन चक्र और लीथियम-क्रिया की अवधि को जोड़ने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि सूर्य की आयु लगभग आठ अरब साल है।

सूर्य में प्राथमिक अवस्था में ही कुछ हीलियम विद्यमान थी, उसकी ठीक-ठीक मात्रा हमें ज्ञात नहीं है। तब भी इस आधार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि सूर्य की आयु आठ अरब वर्ष से कम ही होगी।

चन्द्रमा की आयु^१

चन्दा मामा के सम्बन्ध में हमारे देश में यह कहानी प्रचलित है कि “चन्दा मामा पहले पृथ्वी माता के निकट रहते थे। एक दिन एक बुढ़िया मूसल से धान कूट रही थी। धान कूटते समय उसका मूसल बार-बार चन्दा मामा से टकरा जाता था। इससे क्रोधित होकर बुढ़िया ने चन्दा मामा को मूसल मारा और वे पृथ्वी से बहुत दूर भाग गये . . . ।” वैज्ञानिकों ने भी पृथ्वी और चन्द्रमा की परिभ्रमण-गति आदि के अध्ययन द्वारा यह बताया है कि भूतकाल में चन्द्रमा पृथ्वी के निकट था। कहानी की कल्पना और विज्ञान पर आधारित तथ्य एक-दूसरे के कितने समीप हैं !

चन्द्रमा पृथ्वी का ही एक अंश है। आरम्भ में पृथ्वी गैस अवस्था में थी। क्रमशः ठण्डी होने के कारण यह तरल रूप में परिणत हो गयी। तत्पश्चात् इसके ऊपरी भाग पर अपेक्षाकृत ठोस पपड़ी जमी। सूर्य के प्रभाव में पृथ्वी पर ज्वार-भाटे आने लगे। उस समय पृथ्वी की परिभ्रमण-गति अति तीव्र थी। प्रमाणित किया जा चुका है कि मूल पृथ्वी (जब कि चन्द्रमा उससे पृथक् नहीं हुआ था) आज की अपेक्षा छः गुनी अधिक तीव्रता से घूम रही थी, अर्थात् वह चार घंटे में ही एक पूरा चक्कर लगाती थी। जब कि वर्तमान काल में पृथ्वी को एक पूरा चक्कर लगाने में २४ घंटे लगते हैं। उस समय सूर्य के आकर्षण के कारण प्रति दो घंटे बाद ज्वार-भाटे आया करते थे। ये ज्वार-भाटे आधुनिक ज्वार-भाटों की तुलना में विशाल और दीर्घकाय थे। पृथ्वी का दोलन-काल^२ और ज्वार-भाटे का आवर्त-काल^३ समान (दो-दो घंटे) होने से अनुनाद-क्रिया^४ उत्पन्न हुई।

1. Evidence from the moon. The Origin of the Earth—
W. M. Smart 1955 pp. 175-178.
2. Oscillation period
3. Periodicity
4. Resonance

अनुनाद-क्रिया को हम निम्नोक्त उदाहरणों से सरलतापूर्वक समझा सकते हैं। एक प्याले में चाय लेकर आप तेजी से चलिए। यदि प्याले की चाय की गति और आपकी चलने की गति में समानता है तो अनुनाद-क्रिया के कारण चाय प्याले से गिरकर प्लेट में आ जाती है। अनुनाद-क्रिया के कारण ही कप्तान पुल पर आने से पूर्व ही अपनी फौज को पैर न मिलाकर चलने की आज्ञा देता है। यदि सभी सिपाही पैर मिलाकर दक्ष-वाम (लैफ्ट-राइट) करते हुए चलेंगे तो पुल के दोलन-काल और सेना के आवर्त-काल के एक समान होने पर पुल टूटने का भय रहता है।

अनुनाद-क्रिया के कारण अति विशालकाय ज्वार-भाटे आये। ज्वार-भाटे निरन्तर सैंकड़ों वर्ष तक आते रहे। फलतः तरलकाय पृथ्वी दीर्घित^१ होने लगी। दीर्घीभवन^२ अधिक बढ़ जाने पर पृथ्वी की यह काया स्थिर न रह सकी और टूटकर दो भागों में विभक्त हो गयी। मुख्य भाग हमारी पृथ्वी ही है और पृथक् हुआ दूसरा भाग है चन्द्रमा। इस प्रकार पृथ्वी से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ।

पाठकों के मन में अब यह जिज्ञासा हो सकती है कि वर्तमान काल में पृथ्वी पर अनुनाद-क्रिया का प्रभाव क्यों नहीं हो रहा है? इसका प्रधान कारण है कि अब ज्वार-भाटे का आवर्तकाल १२ घंटे है। अर्थात् २४ घंटे में दो ज्वार और दो भाटे आते हैं। अतः पृथ्वी के दोलन-काल और ज्वार-भाटे के आवर्त-काल में असमानता है।

चन्द्रमा अपने जन्म के बाद आरम्भ में पृथ्वी के निकट ही चारों ओर चक्कर लगाता था। किन्तु पारस्परिक ज्वार-क्रिया^३ के प्रभाव से चन्द्रमा पृथ्वी से दूर हटता गया और अब भी दूर जा रहा है। ज्वार-घर्षण^४ के कारण ही पृथ्वी की परिभ्रमण-गति घटती जा रही है, अर्थात् दिन की

1. Elongated

3. Tidal action

2. Elongation

4. Tidal friction

लम्बाई बढ़ती जा रही है। किन्तु यह परिवर्तन इतना सूक्ष्म है कि हम इसका अनुभव ही नहीं कर पाते। १ लाख २० हजार वर्ष में दिन की लम्बाई केवल एक सेकंड ही बढ़ रही है। साथ ही चन्द्रमा प्रति १०० वर्षों में लगभग ५ फुट की गति से पृथ्वी से दूर होता जा रहा है।

इस आधार पर सर जार्ज डार्विन और प्रो० हेराल्ड जेफरीज ने बताया है कि लगभग ४ अरब वर्ष पूर्व चन्द्रमा पृथ्वी के केन्द्र से ८ हजार मील की दूरी पर था। उस समय पृथ्वी बहुत तेजी से घूम रही थी और चन्द्रमा भी पृथ्वी के चारों ओर घूम रहा था। दोनों का ही भ्रमण-काल लगभग समान (४ घंटे) था। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि चन्द्रमा कदाचित् पृथ्वी से उसी समय अलग हुआ था। इस आधार पर चन्द्रमा की आयु लगभग ४ अरब वर्ष मानी जा सकती है।

चन्द्रमा की उत्पत्ति का उपरिलिखित वाद, जो कुछ समय पूर्व सर्वमान्य था, आधुनिक काल में आलोचना का विषय बन गया है। किन्तु चन्द्रमा चाहे किसी भी विधि से पृथ्वी से पृथक् हुआ हो, इन दोनों की आयु लगभग समान ही है। इस दृष्टि से पृथ्वी की आयु ४ अरब वर्ष से कुछ अधिक है।

चन्द्रमा सम्बन्धी वैज्ञानिकों की भविष्यवाणी के अनुसार ज्वार-घर्षण के फलस्वरूप पृथ्वी की परिभ्रमण गति और कम होती जायगी तथा चन्द्रमा पृथ्वी से और दूर हटता जायगा। इस प्रकार चन्द्रमा की कक्षा भी बढ़ती जायगी। ५० अरब वर्षों के उपरान्त पृथ्वी का परिभ्रमण काल और चन्द्रमा का कक्षाकाल दोनों ही लगभग ४७ दिन हो जायँगे। तब चन्द्रमा पृथ्वी से लगभग ३५० हजार मील की दूरी पर होगा। चन्द्रमा की औसत दूरी इस समय लगभग २४० हजार मील है। चन्द्र और पृथ्वी दोनों का काल समान होने के कारण पृथ्वी का एक ही भाग सर्वदा चन्द्रमा के सामने रहेगा। परिणामस्वरूप चान्द्र ज्वार का पृथ्वी के परिभ्रमण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा; पर सौर ज्वार-भाटे के प्रभाव से पृथ्वी का परिभ्रमण कम होता जायगा। पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी कम होती जायगी और चन्द्रमा का

कक्षा-काल^१ भी कम होता जायगा। पृथ्वी का परिभ्रमण-काल चन्द्रमा के कक्षा-काल से अधिक होगा, दिन १ महीने से अधिक लम्बा हो जायगा। चन्द्रमा पृथ्वी की ओर आता जायगा। पृथ्वी के क्षेत्र में प्रवेश करने पर गुरुत्वाकर्षण के कारण ठोस चन्द्र टूटकर बहुत से टुकड़ों में विभाजित हो जायगा और कदाचित् पृथ्वी के चारों ओर भी शनि ग्रह के समान एक वलय बन जायेगा। चन्द्रमा के कुछ अंश पृथ्वी पर उल्का-पत्थरों के रूप में गिरेंगे और यदि उस समय तक पृथ्वी पर जीवन शेष रहा, तो बड़ी असुविधाएँ होंगी। विशाल ज्वार के कारण पानी ऊपर उठेगा और फैलकर धरातल के अधिकांश भागों को ढक लेगा।

पुरा जलवायु प्रमाण^२

भौमिक इतिहास के अध्ययन से ज्ञात है कि विभिन्न भौमिक कालों में जल-थल के वितरण की व्यवस्था भिन्न-भिन्न रही है तथा जलवायु में भी परिवर्तन होता रहा है। भौमिकीज्ञों ने प्रमाणित किया है कि धरातल के बहुत से भाग, जहाँ आज शीतोष्ण जलवायु पाया जाता है, कुछ सहस्र वर्ष पूर्व हिमाच्छादित थे। भौमिकीज्ञों को इन प्रदेशों में कुछ ऐसे चिकने पत्थर मिले हैं जो स्वयं हिम-नदियों की कहानी कहते हैं। इन पत्थरों पर पड़ी खरोंचें और धारियाँ हिम-नदी का प्रवाह-मार्ग बताती हैं। किन्हीं किन्हीं स्थलों पर ऐसे अनाथ-शिलाखण्ड^३ मिले हैं, जिनका उस स्थान पर उपलब्ध शिलाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। कदाचित् ये शिलाखण्ड किसी दूरस्थ प्रदेश से हिम-नदी द्वारा बहाकर यहाँ लाये गये और हिम पिघल जाने पर ज्यों के त्यों छोड़ दिये गये। इन प्रदेशों में विद्यमान विभिन्न प्रकार के हिमोद, जो कि हिम-नदी द्वारा लाये हुए पदार्थों के जमा होने से बनते हैं,

1. Orbital period
2. Paleoclimatic evidence
3. Exotic blocks

दूर-दूर तक फैली हुई गंडमृदा,^१ यू (U) आकार की घाटियाँ, प्रपाती दरी तथा झीलें आदि इस बात के प्रमाण हैं कि कभी ये प्रदेश हिमाच्छादित थे—यहाँ हिम की नदियाँ बहती थीं।

उपर्युक्त आधार पर यह सर्वमान्य है कि आज से लगभग दस सहस्र वर्ष पूर्व उत्तरी गोलार्ध का बहुत बड़ा भाग—उत्तरी अमेरिका, यूरोप आदि हिमचादरों से ढँका था। इस काल को महा 'हिम युग'^२ के नाम से सम्बोधित किया जाता है। शिलाओं तथा उनमें पायी जाने वाली रचनाओं, पुराजीवों आदि का अध्ययन करके भिन्न-भिन्न भौमिक कालों के पुराजलवायु-मानचित्र तैयार किये गये हैं। इनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्थल का अधिकांश भाग कई बार हिम-चादरों से ढक गया था। कदाचित् यह क्रिया पृथ्वी पर निश्चित कालान्तर में होती रही है।

जलवायु सूर्यताप पर निर्भर है। अतः हिमयुग का कारण जानने के हेतु सूर्य-ताप का अध्ययन करना होगा। सूर्यताप की मात्रा सूर्य के अन्तरंग में विद्यमान ताप तथा हमसे उसकी दूरी पर निर्भर है। अन्य तारों से प्राप्त ताप सूर्य-ताप की मात्रा की तुलना में नगण्य है। अन्य तारे सूर्य की अपेक्षा हमसे बहुत दूर हैं। अतः पृथ्वी की सतह के तापमान-परिवर्तन का कारण सूर्य-ताप में ही निहित है। सूर्य-ताप की तीव्रता में परिवर्तन होने से जलवायु में परिवर्तन होता है। पृथ्वी को प्राप्त होने वाली सूर्य-ताप की दैनिक मात्रा में थोड़ी सी कमी होने पर धरा हिम चादरों से आच्छन्न हो जायगी और ताप में थोड़ी सी वृद्धि होने पर हिम पिघल जायगा।

पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागों को सूर्य-ताप भिन्न-भिन्न मात्रा में प्राप्त होता है। भिन्न-भिन्न भागों को उपलब्ध सूर्य-ताप की मात्रा पृथ्वी की कक्षा के विक्षोभों पर निर्भर है। विक्षोभों से हमारा तात्पर्य पृथ्वी की कक्षा में होने वाले परिवर्तनों से है। ये परिवर्तन तीन प्रकार के हैं।

१. पृथ्वी की कक्षा की असंकेन्द्रता^१
२. पृथ्वी के अक्ष का झुकाव^२
३. विषुवों का पूर्वायण^३

सौर परिवार के सभी ग्रह एक-दूसरे को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। इस दृष्टि से बड़े ग्रह—बृहस्पति और शुक्र—विशेषतया महत्त्वपूर्ण हैं। सूर्य, चन्द्र तथा अपने साथी ग्रहों के आकर्षण के कारण पृथ्वी की कक्षा का मार्ग दीर्घ वृत्ताकार हो जाता है। इस मार्ग पर सूर्य की परिक्रमा करते समय पृथ्वी कभी उसके अपेक्षाकृत निकट आ जाती है और कभी दूर हो जाती है। आधुनिक काल में पृथ्वी दिसम्बर के अन्त में सूर्य के निकटतम तथा जून के अन्त में सूर्य से अधिकतम दूरी पर होती है। इसलिए उत्तर गोलार्ध में जाड़ों का तापमान दक्षिण गोलार्ध की अपेक्षा अधिक हो जाता है और गर्मी का तापमान अपेक्षाकृत कम। कक्षा की असंकेन्द्रता जितनी कम होगी, ऋतुओं की अवधि में उतना ही कम अन्तर होगा। खगोलीय यांत्रिकी^४ से यह ज्ञात हुआ है कि लगभग ९२ हजार (६० हजार से १२० हजार) वर्षों पर पृथ्वी की कक्षा में परिवर्तन होता रहता है।

पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है। पृथ्वी का यह परिभ्रमण-अक्ष उसकी कक्षा पर समतल^५ झुका हुआ है। इसी कारण छ महीने उत्तरी गोलार्ध सूर्य के समक्ष रहता है और छ महीने दक्षिण गोलार्ध। सूर्य के सम्मुख गोलार्ध में उन छ मासों में ग्रीष्म ऋतु तथा विमुख गोलार्ध में जाड़े की ऋतु रहती है।

1. Eccentricity of the Earth's orbit
2. Inclination of the earth's axis
3. Precession of the equinoxes.
4. Celestial mechanics
5. Orbital plane

पृथ्वी के परिभ्रमण-अक्ष का कक्षा-समतल पर झुकाव लगभग ४०००० वर्षों पर बदलता रहता है। गर्मी और जाड़े की ऋतुएँ इस झुकाव पर अवलम्बित रहती हैं। यदि झुकाव अधिक है तो दोनों गोलार्धों का अन्तर अधिक हो जाता है। फलस्वरूप जाड़े अधिक ठंडे और गर्मियाँ अधिक गर्म हो जाती हैं। पृथ्वी का परिभ्रमण-अक्ष भी एक ही स्थान पर नहीं घूमता। आकाश में उसकी स्थिति भी बदलती रहती है। परिभ्रमण-अक्ष की यह परिवर्तन-गति अति मन्द है। एक पूरा चक्कर लगाने में इसे लगभग २६ हजार वर्ष लग जाते हैं। इस गति को पूर्वायण^१ कहते हैं। इस आधार पर प्रति १३००० वर्ष पर पृथ्वी अपनी कक्षा के निकटतम होगी और क्रमशः उत्तर और दक्षिण गोलार्ध सूर्य के सम्मुख आयेंगे।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पृथ्वी के विक्षोभ-चक्र का एक निश्चित काल के अनन्तर ही पुनरागमन होता है। यह आवर्त-काल है—विषुवों के पूर्वायण का २६ हजार वर्ष, पृथ्वी के अक्ष के झुकाव का लगभग ४० हजार वर्ष, और कक्षा की असंकेन्द्रता का ९२ हजार वर्ष।

असंकेन्द्रण के आवर्त-परिवर्तन जलवायु की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। जिस काल में कक्षा अति दीर्घ होती है, पृथ्वी अपने मार्ग के दूरस्थ बिन्दु पर सूर्य से अधिकतम दूरी पर होती है और दोनों ही गोलार्धों को प्राप्त सूर्य-ताप की मात्रा अत्यल्प हो जाती है। परिकलन से ज्ञात हुआ है कि आज से लगभग १ लाख ८० हजार वर्ष पूर्व कक्षा की असंकेन्द्रता २३ गुनी अधिक थी। उस समय दक्षिणी और उत्तरी गोलार्ध के तापमान में कम से कम ९-१० अंश सेंटीग्रेड का अन्तर रहा होगा।

उपर्युक्त विक्षोभ पृथक् रूप में तापमान-परिवर्तन की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण प्रतीत नहीं होते, किन्तु यदि सम्मिलित रूप में कभी इनका प्रभाव एक ही दिशा में हो जाय तो जलवायु में बड़ा परिवर्तन हो जायगा। प्रति

२१ हजार वर्ष में विषुवतरेखा पृथ्वी के दीर्घ वृत्ताकार मार्ग से इस प्रकार सम्बद्ध रहती है कि दोनों ऋतुओं का अन्तर अधिकतम हो जाता है। इसके साथ ही जब अन्य कारण भी मिल जाते हैं तो ऋतु-काल क्रमशः १९९ और १६६ दिन हो जाता है।

मान लीजिए कि उत्तरी गोलार्ध इस प्रकार स्थित है कि वहाँ ग्रीष्म ऋतु १६६ दिन की तथा शिशिर ऋतु १९९ दिन की होती है। अतः ग्रीष्म ऋतु छोटी किन्तु तीव्र होगी, क्योंकि सूर्य निकटतम दूरी पर होगा। जाड़े की ऋतु लम्बी और तीव्र होगी, क्योंकि सूर्य अधिकतम दूरी पर होगा। जाड़े में हिम और तुपार की मात्रा एक होती जायगी। ग्रीष्मकाल की अल्प अवधि में साग हिम न पिघल सकेगा। इस प्रकार प्रति वर्ष जाड़े में हिम की मात्रा बढ़ती जायगी और आनेवाली गर्मियाँ उस हिम को पिघलाने में असमर्थ रहेंगी। यह क्रम-सदियों तक चलता रहेगा। फलतः हिम-चादरें विस्तृत होती जायँगी और स्थल-मण्डल के बड़े भाग को ढक लेंगी।

कदाचित् कुछ लोगों की धारणा हो कि हिम-नदियों की रचना के लिए केवल धीरे-धीरे शीत की ही आवश्यकता है, किन्तु यह धारणा निर्मूल है। ग्रीष्म ऋतु के उच्च तापमान के कारण ही जल वाष्प के रूप में परिणत होता है और इसी वाष्प से हिम-रचना होती है। हिम-नदियों के निर्माण के लिए आवश्यक है सूर्य-ताप का अनियमित वितरण—गर्मी में औसत से अधिक और जाड़े में औसत से कम ताप। यहाँ एक बात और स्मरण रखने योग्य है कि पृथ्वी को प्राप्त सम्पूर्ण सूर्य-ताप की मात्रा समान रहती है।

वैज्ञानिकों ने खगोल-यांत्रिकी के आधार पर गत १० लाख वर्षों में हुए जलवायु-परिवर्तन का सफलतापूर्वक अध्ययन किया है। उनके निष्कर्ष भौमिकीज्ञों के परिणामों से पूर्णतः मिल जाते हैं। यूगोस्लाविया के भू-भौतिकी के विशेषज्ञ ए० मिलानकोविच ने केवल खगोल-आधार पर उत्तर और दक्षिण गोलार्धों के जलवायु-परिवर्तन का 'लेखाचित्र' तैयार किया।

जौयनर ने मिलानकोविच की तालिकाओं के आश्रय पर विस्तृत वक्र^१ खींचा। इसमें एक वक्र में ६५ अंश उत्तर अक्षांश पर गत ६ $\frac{१}{२}$ लाख वर्षों में पड़नेवाले सौर ताप की मात्रा दिखायी गयी है। इस वक्र के अध्ययन से स्पष्ट है कि पृथ्वी के विक्षोभों का सम्मिलित प्रभाव २५ हजार, ७० हजार, ११५ हजार, १९० हजार, २३० हजार, ४२५ हजार, ४७५ हजार, ५५० हजार और ५९० हजार ई० पू० विशेष रूप से हुआ। वक्र के ये मान^२ भौमिकीज्ञों द्वारा ज्ञात हिम-नदियों के विस्तार-काल के वक्र से मेल खाते हैं।

पिछले ६ लाख वर्षों में बहुत से हिमनद-काल^३ और अन्तः हिमनदकाल^४ व्यतीत हुए हैं। पैक ने भौमिकीय विधि से, अर्थात् हिमचादरों द्वारा परित्यक्त पत्थरों की निक्षेपण-गति का अध्ययन करके तथा हिमनद-निक्षेपों की अपरदन गति के आधार पर बताया कि प्रथम और अन्तिम अन्तः-हिमनद काल की अवधि लगभग ६० हजार वर्ष थी। महा-अन्तः-हिमनद काल की अवधि इसकी चौगुनी अर्थात् २४० हजार वर्ष थी। पैक ने इन अनुमानों को एक वक्र द्वारा दिखाया है। इस वक्र में परमनूतन काल^५ की सम्पूर्ण अवधि छः लाख वर्ष दिखायी गयी है।

सौर-विकिरण वक्र के अनुसार अब से २५००० और ११५००० वर्ष पूर्व के मध्य तीन ग्रीष्म अल्पिष्ठ^६ हुए। लगभग ६० हजार वर्ष तक सामान्य दशा रही। उसके बाद दो अल्पिष्ठ १८७००० और २३०००० वर्षों में हुए। तदुपगन्त १९०००० वर्षों तक लगभग सामान्य परिस्थिति रही। अन्य दो अल्पिष्ठ ४२५००० और ४७५००० वर्ष में हुए। इसके अनन्तर पुनः ६०००० वर्षों तक सामान्य स्थिति रही और फिर दो अल्पिष्ठ ५५०००० और ५९०००० वर्षों में हुए।

1. Curve	2. Value	3. Glacial period
4. Interglacial period	5. Pleistocene	6. Minima

साठ-साठ हजार वर्षों की सामान्य परिस्थितियाँ परमनूतन युग की प्रथम और तृतीय अन्तः-हिमनद काल की अवधि के समान हैं। १९०००० वर्षों की सामान्य अवधि द्वितीय महा-अन्तः-हिमनद काल की अवधि से मेल खाती है। विकिरण वक्र और भौमिक आधार पर खींचे गये वक्र का यह सामंजस्य महत्त्वपूर्ण है। नीचे की तालिका में इसका स्पष्टीकरण किया गया है।^१

युग	अवधि (भौमिक आधार)	अवधि (विकिरण- वक्र-आधार)
तृतीय अन्तः-हिमनद	६००००	६००००
द्वितीय अन्तः-हिमनद	२४०,०००	१९०,०००
प्रथम अन्तः-हिमनद	६०,०००	६०,०००
परमनूतन (प्लाइस्टोसीन)	६००,०००	६००,०००

पृथ्वी के अन्तिम काल (परमनूतन आदि) का विभाजन रेडियो-सक्रिय विधि के आधार पर संभव नहीं है। किन्तु उपर्युक्त खगोल-विधि के आधार पर हम इस काल का विभाजन कर सके हैं। एक दृष्टि से यह विधि रेडियो-सक्रिय विधि की पूरक है।

अध्याय १२

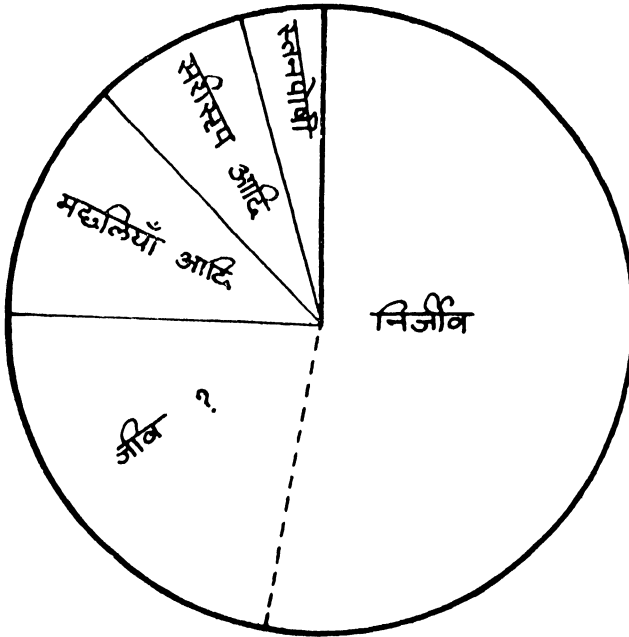
भौमिक समय-सारणी

‘विज्ञान की प्रगति ईंट पर ईंट चुनने से होती है, न कि हवाई महल बनाने से।’

—जूलियन हक्सले

गत अध्यायों में भिन्न-भिन्न विधियों के विस्तार में जाकर हमने भौमिक काल की अवधि जानने का प्रयास किया है। भौमिक काल को संक्षिप्त एवं सरल रूप में समझने के निमित्त हम भौमिक काल के विभागों-उप-विभागों की तुलना ऐतिहासिक काल से करते हैं। भौमिकीज्ञों ने काल का विभाजन जीवन-विकास के आधार पर किया है। इतिहासकारों के काल-विभाजन की भित्ति प्राचीन भवन, भग्नावशेष तथा उनमें लभ्यमान संरचनाएँ हैं। भारतीय इतिहास में हिन्दूकाल, मुगलकाल और ब्रिटिशकाल मुख्य हैं। हिन्दू काल में हिन्दुओं का साम्राज्य रहा, मुगलकाल में मुसलमानों का बोलवाला था तथा ब्रिटिश काल में अंग्रेजों का एकच्छत्र शासन रहा। इसी प्रकार भौमिक काल के पुरा, मध्य तथा नव कल्पों में भी भिन्न-भिन्न जीवों का प्राधान्य रहा। पुराकल्प में मछलियों का बाहुल्य था, मध्यकल्प में सरीसृपों का आधिक्य था तथा नवकल्प में स्तनपोषी जीव-जन्तुओं का प्राचुर्य रहा। ज्यों-ज्यों हम ऐतिहासिक काल में पीछे की ओर उन्मुख होते हैं—पुष्ट प्रमाणों के अभाव में संदिग्धता बढ़ती ही जाती है। उसी प्रकार पुराकल्प से पूर्व की शिलाओं में जीवों के जो अवशेष प्राप्त हुए हैं, वे अविश्वसनीय हैं। अतः पुराकल्प से पूर्व के समय का ठीक-ठीक अनुमान लगाना एवं उस काल का विभाजन करना कठिन है।

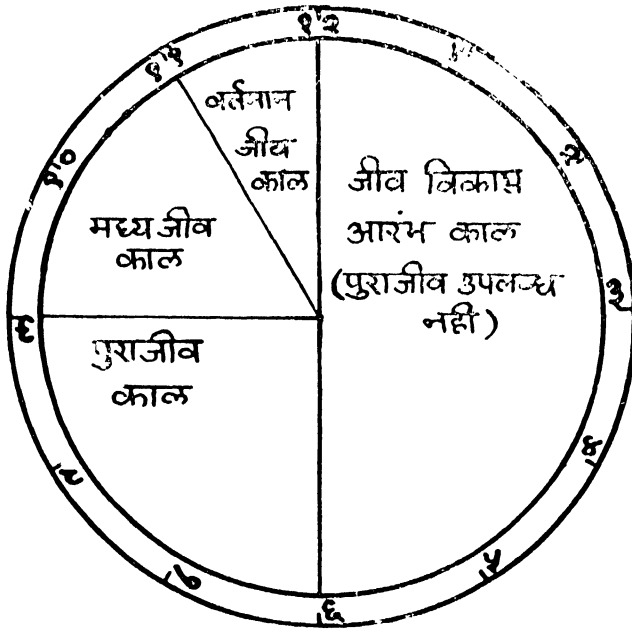
भौमिक काल को यदि एक चक्र द्वारा प्रदर्शित किया जाय तो उसका लगभग आधे से अधिक भाग निर्जीव दिखाई देगा। तत्पश्चात् जीव-विकास हुआ, किन्तु उसका असंदिग्ध प्रमाण हमें उपलब्ध नहीं है। शेष एक तिहाई में क्रमशः मछलियों, सरीसृपों, स्तनपौषियों का विकास हुआ। इसमें भी स्तनपौषियों का प्रसार-काल सरीसृपों के प्रसारकाल की अपेक्षा आधा रहेगा और सरीसृपों का प्रसारकाल पुराकल्प के जीवों—मछलियों आदि की अपेक्षा लगभग आधा रहेगा।



चित्र ३६—भौमिक काल विभाजन

चित्र ३७ में जीव-विकास काल को एक घड़ी के डायल का उदाहरण देकर समझाया गया है। इस घड़ी के १२ घंटे सम्पूर्ण जीव-विकास को दर्शाते हैं। मान लीजिए आरम्भ में घड़ी में बारह बजे हैं। अब जीव-विकास आरंभ हुआ। ६ बजे तक जीवों का जो कुछ भी विकास हुआ, उसके स्वरूप तथा विकासक्रम का हाल हम अभी तक नहीं जान सके। ६ बजे के

पश्चात् जिन जीवों का उद्भव हुआ, उनके अवशेष हमें प्राप्त हुए हैं। उनके विषय में हमें प्रामाणिक ज्ञान उपलब्ध है। ६ से ९ बजे तक का समय **पुराकल्प** का समय कहा जा सकता है। इसमें पहले ट्रिलोवाइट, फिर मछलियों आदि का प्राधान्य रहा। ९ से ११ बजे तक सरीसृपों ने पृथ्वी पर एकच्छत्र राज्य किया। यह काल **मध्यकल्प** कहलाता है। ११ बजे से १२ बजे तक का समय **नवकल्प** है। इसमें पशु-पक्षियों तथा मनुष्य का जन्म हुआ।



चित्र ३७—जीव विकास निरूपण

पृथ्वी पर मनुष्य का आगमन कब हुआ, यह बात अन्य रोचक दृष्टान्त से समझायी जा सकती है। मान लीजिए पृथ्वी की आयु एक वर्ष है, तब दिसम्बर के महीने की ३१ तारीख को वर्ष समाप्ति पर लगभग १५ मिनट पूर्व इस धरती पर मानव का प्रवेश हुआ।

भौमिक सारणी

१. धर्मिक मान्यताएँ—

(क) ओल्ड टैस्टामेंट	१०००० वर्ष
(ख) हिब्रू काल प्रकरण-तालिका	४००४ ई० पू०
(ग) भारतीय दर्शन ग्रन्थ	२ अरब वर्ष लगभग उप- निषद् आदि में कदाचित् इसी को अनन्तकाल कहा गया है।

२. लार्ड कैल्विन के प्रमाण—

(क) पृथ्वी की परिभ्रमण गति पर आधारित आयु	= १० करोड़ वर्ष
(ख) सूर्य की आयु	= १० करोड़ वर्ष
(ग) पृथ्वी के तापमान पर आधा- रित आयु	= ११ करोड़ वर्ष से १० करोड़ वर्ष

३. भौमिक आधार—

(क) सागर की आयु	{ ७० करोड़ न्यूनतम २ अरब ३५ करोड़ अधिकतम
(ख) शैल प्रमाण	२ अरब वर्ष लगभग
(ग) भू-चक्र प्रमाण	१ अरब वर्ष से अधिक
(घ) हीलियम विधि	२ अरब वर्ष से अधिक
(ङ) सीस विधि	३ अरब वर्ष से अधिक

४. खगोलीय आधार—

(क) विश्व की आयु	१० अरब वर्ष लगभग
(ख) सूर्य की आयु	८ अरब वर्ष लगभग
(ग) चन्द्रमा की आयु	४ अरब वर्ष लगभग

विभिन्न विधियों द्वारा ज्ञात आयु के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि पृथ्वी का जन्म कम से कम दो अरब वर्ष तथा अधिक से अधिक पाँच अरब वर्ष पूर्व हुआ। इन्हीं दोनों संख्याओं के मध्य किसी समय पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। पृथ्वी की रचना कोई दो-चार दिन में तो हो नहीं गयी, इसके निर्माण में अधिक समय लगा, किन्तु इसकी आयु ज्ञात करने के लिए हम उस समय से गणना आरम्भ करते हैं, जब कि पृथ्वी के चिप्पड़ या पटल का निर्माण हो चुका था। धर्माध्यक्ष उशर के अनुयायियों के समान इस पृथ्वी की उत्पत्ति का दिन और समय तो नहीं बताया जा सकता, किन्तु वैज्ञानिक आधार पर यह कह सकते हैं कि पृथ्वी की आयु लगभग चार अरब वर्ष है। यह आयु भी निरपेक्ष नहीं है।

रेलवे समय-सारणी में लिखा रहता है—‘समय-सारणी में दिये गये समय के अनुसार गाड़ियों की चलने की गारंटी रेलवे नहीं देती, आवश्यकतानुसार बिना अधिक अग्रिम सूचना दिये ही रेलों के आने-जाने के समय में परिवर्तन किया जा सकता है।’ भौमिक समय-सारणी पर भी यह उक्ति यथावत् चरितार्थ होती है। रेलवे समय-सारणी की भाँति बिना सूचना दिये ही पृथ्वी की आयु में परिवर्तन किया जा सकता है। पृथ्वी की आयु ज्ञात करने की हमारी आधुनिक विधियाँ पूर्ण एवं निरपेक्ष नहीं हैं। आशा है कि भविष्य की गवेषणाओं के परिणामस्वरूप वर्तमान शंकाओं का समाधान होता जायगा, प्रयोगात्मक त्रुटियाँ कम होती जायँगी और इस प्रकार ये विधियाँ दिन प्रति दिन उन्नत होती जायँगी। असंभव नहीं कि पृथ्वी की आयु जानने की कोई नवीन विधि भी हमें उपलब्ध हो जाय, जो सत्य के अधिक निकट ही नहीं, अपितु अकाट्य भी सिद्ध हो।

परिशिष्ट (क)

इस पुस्तक में प्रयुक्त खनिजों का संक्षिप्त वर्णन ।

रा० सं० = रासायनिक संघटन ।

१. अभ्रक—श्वेताभ्रक—रा० सं० पोटाशियम, एल्यूमिनियम, सिलिकन, आक्सिजन व हाइड्रोजन। कृष्णाभ्रक (बायोटाइट) में उपरिलिखित के अतिरिक्त मैगनीशियम और लोह भी विद्यमान रहता है। श्वेताभ्रक रंगहीन तथा कृष्णाभ्रक काले या गहरे लाल रंग का होता है। इन दोनों के पतले-पतले पत्र पृथक् किये जा सकते हैं तथा इनकी सतह मोती के समान चमकदार होती है। अभ्रक के आर्थिक निक्षेप पैगमेटाइट शिलाओं में मिलते हैं।

लैमिडोलाइट भी अभ्रक वर्ग का खनिज है। इसका रासायनिक संघटन श्वेताभ्रक के सदृश है, पर इसमें लिथियम भी विद्यमान रहता है, जिसके कारण बहुधा इसका रंग फालसाई दिखाई पड़ता है।

२. अल्लानाइट—(और्थाइट) रा० सं० कैल्शियम, लोह, सीरियम, एल्यूमिनियम, सिलिकन, आक्सिजन, हाइड्रोजन। इसमें यूरेनियम और थोरियम भी अल्प मात्रा में विद्यमान रहते हैं। रंग काला। यह ग्रेनाइट तथा पैगमेटाइट में मिलता है।
३. एनक्लाइड—रा० सं० कैल्शियम, गंधक, आक्सिजन, रंग सफेद। चमकदार। सागर-जल के वाष्पीकरण से उपलब्ध होता है।
४. कार्नेलाइट—रा० सं० पोटाशियम, मैगनीशियम, क्लोरीन, हाइड्रोजन,

आक्सिजन श्वेत या हलका गुलाबी । चमकदार । पानी में घुलनशील । खारे पानी के वाष्पीकरण से उपलब्ध होता है ।

५. कोर्डीराइट—रा० सं० एल्यूमिनियम, लोह, मैंगनीशियम, हाइड्रोजन आक्सिजन । रंग नीला । चमक काँचोपम । यह अधिकतर कायान्तरित शिलाओं में मिलता है ।

६. कोलम्बाइट—रा० सं० लोह, मैंगनीज, टैंटेलम, नियोबियम, आक्सिजन । रंग काला, चमक हीरे के समान । पैग्मेटाइट में मिलता है ।

७. क्लीवेआइट—यह भी यूरेनिनाइट की एक किस्म है, जिसमें इट्रियम आदि तथा सीस विद्यमान रहता है । यह खनिज भी पैग्मेटाइट में मिलता है ।

८. क्लोराइट—रा० सं० एल्यूमिनियम, लोह, मैंगनीशियम, सिलिकन, हाइड्रोजन, आक्सिजन । रंग हरा । चमक मोती सम । अभ्रक के समान इसके भी छोटे छोटे पर्त किये जा सकते हैं । यह कृष्णाभ्रक आदि प्राथमिक खनिजों के परिवर्तन से बनता है ।

९. क्वार्ट्ज—रा० सं० सिलिकन और आक्सिजन । रंगहीन या श्वेत । काँच के समान चमक । बालू तथा अम्ल-आग्नेय शिलाओं में मिलता है ।

१०. गैडोलाइट—रा० सं० इट्रियम, लोह, सिलिकन, आक्सिजन । यूरेनियम व थोरियम भी अल्प मात्रा में रहता है । यह खनिज भी पैग्मेटाइट में मिलता है ।

११. गैलेना—रा० सं० सीस, गंधक । यह सीस की मुख्य धातुक (अयस्क) है । इसका रंग काला चमकदार होता है । यह खनिज अधिकतर घन आकृति में मिलता है । इसके निक्षेप जलज शिलाओं में पाये जाते हैं ।

१२. जरकन—रा० सं० जरकोनियम, सिलिकन, आक्सिजन । कभी यूरेनियम और थोरियम भी अल्प मात्रा में विद्यमान रहता है । रंगहीन, गुलाबी, सुनहरा या नीला । चमक हीरे सम । कुछ

किस्में रत्नपत्थरों के रूप में प्रयोग की जाती हैं। बालू तथा ग्रेनिट शिलाओं में मिलता है।

१३. टूरमेलीन—इसका रासायनिक योग जटिल है। रा० सं० बोरान, एल्यूमीनियम, लोह या मैगनीशियम, पोटाशियम, सोडियम, लीथियम, सिलिकन, आक्सिजन, हाइड्रोजन आदि। बहुधा यह काले रंग का होता है। इसकी चमक काँचोपम होती है तथा इस खनिज पर धारियाँ पड़ी रहती हैं। यह अम्ल आग्नेय एवं कायान्तरित शिलाओं में, पैगमेटाइट में मिलता है।
१४. टौरवनाइट—रा० सं० ताम्र, यूरेनियम, फास्फोरस, आक्सिजन, हाइड्रोजन। रंग हरा। चमक कुछ-कुछ हीरे जैसी। अन्य यूरेनियम खनिजों के परिवर्तन से उपलब्ध होता है।
१५. थोराइट—रा० सं० थोरियम, सिलिकन, आक्सिजन, हाइड्रोजन। रंग काला। पैगमेटाइट में मिलता है।
१६. थोरियानाइट—रा० सं० थोरियम और आक्सिजन। रंग काला। यह श्रीलंका के पैगमेटाइट में पाया जाता है।
१७. पिचब्लैंड—रा० सं० यूरेनियम और आक्सिजन। अपक्षण तथा परिवर्तन द्वारा बने अन्य पदार्थ भी पिचब्लैंड के योग में सम्मिलित रहते हैं। कभी-कभी थोरियम भी अल्प मात्रा में विद्यमान रहता है। इसका रंग काला होता है। यह खनिज पैगमेटाइट में मिलता है।
१८. फेल्स्पर—रा० सं० पोटाशियम या सोडियम या कैल्सियम के साथ एल्यूमीनियम, सिलिकन व आर्थोक्लेस फेल्स्पर, पोटाशियम फेल्स्पर है। प्लेजियोक्लेस फेल्स्पर में सोडियम और कैल्सियम विद्यमान रहता है। ये शिला निर्माणकारी खनिज हैं। ये आग्नेय, जलज और कायान्तरित तीनों प्रकार की शिलाओं में पाये जाते हैं।
१९. फ्लोराइट—(फ्लोरस्पर) रा० सं० कैल्सियम और फ्लोरीन।

बैंगनी रंग। चमक काँचोपम। यह अधिकतर घन आकृति में मिलता है। यह खनिज पैगमेटाइट शिलाओं में तथा सीसा, चाँदी आदि धातुओं के साथ धारियों में मिलता है।

२०. बेरिल (बैदूर्य)—रा० सं० यह हल्की धातु बेरिलियम का मुख्य खनिज है। बेरिलियम के अतिरिक्त इसमें एल्यूमिनियम, सिलिकन और आक्सिजन भी विद्यमान रहती है। इसका रंग हल्का-पीला या नीला-हरा होता है। इसकी किस्म रत्न-पत्थरों के रूप में प्रयोग की जाती हैं। बेरिल के आर्थिक निक्षेप पैगमेटाइट शिलाओं में मिलते हैं।

२१. ब्रौगराइट—रा० सं० यूरेनियम, थोरियम, आक्सिजन। यह यूरेनिनाइट की एक किस्म है, जिसमें थोरियम भी विद्यमान रहता है। प्रसिद्ध खनिज शास्त्री डब्लू सी० ब्रोगाट के नाम पर इस खनिज का नामकरण हुआ है।

२२. मोनाजाइट—रा० सं० सीरियम, लैन्थेनम, इट्रियम, फास्फोरस, सिलिकन, आक्सिजन तथा थोरियम। यह अधिकतर सागर-तट की बालू में पीले या लाल रंग के कणों के रूप में मिलता है। ग्रेनिट तथा पैगमेटाइट में भी मिलता है।

२३. यूरेनिनाइट—रा० सं० यूरेनियम और आक्सिजन। थोरियम भी इसमें विद्यमान रहता है। वास्तव में यह पिचबलैंड का शुद्ध स्फाट रूप है।

२४. लिमोबाइट—रा० सं० लोह, आक्सिजन और हाइड्रोजन। अस्फाटीय, रंग भूरा या पीला। यह अन्य लोह खनिजों के परिवर्तन से उपलब्ध होता है। सागर में रासायनिक अवक्षेपण द्वारा भी इस खनिज का जमाव होता है।

२५. समर्सकाइट—रा० सं० टैटेलम, नियोबियम, सीरियम, इट्रियम, यूरेनियम, कैल्सियम, लौह आदि। यह भी पैगमेटाइटमें

मिलता है। आन्ध्र प्रदेश के नेल्लोर जिले की संकरा खदान इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

२६. **सिडराइट**—रा० सं० लोह, कार्बन, आक्सिजन। अपक्षण के प्रभाव में इस खनिज के बाहरी भाग का रंग लाल दिखाई देता है तथा भीतरी भाग का रंग पीला-सा होता है। इसकी चमक मोती के समान होती है।
२७. **सिरटोलाइट**—रा० सं० जरकोनियम, सिलिकन, सीरियम, इट्रियम आदि। यूरेनियम और थोरियम भी अल्प मात्रा में विद्यमान रहता है। रंग लाल। चमक हीरे सम। पैगमेटाइट में मिलता है।
२८. **सिलवाइ**—रा० सं० पोटेशियम और क्लोरीन। रंगहीन या श्वेत। काँचोपम चमक। जल में घुलनशील। खारे जल के वाष्पीकरण से प्राप्त होता है।
२९. **स्फीन**—रा० सं० कैल्सियम, टाइटेनियम, सिलिकन, आक्सिजन। रंग हरा-पीला या गुलाबी। मोम की सी चमक। यह ग्रेनित शिलाओं में छोटे-छोटे कणों के रूप में मिलता है।
३०. **हेमेटाइट**—यह लोह की प्रमुख धातुक (अयस्क) है। रंग काला या लाल। चूर्ण का रंग लाल गेरू की तरह। चमक धातु सम। यह जलज या तलछटी शिलाओं में मिलती है।

परिशिष्ट (ख)

इस पुस्तक में प्रयुक्त कुछ शिलाओं का संक्षिप्त वर्णन

१. एंडीसाइट—आग्नेय, ज्वालामुखी। योग-फेल्सपार, हार्नब्लैंड आदि।
खनिजकण अणुवीक्ष की सहायता से ही पहचाने जा सकते हैं।
२. ग्रेनाइट—आग्नेय पातालीय शिला। योग—क्वार्ट्ज, फेल्सपार, कृष्णा-भ्रक आदि। रंग साधारणतः हल्का। खनिज कण साधारण नेत्रों से पहचाने जा सकते हैं।
३. ग्रेनोडायराइट—आग्नेय, पातालीय शिला। योग—फेल्सपार, क्वार्ट्ज, हार्नब्लैंड, वायोराइट। रंग साधारणतः हल्का।
४. चूना पत्थर—जलज शिला। रंग सफेद या भूरा। यह परतों में पृथक् नहीं की जा सकती और न इसके खनिज ही बिना अणुवीक्ष की सहायता के पहचाने जा सकते हैं तथा अम्ल की क्रिया के परिणामस्वरूप इसमें बुदबुद उठते हैं।
५. डोलराइट—आग्नेय अर्धपातालीय। रंग काला। इसका योग बेसाल्ट के समान होता है, पर खनिजकण बेसाल्ट की अपेक्षा बड़े होते हैं।
६. पैगमेटाइट—आग्नेय शिला। योग—क्वार्ट्ज, फेल्सपार, श्वेताभ्रक, बेरिल, एपेटाइट, टूरमेलीन, रेडियो-सक्रिय खनिज, पिचब्लैंड आदि। रंग हल्का। खनिजों के बड़े-बड़े कण इन शिलाओं की विशेषता है।
७. फैल्साइट—आग्नेय, ज्वालामुखी। रंग सफेद या भूरा। खनिज संगठन फेल्सपार। खनिज कण इतने महीन होते हैं कि उन्हें साधारण नेत्रों से नहीं पहचाना जा सकता।
८. बलुआ पत्थर—जलज शिला। रंग सफेद या गुलाबी। यह शिला

क्वार्ट्ज खनिज की बनी होती है। साधारणतः इसके परत पृथक् नहीं किये जा सकते।

९. बेसाल्ट—आग्नेय ज्वालामुखी शिला। रंग-काला। संगठन फेल्स्पार प्लेजियोक्लेस, पाइराक्सीन, और ओलीवीन। खनिजकण इतने सूक्ष्म होते हैं कि केवल अणुवीक्ष की सहायता से ही पहचाने जा सकते हैं। यह शिला कठोर होती है तथा इसके परत नहीं किये जा सकते।

१०. शेल—जलज शिला—यह मृदा खनिजों की बनी होती है। साधारणतः क्वार्ट्ज तथा श्वेताभ्रक के महीन कण विद्यमान रहते हैं। खनिज बिना अणुवीक्ष की सहायता के नहीं पहचाने जा सकते। यह परतों में पृथक् की जा सकती है।

परिशिष्ट (ग)

हिन्दी-अंग्रेज़ी शब्दावली

अंगार युग	Carboniferous period
अन्तरिक्ष-किरणें	Cosmic rays
अंश	Degree
अग्निज	Igneous
अणु	Molecule
अणुम	Micron
अणुबीक्ष	Microscope
अतिक्रमण	Transgression
अतिनूतन	Pliocene
अति-विगोपन	Over-exposure
अधःस्तुत	Substratum
अधिशोषण	Adsorption
अनाच्छादन	Denudation
अनुनाद	Resonance
अनुयुग	Epoch
अन्तः हिमनद	Interglacial
अन्तर्स्थारिक	Interstellar
अन्तर्भाग	Interior
अन्तर्वस्तु	Inclusion, cantant
अन्तर्वर्तिकाल	Transitory period

अपक्षण	Weathering
अपरदन	Erosion
अभिनव	Fresh, Recent
अभिहनन	Bombardment
अयनन	Ionisation
अरेडियो-सक्रिय	Non-radioactive
अर्धपातालीय	Hypabyssal
अल्प नूतन	Miocene
अल्पिष्ठ	Minima
अवतलन	Subsidence
अवधि	Period
अवनत	Subsidence
अवर	Lower
अवर प्रवालादि युग	Ordovician
अवसादी	Sedimentary
असकेन्द्रता	Eccentricity
असतत	Discontinuous
आकाश-गंगा	Milky Way
आग्नेय	Igneous
आतशी शीशा	Magnifying lens
आदि कल्प	Archaeozoic era
आदि नूतन	Oligocene
आद्य कल्प	Archaeozoic era
आधार तल	Base Level
आन्तरक	Core
आल्फा	α
आर्डोविशियन	Ordovician

आवर्तत्व	Periodicity
आवाह क्षेत्र	Catchment basin
इलेक्ट्रान	Electron
उच्च बालूतट	Raised beach
उत्तर	Upper
उत्थान	Elevation
उदग्र	Vertical
उदासीन	Neutral
उपकरण	Apparatus
उपलक्षक	Typical, characteristic
उभयचर	Amphibian
उल्का	Meteor
उल्का-पत्थर	Meteorites
ऊष्मा	Heat
ऊर्जा	Energy
ऋणाग्र	Cathode
ऋतु-क्षारित	Weathered
एकरूपतावादी	Uniformitarianist
एकान्तर	Alternately
एक्टिनियम	Actinium
एल्यूमिना	Alumina
एल्यूमिनियम	Aluminium
क	a
कंदरा	Gorges
कक्षा	Orbit
कक्षा-काल	Orbital period
कक्षा-समतल	Orbital plane

कणिका	Corpuscle
कल्प	Era
कवच	Shell
कवचधारी मत्स्य	Shell shinned fish
का	A
कायान्तरित	Metamorphic
कार्बोनिफेरस	Carboniferous
काल	Age
काल-प्रकरण तालिका	Chronological Table
काष्ठीय	Woody
क्रिटेशियस	Cretaceous
कैम्ब्रियन	Cambrian
क्षय	Annihilation
क्षेत्र भौमिकी	Field Geology
क्षैतिज	Horizontal
ख	b
खा	B
खटीयुग	Cretaceous
खनिजीकरण	Mineralization
खार	Salt
ग	c
गठन	Texture
गतिक ऊर्जा	Energy of Motion
गतिज	Kinetic
गभीर	Deep
गलनांक	Melting point
गा	C

गामा	γ
गिरिजनन	Orogenic
गुप्तस्फाटीय	Cryptocrystalline
गुरुत्वाकर्षण	Gravitation
गुरुत्वाकर्षण ऊर्जा	Gravitational energy
गोलक	Globe
ग्रह	Planet
ग्रहाणु	Planetesimal
घ	d
घा	D
ङ	e
डा	E
च	f
चरता	Variability
चा	F
चिह्न	Imprint
चुम्बकी-प्रकाशकीय विधि	Magneto-optic method
छ	g
छा	G
जलज	Sedimentary
जलमंडल	Hydrosphere
जुरेसिक	Jurassic
ज्वार क्रिया	Tidal action
ज्वार घर्षण	Tidal friction
ज्वालामुखी	Volcanic
ट्रयासिक	Triassic
डिवोनियन	Devonian

तरंग-दैर्घ्य	Wave-length
तलछटी	Sedimentary
ताप	Temperature, Heat
तापमान	Temperature
तापमान-प्रवणता	Temperature gradient
तालबद्ध रूप	Rhythmically
तृतीयक	Tertiary
त्रिखण्ड युग	Cambrian Period
त्रिभुज	Triangulam
दरार	Fissure
दीर्घित	Elongated
दीर्घीकरण	Elongation
दृढकाय	Rigid mass
देवयानी	Andromeda
दैत्य तारा	Giant star
दोलन	Oscillation
द्युतिमान्	Luminous
द्रवणांक	Melting point
द्रव्यमान	Mass
द्विचर	Amphibian
द्वितीयक	Secondary
धनाग्र	Anode
धातुक, अयस्क	Ore
धूमकेतु	Comet
ध्रुवीय	Polar
नदक्षेत्र	Drainage area
नदी-द्रोणी	River basin

नदी संभरण	River supply
नमक का अम्ल	Hydro chloric acid
नवकल्प	Cainozoic era
नाक्षत्र दिवस	Sideral day
नाभिक	Nuclear
नाभिकीय प्रतिक्रिया	Nuclear Reaction
निकट मित्र	Proxima Centauri
निमग्न बन	Submerged forest
निरपेक्ष	Absolute
निस्सृति	Emanation
नीरंजन	Bleaching
नीरंजित	Bleached
नीहारिकाएं	Nebula
न्यादर्श	Specimen, sample
न्यास	Data
न्यूट्रान	Neutron
पउड़ी	Hymn
पत्रशिला	Sill
परमनूतन	Pleistocene
परमाणु	Atom
परिकलन	Calculation
परिधि	Circumference
परमियन	Permian
परिरक्षण	Preservation
परिवर्त्य प्रभामण्डल	Pleochroic haloes
परिवलन	Recumbent
परिवृत्ति	Phenomenon

परिशून्यन	Annihilation
पर्यावरण	Environment
पाजिट्रान	Positron
पातालीय	Plutonic
पार-बैंगनी प्रकाश	Ultra-violet light
पार्थिव ग्रह	Terrestrial Planets
पुच्छल तारे	Comets
पुराकल्प	Paleozoic era
पुराजीव	Fossil
पुराजैविकी	Paleontology
पुरानूतन	Paleocene
पूर्वानुमान	Forecast
पूर्वायण	Precession
पृथ्वी	Earth
पोषक	Host
प्रकाश वर्ष	Light year
प्रतिदर्श	Specimen, sample
प्रतिदिग्-गति	Retrograde motion
प्रतिदीप्ति	Fluorescence
प्रभार	Charge
प्रवणता	Gradient
प्रवाह-क्षेत्र	Drainage area
प्रवालादि युग	Silurian
प्रस्तर युग	Quaternary
प्रस्तरीभूत अवशेष	Fossil
प्राकृतिक वरण	Natural Selection
प्राथमिक	Primary

प्रादिनूतन	Eocene
बड़े ग्रह	Major planets
ब टा	β
बुध	Mercury
बृहस्पति	Jupiter
बौना तारा	Dwarf Star
भस्मविनिमय	Base exchange
भार	Charge
भित्तिशिला	Dyke
भिन्न	Fraction
भू-अभिनति	Geosyncline
भूपटल	Lithosphere, Crust of the Earth
भूविद, भूशास्त्री, भौमिकीज्ञ	Geologist
भौमिक काल	Geological time
भौमिकी	Geology
भ्रंश	Fault
मंगल	Mars
मत्स्य युग	Devonian period
मध्य कल्प	Mesozoic era
महासरट युग	Jurassic period
माध्य	Mean
माला	Series
मिट्टी छीजन	Soil erosion
मृदाजिओलाइट	Soil zeolite
य	x
या	X

यथातथ	Precise
यम	Pluto
युग	Period
यूरेनियम	Uranium
र	y
रक्ताश्रय युग	Triassic period
रचना	Formation
रश्मि चित्र	Spectrum
रा	Y
रेडियम	Radium
रेडियो-सक्रिय	Radioactive
रेडियो-सक्रियता	Radioactivity
रूपान्तरित	Metamorphic
ल	l
ला	L
लेखाचित्र	Chart
लोहस	Ferrous
लोहिक	Ferric
वक्र	Curved, Curve
वयस	Age
वरुण	Neptune
वर्णक्रम	Spectrum
वर्णक्रम लेखी	Spectrograph
वर्णपट	Spectrum
बर्म	Shield
बलन	Fold
बलय	Zone

वातावरण	Circumstances
वायुमण्डल	Atmosphere
वारुणि	Uranus
विकिरण	Radiation
विकिरण-ऊर्जा	Radiant energy
विगोपित, अगोपित	Exposed
विद्युत-भार	Electric charge
विद्युदणु	Electron
विवंधन	Decomposition
विश्वद्वीप	Island Universe
विसरण	Diffusion
विसर्जन नली	Discharge Tube
विषुव	Equinoxes
वेला बल	Tidal forces
वैषुवत	Equatorial
वि-जलीयन	Dehydration
शनि	Saturn
शाकाणु	Bacterium
शीतग्रहाणु	Cold Planetesimals
शुक्र	Venus
श्वेतित	Bleached
संघनन	Condensation
संछिद्र	Bore holes
संनिहित	Embedded
संरक्षण	Conservation
संवर्ग पर्वत	Block mountains
संहति	Mass, System

समय-सारणी	Time-table
समस्थानिक	Isotope
समुदाय	Group
समुद्री पनबिछिया	Water Scorpion
सरीसृप	Reptile
सह-संबंध	Correlation
सिलिकन	Silicon
सिलिका	Silica
सिलूरियन	Silurian
सीसा, सीस	Lead
सुग्राही	Sensitive
सुपुराकल्प	Proterozoic
सूर्य कलंक चक्र	Sun-spot cycle
स्तर	Layer, stratum
स्तरीकरण	Stratification
स्थलीय	Terrestrial
स्पंदन-अवधि	Period of pulsation
स्फुरदीप्ति	Phosphorescence
हीलियम	Helium

परिशिष्ट (घ)
अंग्रेज़ी-हिन्दी शब्दावली ।

a	क
A	का
Absolute	निरपेक्ष
Actinium	एक्टिनियम
Adsorption	अधिशोषण
Age	काल, वयस
Alternately	एकान्तर रूप
Alumina	एल्युमिना
Aluminium	एल्युमिनियम
Amphibian	द्विचर, उभयचर
Andromeda	देवयानी
Annihilation	परिशून्यन, क्षय
Anode	धनाग्र
Apparatus	उपकरण
Archaeozoic	आदि कल्प या आद्य कल्प
Atmosphere	वायुमंडल
Atom	परमाणु
b	ख
B	खा
Bacterium	शाकाणु

Base exchange	भस्म-विनिमय
Base level	आधार-तल
Bleach	नीरंजित, श्वेतित
Bleaching	नीरंजन
Block mountains	संवर्ग पर्वत
Bombardment	अभिहनन
Bore holes	संछिद्र
c	ग
C	गा
Cainozoic	कैनोजोइक, नवकल्प
Calculation	परिकलन
Cambrian	कैम्ब्रियन, त्रिखण्ड युग
Carboniferous	कार्बोनिफरस, अंगार युग
Catchment area	आवाह क्षेत्र
Cathode	ऋणाग्र
Characteristic	उपलक्षक
Charge	भार, प्रभार
Chart	लेखाचित्र
Chronological	काल-प्रकरण
Circumference	परिधि
Circumstances	वातावरण
Cold planetesimals	शीत ग्रहाणु
Comets	धूमकेतु, पुच्छल तारे
Condensation	संहनन
Conservation	संरक्षण
Core	आन्तरक
Corpuscle	कणिका

Correlation	सहसंबंध
Cosmic rays	अन्तरिक्ष-किरणें
Cretaceous	क्रिटेशियस, खटीयग
Cryptocrystalline	गुप्तस्फाटीय
Curve, Curved	वक्र
d	घ
D	घा
Data	न्यास
Decomposition	विवंधन
Deep	गंभीर, गहरा
Degree	अंश
Dehydration	वि-जलीयन
Denudation	अनाच्छादन
Devonian	डिवोनियन, मत्स्य-युग
Diffusion	विसरण
Discharge tube	विसर्जन नली
Discontinuous	असतत
Drainage area	नद-क्षेत्र
Dwarf Star	बौना तारा
Dyke	भित्ति शिला
e	इ
E	डा
Earth	पृथ्वी
Eccentricity	असंकेन्द्रता
Electric charge	विद्युत-भार
Electron	इलेक्ट्रान, विद्यदणु
Elevation	उत्थान

Elongated	दीर्घित
Elongation	दीर्घीकरण
Emanation	निस्सृति, इमेनेशन
Embedded	सन्निहित
Energy	ऊर्जा
Energy, gravitational	गुरुत्वाकर्षण ऊर्जा
Energy of motion	गतिक ऊर्जा
Environment	पर्यावरण
Eocene	आदिनूतन
Equatorial	वैषुवत्
Equinoxes	विषुव
Erosion	अपरदन
Exposed	विगोपित, अगोपित
f	च
F	चा
Facts	तथ्य
Fault	भ्रंश
Ferric	लोहिक
Ferrous	लोहस
Field geology	क्षेत्र-भौमिकी
Fissure	दरार
Fluorescence	प्रतिदीप्ति
Fold	वलन
Fool proof	पूर्ण
Forecast	पूर्वानुमान
Formation	रचना
Fossil	पुराजीव

Fraction	भिन्न
Fresh	अभिनव, ताजा
g	छ
G	छा
Geological time	भौमिक काल
Geologist	भूविद्, भूशास्त्री, भौमिकीज्ञ
Geology	भौमिकी
Geosyncline	भू-अभिनति
Giant star	दैत्य तारा
Globe	गोलक
Gorge	कन्दरा
Gradient	प्रवणता
Gravitation	गुरुत्वाकर्षण
Gravitational energy	गुरुत्वाकर्षण-ऊर्जा
Group	समुदाय
Heat	ऊष्मा
Helium	हीलियम
Horizontal	क्षैतिज
Host	पोषक, यजमान
Hydrochloric acid	नमक का अम्ल
Hydrosphere	जलमंडल
Hymn	पउड़ी
Hypabyssal	अर्ध पातालीय
Igneous	आग्नेय, अग्निज
Imprint	चिह्न
Inclusion	अन्तर्वस्तु
Interglacial	अन्तः हिमनद

Interior	अन्तर्भाग
Interstellar	अन्तरतारिका
Ionisation	अयनन, आयनीकरण
Island universe	विश्वद्वीप
Isotope	समस्थानिक
Jupiter	बृहस्पति
Jurassic	जुरेसिक, महासरट युग
Kinetic	गतिज
Layer	स्तर
Lead	सीस, सीसा
Light year	प्रकाश वर्ष
Lithosphere	भूपटल, पृथ्वी का चिप्पड़
Lower	अवर
Luminous	द्युतिमान्
Magma	मैग्मा (तरल पाषाणीय पदार्थ)
Magneto optic method	चुम्बकी-प्रकाशकीय विधि
Magnifying lens	आतशी शीशा
Major planets	बड़े ग्रह
Mars	मंगल
Mass	संहति, द्रव्यमान
Mean	माध्य
Melting point	गलनांक, द्रवणांक
Mercury	बुध
Mesozoic	मध्यकल्प, मेसोजोइक
Metamorphic	कायान्तरित, रूपान्तरित
Meteor	उल्का
Meteorite	उल्का-पत्थर

Micron	अणुम
Microscope	अणुवीक्ष
Milky way	आकाश-गंगा
Mineralization	खनिजीकरण
Minima	अल्पिष्ठ
Miocene	अल्प नूतन
Molecule	अणु
Nebulae	नीहारिका
Neutral	उदासीन
Neutron	न्यूट्रान
Nonradioactive	अरेडियो-सक्रिय
Nuclear reaction	नाभिकीय प्रतिक्रिया
Nucleus	नाभिक
Oligocene	आदिनूतन, ओलिगोसीन
Orbit	कक्षा
Orbital period	कक्षा-काल
Orbital plane	कक्षा-समतल
Ordovician	आर्डोविशियन, अवर प्रवालादियुग
Ore	धातुक, अयस्क
Orogenic	गिरिजन
Oscillation	दोलन
Over-exposure	अति-विगोपन
Paleocene	पुरानूतन, पैलिओसीन
Paleontology	पुराजैविकी
Paleozoic	पुराकल्प
Period	काल, युग, अवधि
Periodicity	आवर्तत्व

Period of pulsation	स्पंदन-अवधि
Permian	परमियन, गिरियुग
Phenomenon	परिवृत्ति
Phosphorescence	स्फुर-दीप्ति
Pleistocene	परमनूतन, प्लाइस्टोसीन
Pleochroic haloes	परिवर्त्य प्रभामंडल
Pliocene	अतिनूतन, प्लायोसीन
Pluto	यम
Plutonic	पातालीय
Polar	ध्रुवीय
Positron	पाजिट्रान
Precession	पूर्वायण
Precise	यथातथ
Preservation	परिरक्षण
Primary	प्राथमिक
Proterozoic	सुपुरा कल्प
Proxima Centauri	'निकट मित्र'
Quaternary	प्रस्तरयुग, क्वाटरनरी
Radiant energy	विकीर्ण ऊर्जा
Radiation	विकिरण
Radioactive	रेडियो-सक्रिय
Radioactivity	रेडियो-सक्रियता
Radium	रेडियम
Raised beach	उच्च बालुतट
Recept	अभिनव
Recumbent fold	परिवलन
Reptile	सरीसृप

Rigid mass	दृढ़ काय
River-basin	नदी-द्रोणी
River-supply	नदी-संभरण
Rhythmically	तालबद्ध रूप
Saline	खार
Salt Range	साल्ट रेंज
Sample	न्यादर्श, प्रतिदर्श
Saturn	शनि
Secondary	द्वितीयक
Sedimentary	जलज, तलछटी, अवसादी
Sensitive	सुग्राही
Series	माला
Shell	कवच
Shell skinned fish	कवचधारी मत्स्य
Shield	वर्म
Sideral day	नाक्षत्र दिन
Silica	सिलिका
Silicon	सिलिकन
Sill	पत्रशिला
Silurian	सिलूरियन, प्रवालादि युग
Soil erosion	मिट्टी छीजन
Soil zeolite	मृदा जिओलाइट
Specimen	न्यादर्श, प्रतिदर्श
Spectrum	वर्णपट, रश्मिचित्र
Stratification	स्तरीकरण
Stratum	स्तर
Submerged forest	निमग्न बन

Subsidence	अवनत, अवतलन
Substratum	अधःस्तृत
Sun spot cycle	सूर्य कलंक चक्र
System	संहति
Temperature	ताप, तापमान
Terrestrial	स्थलीय
Tertiary	तृतीयक
Texture	गठन
Tidal action	ज्वारक्रिया
Tidal force	वेला बल
Tidal fiction	ज्वार-घर्षण
Time table	समय-सारिणी
Transgression	अतिक्रमण
Transitory preiod	अन्तर्वर्ती काल
Triangulam	त्रिभुज
Triassic	ट्रयासिक, रक्ताश्म युग
Typical	उपलक्षक
Ultraviolet light	पार-वैगनी प्रकाश
Uniformitarianist	एकरूपतावादी
Upper	उत्तर
Uranium	यूरेनियम
Uranus	वारुणि, यूरेनस
Variability	चरता
Venus	शुक्र
Vertical	उदग्र
Volcanic	ज्वालामुखी
Water Scorpion	समुद्री पनबिछिया

Wave-length	तरंग-दैर्घ्य
Weathered	ऋतुक्षारित
Weathering	अपक्षण
Woody	काष्ठीय
<i>x</i>	य
X	या
Y	र
Y	रा
<i>z</i>	ल
Z	ला

परिशिष्ट (ङ)

परिवर्तन-तालिकाएँ

तौल का नया पैमाना

१ टन	=	१०२ मैट्रिक टन
१ पौंड	=	०.४५ किलोग्राम
१ तोला	=	११.६६ ग्राम
१ सेर	=	०.९२ किलोग्राम
१ मन	=	०.३७ क्विंटल

नाप का नया पैमाना

१ मील	=	१.६१ किलोमीटर
१ गज	=	०.९१ मीटर
१ इंच	=	२५.४० मिलीमीटर

डेका, हेक्टो, किलो तथा मिरिया का शब्दार्थ क्रमशः

१० १०० १००० तथा १०००० से गुणा और

डेसी, सेंटी, मिली तथा डेसीमिली का शब्दार्थ क्रमशः

१०, १००, १००० तथा १०००० से भाग देने का है। उपर्युक्त

शब्द नाप या तौल के साथ प्रयुक्त किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए किलोग्राम का अर्थ है १००० ग्राम और किलोमीटर का अर्थ १००० मीटर, तथा डेसीग्राम का अर्थ है $\frac{१}{१०}$ ग्राम और डेसीमीटर का अर्थ है $\frac{१}{१०}$ मीटर।

सेन्टीग्रेड को फारनहाइट में बदलने के लिए $९/५$ से गुणा करके उसमें ३२ जोड़ दीजिए (उदा० $२५^{\circ}\text{से०} = २५ \times ९/५ + ३२ = ७७^{\circ}\text{फा०}$)

परिशिष्ट (च)

हीलियम-विधि-पूरक

पृथ्वी की आयु के सम्बन्ध में हीलियम-विधि द्वारा प्राप्त पहले निष्कर्ष संतोषप्रद नहीं थे। खनिजों की हीलियम-निष्पत्ति अपेक्षाकृत कम ज्ञात हुई, क्योंकि हीलियम खनिजों में विसर्गित हो जाती है, स्फाटों के किनारों से होकर बाहर निकल जाती है, तथा रेडियो-सक्रिय तत्वों के केन्द्रीकरण से खनिजों की स्फाटकीय संरचना व्यवस्था नष्ट हो जाती है। पर अध्ययन के फलस्वरूप कुछ ऐसे खनिज ज्ञात हुए हैं जिनमें हीलियम का विसरण नाममात्र को होता है। यह विसरण इतना अल्प है कि इन खनिजों से करोड़ों तथा अरबों वर्षों में भी हीलियम की नापने योग्य मात्रा का लोप नहीं होता। ये खनिज हैं—मैग्नेटाइट, जरकन, स्फीन आदि।

आधुनिक गवेषणाकार्य उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर किया जा रहा है। यूरोप, अमेरिका और रूस में यह कार्य तीव्र गति से हो रहा है। इस दिशा में काम करने वाले वैज्ञानिकों में कीविल, गॉलिंग, व्लादिनिरोव, ख्लोपिन, अविदोव, हर्ले, गुडमैन आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। नीचे की तालिका में हर्ले और गुडमैन^१ द्वारा ज्ञात आयु दी गयी है (संक्षिप्त करके)। आपने मैग्नेटाइट और सल्फाइड खनिजों की हीलियम निष्पत्ति ज्ञात की।

1. Hurley, P. M. & Goodman, C. 1943. Helium Age Measurement I Preliminary Magnetite index.

Bulletin, Geological Society of America, 54.

भौमिक आयु	स्थान जहाँ से न्यादर्श प्राप्त हुआ	आयु (वर्षों में)
अल्पनूतन (मायोसीन)	डैजर्ट माउंड, ऊटाह	१७,०००,०००
„ („)	स्नोक्वाल्मी, पास, वाशिंगटन	२५,०००.०००
तृतीयक (टर्शरी)	सियरा डी कारीजाल	४५,०००,०००
खटीयुग (क्रिटेशियस)	मगनेट कोब	६३,०००,०००
मध्यकल्प (मैसोजोइक)	पेशी, जापान	९०,०००,०००
रक्ताश्मयुग (ट्रयासिक)	कैशटाउन	१७४,०००,०००
उत्तर अंगार (अपर कार्बोनिफरस)	रमल्सवर्ग	२००,०००,०००
उत्तर अंगार (अपर कार्बोनिफरस)	मैगनिट नया, यूराल	२४५,०००,०००
पूर्व त्रिखण्ड (प्रि०कैम्ब्रियन)	सडवरी, ओन्टोरियो	५५०,०००,०००
„ „	फ्रांकलिनफर्नेस, न्यूजर्सी	६४०,०००,०००
„ „	एडवर्ड्स, मिशीगन	१३००,०००,०००
„ „	हम्बोल्ट, मिशीगन	१६५०,०००,०००
„ „	सडवरी	१०,०००,०००,०००

ये निष्कर्ष सीस-विधि द्वारा ज्ञात निष्कर्षों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं।

ग्रन्थावली

पुस्तक-सूची

१ आनन्द प्रकाश जैन (अनुवादक)—सागर की खोज, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली प्रथम संस्करण, दिसम्बर १९५८।

२ गोरख प्रसाद (डाक्टर)—नीहारिकाएं, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १९५५; सौर-परिवार, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९३१।

३ जगपति चतुर्वेदी—जन्तुओं की जन्म-कहानी, किताब महल, इलाहाबाद, बम्बई, दिल्ली १९५८।

४ ,, ; सृष्टि का इतिहास, किताब महल, इलाहाबाद, बम्बई, दिल्ली, १९५८।

५ दयानन्द (स्वामी)—सत्यार्थ प्रकाश, वैदिक यंत्रालय अजमेर, संवत् १९९०।

६ दीवान चन्द (डाक्टर)—दर्शनसंग्रह, हिन्दी समिति, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, १९५८।

७ देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय—पृथ्वी बनी।

८ नगेन्द्र नाथ वसु—हिन्दी विश्वकोष।

९ पूर्णानन्द मिश्र—अनन्त की राह में, रतनगढ़ (राजस्थान) दिसम्बर, १९५६।

१० मनुस्मृति।

११ वासुदेव शरण अग्रवाल—वेद विद्या, रामप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा १९५९।

१२ विनोबा—गीता प्रवचन (अनु० हरिभाऊ उपाध्याय) अखिल भारतीय सर्वसेवा संघ प्रकाशन, काशी, नवम्बर १९५६।

१३ सुरेश सिंह—जीव जगत, हिन्दी समिति, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण १९५८।

पत्र-पत्रिकाएँ

१ आज, वाराणसी (म० ना० मेहरोत्रा-मिट्टी छीजन की समस्या), अक्टूबर २५, १९५३।

२ कल्याण (भागवतांक) गोरखपुर, प्रथम खण्ड, अगस्त १९४१

३ ज्ञानोदय (विज्ञान अंक) अक्टूबर, १९५९।

४ त्रिपथगा (अन्तरिक्ष अंक) सूचना विभाग, लखनऊ, अक्टूबर १९५९।

५ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नयी दिल्ली, १५ मई १९६०।

६ हिन्दी विश्व भारती, एजुकेशनल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, चारबाग, लखनऊ।

कोश, शब्दावलियाँ आदि

ब्रजमोहन (डॉ०); गणितीय कोश, चौखम्भा संस्कृत सीरीज बनारस—१, १९५४।

रघुवीर (डॉ०); आंग्ल-भारतीय महाकोश, नागपुर, १९५०।

रामचन्द्र वर्मा; शब्द साधना, साहित्य रत्नमाला कार्यालय बनारस, १९५५।

नगेन्द्रनाथ बसु; हिन्दी विश्व कोष, ९ विश्वकोष लेन, बाघबाजार कलकत्ता।

तथा

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, द्वारा प्रकाशित शब्दावलियाँ।

- Arrol, W. J., Jacobi R. B., And Paneth, F. A.—
Meteorites and Age of the Solar System. Nature,
Volume 149, 1942.
2. Crowther, J. G.—An Outline of the Universe, Volume
I Pelican Books, 1938.
3. Curie, Eve.—Madame Curie (Translated by Vincent
Sheean) William Heinemann Ltd., London. 1947.
4. Deshpande, S. P.—The Age of the Earth—a remarkable
coincidence between the modern scientific and the
ancient Indian view. (Indian Science Congress Pt.
IV, 1960)
5. Faul, H.—Nuclear Geology—John Wiley & Sons Inc.
New York, Chapman & Hall Limited London, 1955.
6. Fersman, A.—Geochemistry for Every one, Moscow,
1958.
7. Gamow, George—Biography of the Earth (Mentor
Books) 1949.
8. Holmes, Arthur—The Age of the Earth. Thomas
Nelson & Sons Ltd., London, New York, 1937.
9. Holmes, Arthur—The Age of the Earth. An Intro-
duction to Geological Ideas (Benn's Six Penny Library)
Ernest Benn Ltd, London. 1927.
10. Levin, Boris—The Origin of the Earth and other
Planets, Moscow 1958.
11. National Research Council—(Bulletin No. 80, June
1931) Physics of the Earth IV, The Age of the
Earth, 1931.

12. Rapport, Samuel & Wright Helen—The Crust of the Earth (A Signet Key book) 1955.
13. Sahni, M. R.—Man in Evolution. Orient Longmans Ltd., Bombay, Calcutta, Madras. 1952
14. Singh, Bawa Kartar—The Importance of the Study of Geology B. H. U. Journal, Banaras, Vol. I No. 1. 1952.
15. Smart, W. M.—The Origin of the Earth (A Pelicon Book) 1955.
16. Steers, J. A.—The Unstable Earth, London 1952.
17. Zeuner, F. E.—Dating the Past. Methuen & Co., Ltd., London. 1952.

